महाप्राज्ञ प्रवर्तक
श्री पन्नालालजी महाराज
जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व

□ सम्प्रेरक—

- परमश्रद्धेय ज्योतिषाचार्य, पूज्य प्रवर्तक गुरुवर्य श्री कुन्दनमलजी म० सा०
- आशुकवि, मधुर व्याख्यानी पंडितरत्न मुनिश्री सोहनलालजी म० सा०

□ दिशानिदेशक—

- विद्याभिलाषी पं० मुनिश्री वल्लभमुनि जी म० सा०

□ लेखक—

- श्रीचन्द सुराना 'सरस'

□ सम्पादक-मण्डल—

- श्रीमान् पंडित शोभाचन्द्र जी भारिल्ल
- श्री कन्हैयालालजी लोढा
- श्री रणजीतसिंह जी कुंभट, I.A.S. (जिलाधीश जयपुर)
- श्री रतनलाल जी जैन एम० ए०
- श्री शोभागसिंह जी चौधरी, एम० ए०

□ प्रकाशक—

- श्री प्राज्ञ जैन स्मारक समिति, विजयनगर (राजस्थान)

□ प्राप्ति-स्थान—

- श्री प्राज्ञ जैन स्मारक समिति, विजयनगर (राजस्थान)
- श्री श्वे० स्था० जैन स्वाध्यायी संघ, गुलाबपुरा (राजस्थान)

□ मुद्रक— दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स
दरेसी २, आगरा-४

□ मूल्य— २०) रुपये

□ प्रकाशन— वर्ष १९७६ नवम्बर

प्रकाशकीय

"भूतल पर मानव जीवन की कथा में सबसे बड़ी घटना उसकी आधिभौतिक सफलताएँ अथवा उसके द्वारा बनाये गये और बिगाड़े हुए साम्राज्य नहीं, बल्कि सच्चाई और भलाई की खोज के पीछे उसकी आत्मा द्वारा की हुई युग-युग की प्रगति है। जो व्यक्ति आत्मा की इस खोज के प्रयत्नों में भाग लेते हैं उन्हें मानवीय सभ्यता के इतिहास में स्थाई स्थान प्राप्त हो जाता है। समय महायोद्धाओं को, अन्य अनेक वस्तुओं की भाँति बड़ी सुगमता से भुला चुका है, परन्तु संतों की स्मृति कायम है।"

ऐसे महापुरुष संसार की सर्वोत्तम विभूति हैं—अनमोल निधि हैं। अज्ञान के अंधकार में भटकने वाले प्राणियों के लिए दिव्य प्रकाश-पुंज हैं। वे आत्म-साधना में निरत रहकर भी विश्व के महान् उपकर्त्ता होते हैं, क्योंकि उनकी आत्मा विश्वात्मा बन जाती है। ऐसे संतों का स्मरण, स्तवन, गुणगान मानव जाति के लिए महान मंगल-विधान है।

सम्यग्ज्ञान महान् है। इसका मूल्य अनन्त है। मानव ने जो सर्वोच्च चीज प्राप्त की है, वह सम्यग्यज्ञान ही है। यही वह एकमात्र रत्न है जो जन्म-जन्मान्तर साथ रहता है। प्लेटो ने इसे समस्त विज्ञानों का विज्ञान माना है एवं इसका स्थान हृदय में स्वीकार किया है न कि मस्तिष्क में। मस्तिष्कीय ज्ञान से किये गए निर्णय अपूर्ण एवं गलत हो सकते हैं। जिस आत्मा में सम्यग्ज्ञान नहीं है उस आत्मा का चारित्र भी सम्यग्चारित्र नहीं हो सकता। शास्त्रों ने भी **'नाणेण विना न हुंति चरणगुणा'** कहा है।

परम श्रद्धेय, महामहिम, संत शिरोमणि, स्व० पूज्य प्रवर्तक गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज साहब 'प्राज्ञ' भी एक ऐसे ज्योति:पुंज महापुरुष थे, जिन्होंने आत्म-विकास के साथ-साथ अनेकानेक भव्यात्माओं को भी सम्यग्ज्ञान का प्रकाश उपलब्ध कराया था। वे स्वयं सूर्य के समान तेजस्वी एवं प्रतिभावान तो थे ही, साथ ही सूर्य से विकसित कमल की भाँति विषय-कषाय रूपी पंक से निर्लेप, उन्नत एवं आत्मगुणों से पूर्ण प्रकाशमान भी थे। **सज्झायंमि रओ सया'** इस शास्त्र-वचन के अनुसार वे सदैव स्वाध्याय में ही रत रहते थे। इससे पूज्य गुरुदेव श्री ने अन्तर्मुखता प्राप्त की। जो मनुष्य स्वाध्याय से जितनी अन्तर्मुखता प्राप्त करेगा उतनी ही उसकी वृत्ति सात्विक और निर्मल होगी एवं उतनी ही दूर की वह सोच सकेगा, तथा उतने ही दूर के परिणामों की संभावना

देख सकेगा। पूज्य गुरुदेव श्री ने समाज की अव्यवस्थित दशा का अनुमान लगाया एवं उन्होंने स्वाध्याय का महत्त्व हृदयंगम कराते हुए ज्ञान साधनापूर्वक लोंकाशाह के समान आचारवान बनकर धार्मिक क्रान्ति करने का शंखनाद समाज में फूँका। उन्होने अज्ञान को मन की रात कहा, ऐसी रात जिसमें न चाँद हैं न तारे।

गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज क्रान्तिकारी व्यक्तित्व लेकर प्रकट हुए थे। उनमें स्वस्थ समाज-निर्माण एवं आदर्श व्यक्ति-निर्माण की तड़प थी। वे समाज एवं व्यक्ति को इस बिन्दु तक ले जाना चाहते थे जहां वैषम्य का अभाव हो, गतानुगतिकता न हो एवं मानव चेतना मुक्त होकर अपने सामाजिक व राष्ट्रीय दायित्व का निर्वाह करने में सक्षम हो। वे चाहते थे कि व्यक्ति में सहानुभूति व सदाशयता के भाव जगें,

भी ममत्व नहीं था फिर वे उच्चपद, गरिमा, यशःकीर्ति आदि प्रलोभनों के सामने क्यों झुकते।

"सन्त सौ युगों का शिक्षक होता है।" एमर्सन के इस कथन में आन्तरिक हृदय की सचाई बोल रही है। वे युग के पीछे-पीछे नहीं चलते, वरन् युग उनका अनुगमन करता है। अपने पुरुष को जाग्रत करके पुरुषोत्तम करना यही उनकी साधना का मूलमंत्र होता है। इसी के सहारे वे समय की रेत पर अमिट चरण-चिह्न अंकित कर जाते हैं जिनका अनुसरण कर मानवता अपने आपको कृतकृत्य अनुभव करती है। वे वाणी में नहीं जीते, वरन् आचरण में जीते हैं। वे कहने के लिए लिखते कम हैं परन्तु लिखने योग्य करते अधिक हैं। पूज्य पन्नालाल जी महाराज साहब का जीवन इसका सच्चा प्रमाण था। उन्होंने समाज के शिक्षक का कार्य बखूबी निभाया। मालाकार जाति में जन्म लेने के कारण चतुर माली के समान समाज के उद्यान से अवांछनीय झाड़-झंखाड़ों को उखाड़ने में हिचक नहीं की ताकि रक्षणीय की रक्षा हो सके; तभी तो आडम्बर-रहित, रुढिमुक्त, स्वस्थ समाज का सुन्दर पौधा अपना सौन्दर्य बिखेर सका।

ऐसे ही भव्य महापुरुष के प्रति अपनी यत्किंचित् हार्दिक श्रद्धा व्यक्त करने की दृष्टि से ही उनकी विशेषताओं से युक्त प्रामाणिक जीवन-परिचय-ग्रंथ प्रकाशित करने का आग्रह भक्तजनों की ओर से विगत वर्षों में अत्यधिक रूप से होता रहा है। श्री प्राज्ञ जैन स्मारक समिति विजयनगर एवं श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन स्वाध्यायी संघ गुलाबपुरा के वार्षिक अधिवेशनों में भी तत्सम्बन्धी कई बार चर्चाएँ हुईं, किन्तु अपरिहार्य कारणों से बात टलती ही रही। जीवन वृत्त की सामग्री को भी पूर्ण-लेखन के अभाव में व्यवस्थित रूप से संकलित करना था। इधर श्रद्धालु भक्तों का आग्रहपूर्ण दबाव बढ़ता जा रहा था, अतः परम श्रद्धेय, ज्योतिर्विद गुरुदेव श्री कुन्दनलाल जी महाराज साहब आदि संतों के भीलवाड़ा चातुर्मास के समय इस योजना को अन्तिम व व्यवस्थित रूप दिया गया। लेखन कार्य प्रारम्भ हुआ, किन्तु शुभ कार्यों की पूर्ति में यदा-कदा विघ्न भी उपस्थित होते ही हैं। तदनुसार सुलेखक विद्वान् श्रीचन्द जी सुराणा व स्थानीय कार्यकर्ताओं की व्यस्तता के कारण प्रकाशन-कार्य में अत्यधिक विलम्ब होता गया। इधर स्वाध्यायी सदस्यों के बार-बार स्मरण-पत्र आते रहे अतः विगत कुछ समय से इसमें त्वरित गति लाकर कार्य को सम्पन्न कराया गया।

हमें अत्यधिक प्रसन्नता है कि अति कार्य व्यस्त होने के बावजूद भी समाज के जाने-माने लेखक आदरणीय विद्वद्वर श्री श्रीचन्द जी साहब सुराणा ने उपलब्ध सामग्री को व्यवस्थित रूप देने एवं उसे यथाक्रम लिपिबद्ध कर सजाने संवारने के लिए स्वीकृति प्रदान कर अनुग्रहीत किया तथा यथासमय इसे सम्पन्न भी किया। वस्तुतः उनके परिश्रम से ही यह ग्रन्थ समय पर प्रकाशित हो सका है। अतः उनके प्रति हम आभारी हैं।

विद्वद्वरेण्य आदरणीय पं० श्री शोभाचन्द्र जी साहब भारिल्ल ने भी समय निकाल कर सम्पूर्ण पाण्डुलिपि एवं संकलित सामग्री का अवलोकन कर सुझावों से लाभान्वित

किया एवं समय-समय पर प्रकाशनार्थ प्रेरणा देते रहे। इसी प्रकार श्री रतनलाल जी जैन व कन्हैयालाल जी लोढा ने भी प्रारम्भिक सामग्री को लिपिबद्ध कर प्रकाशन योग्य रूप देने का श्री गणेश किया तथा आदरणीय रणजीतसिंह जी साहब कुंभट, जिलाधीश जयपुर ने भी ग्रंथ को सर्वाङ्ग-पूर्ण बनाने से आवश्यक सुझाव प्रदान किये तदर्थ हम उनके आभारी हैं।

परम श्रद्धेय, राजस्थानकेसरी अध्यात्मयोगी श्री पुष्कर मुनि जी महाराज ने भूमिका लिख कर जो अनुग्रह किया है, उसके लिए हम किन शब्दों में आभार मानें। उनके इस अनुग्रह के लिए तो 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' ही कहा जा सकता है। उनका आशीर्वाद हमारे लिए अपूर्व पाथेय का काम देगा, ऐसी पूर्ण आशा है।

ऐसे ही, मन से सरल एवं स्वभाव से सौम्य स्वर्गीय गुरुदेव के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धा व्यक्त करने के लिए औद्योगिक, व्यावसायिक व शैक्षणिक दृष्टि से महत्वपूर्ण विजयनगर में विद्यानुरागी नागरिकों ने उनकी स्मृति को चिरस्थायी रूप देने के लिए एक महाविद्यालय स्थापित करने का शुभ संकल्प किया। गुरुदेव श्री के अद्भुत, चमत्कारी एवं साधनामय जीवन से प्रेरणा पाकर यह संकल्प कार्य रूप में परिणत हुआ एवं विगत ५ वर्षों से उनकी पुण्य स्मृति में 'श्री प्राज्ञमहाविद्यालय' के नाम से एक प्रज्ञादीप जगमगा रहा है। इस महाविद्यालय के निर्माणार्थ, गुरुभक्ति में लीन सुश्राविका श्रीमती सुन्दर कंवरबाई धर्मपत्नी स्व० दृढ़धर्मी सुश्रावक श्रीमान् विरदीचन्द जी सा० चोरडिया की प्रेरणा से ४ बीघा जमीन श्री प्राज्ञ जैन स्मारक समिति को श्रीमान् विरदीचन्द जी, गुलाबचन्द जी सा० चोरड़िया विजयनगर वालों ने भेंट की है। इस भूमि पर आज महाविद्यालय का मुख्य भवन निर्मित हो चुका है एवं शीघ्र ही सिद्धान्त शाला-भवन का निर्माण कार्य भी प्रारम्भ होने वाला है।

स्व० पूज्य गुरुदेव के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धा व्यक्त करने के लिए अभी २ नवम्बर ७६ से 'श्री प्राज्ञ बालमन्दिर' की स्थापना इस ध्येय से की गई है कि इस क्षेत्र के नन्हें मुन्नों में भी नैतिक आचार-विचार के प्रति इस प्रकार आकर्षण उत्पन्न किया जा सके कि वे गौरवमय जीवन जी सकें एवं राष्ट्र के भावी नागरिकों का जीवन शुद्ध व सात्विक बन सके। इसी प्रकार श्री प्राज्ञ पुस्तकालय भी विजयनगर में ७ वर्षों से निरन्तर कार्यरत है।

श्री प्राज्ञ महाविद्यालय में छात्रों की संख्या बढ़ जाने से बाहर से आने वाले छात्रों के आवास की समस्या उपस्थित हुई जिसकी पूर्ति हेतु परमश्रद्धेय, गुरुभक्त धर्म प्रेमी सुश्रावक श्रीमान् रामसिंह जी साहब चौधरी ने श्री प्राज्ञ जैन स्मारक समिति के तत्वावधान में उनके स्व० पिताजी श्रीमान् चम्पालाल जी साहब चौधरी की स्मृति में चम्पालाल चौधरी जैन छात्रावास का निर्माण करवाने का संकल्प किया। परम हर्ष है कि इस छात्रावास का शिलान्यास दिनांक २९ जनवरी १९७७ को पद्मश्री सेठ कस्तूरभाई लालभाई अहमदाबाद निवासी के कर-कमलों से सम्पन्न होने वाला है।

छात्रावास भवन का निर्माण कार्य भी महाविद्यालय की साधना भूमि के सामने दानवीर श्रावक श्रीमान् मिश्रीलाल जी नेमराज जी साहब तातेड़ एवं कुन्दनलाल जी हुकमचंद जी साहब कोठारी द्वारा श्री प्राज्ञ जैन स्मारक समिति को प्रदत्त भूमि पर शीघ्र ही प्रारम्भ होने वाला है ! इस हेतु उक्त दानदाता महानुभावों के प्रति हम आभारी हैं।

आदरणीय सेठ श्री रामसिंह जी साहब चौधरी इस क्षेत्र की विशेष विभूति हैं। जिन्होंने अपने पुरुषार्थ एवं कौशल से व्यावसायिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति कर इस क्षेत्र के मस्तक को गौरव से ऊंचा उठाया है। उनकी उदारता, दानवीरता एवं सरलता अनुकरणीय है। पूज्य गुरुदेव श्री का प्रेरणामय जीवन-चरित्र ग्रंथ अति शीघ्र ही प्रकाशित होकर भक्तजनों के हाथों में पहुँचे ऐसे उनके उत्कंठामय आग्रह से ही इस ग्रंथ का प्रकाशन शीघ्र सम्भव हो सका। इस हेतु फोन, पत्र एवं समक्ष वार्ता द्वारा उनका आग्रह बराबर चलता रहा। इसी के शुभ परिणाम स्वरूप यह ग्रंथ पाठकों के कर कमलों में पहुँच सका है। हमें अत्यन्त प्रसन्नता है। कि इस ग्रन्थ का विमोचन सुप्रसिद्ध त्यागमूर्ति, दानवीर सेठ सा० श्री गुमानमल जी साहब चोरड़िया जयपुर निवासी के करकमलों से होना प्रस्तावित हुआ है। आशा है यह ग्रन्थ समस्त गुरुभक्त श्रावकों के हाथों में पहुँचकर अमर प्रेरणा स्रोत बनेगा।

प्रकाशन-समिति व व्यवस्था समिति के सभी सदस्यों के प्रति भी मैं अपना आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने समय-समय पर मार्गदर्शन देकर इस कार्य को सम्पन्न कराया। गुरुदेव के उन श्रद्धालु भक्तजनों का भी, मुख्यतः सर्वश्री अर्जुनलाल जी साहब डांगी, किस्तूरचन्द जी साहब नाहर, शांतिलाल जी साहब पोखरणा आदि का भी बहुत-बहुत आभारी हूँ जिनके प्रेमपूर्ण आग्रह एवं प्रयत्नों के कारण ही यह प्रकाशन-कार्य सम्भव हो सका है। प्राज्ञ जैन स्मारक समिति विजयनगर एवं श्री स्वाध्यायी संघ गुलाबपुरा के पदाधिकारियों व कार्यकर्ताओं को धन्यवाद देना स्वप्रशंसा करना होगा क्योंकि इन आत्मीय-बन्धुओं के परिवार सदृश मधुर सम्पर्क ने इसे सफलता के सोपान पर रखा। हम दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा के संचालक श्रीयुत पुरुषोत्तमदास जी भार्गव का भी हार्दिक आभार मानते हैं जिन्होंने इतने कम समय में पुस्तक का सुन्दर मुद्रण कर हमारे कार्य को सम्पन्न कराया।

मंत्री

श्री प्राज्ञ जैन स्मारक समिति

प्रस्तुत ग्रन्थ प्रकाशन में अर्थ सहयोग दाता महानुभावों की शुभ नामावली

१. श्रीमान् रामसिंह जी साहव चौधरी, अहमदावाद
२. श्रीमान् छोटूलाल जी अजीत सिंह जी, गुलावपुरा
३. श्रीमान् अर्जुनलाल जी मिश्रीलाल जी डांगी, भीलवाड़ा
४. श्रीमान् अमोलक चन्द जी कावड़िया, देवरिया
५. श्रीमान् सन्तोषसिंह जी उमरावसिंह जी आजाद सिंह जी चौधरी, फूलियाकलाँ
६. श्रीमान् मोतीलाल जी उमरावसिंह जी कर्णावट, विजयनगर
७. श्रीमान् भैरुसिंह जी चौधरी, ब्यावर
८. श्रीमान् भैरुलाल जी चांदमल जी खेराड़ा, अजमेर
९. श्रीमान् मिश्रीलाल जी नौरतमल जी चौधरी, भीलवाड़ा
१०. श्रीमान् रतनलाल जी प्रेमचन्द जी चत्तर, जयपुर
११. श्रीमान् मदनलाल जी मोहनलाल जी पोखरणा, भीलवाड़ा
१२. श्रीमान् मदनलाल जी खीवेसरा, गोविन्दगढ़
१३. श्रीमान् गुलावचन्द जी नौरतमल जी लुणावत, विजयनगर
१४. श्रीमान् गुलावचन्द जी ताराचन्द जी श्रीमाल, कनकपुर
१५. श्रीमान् उदयलाल जी वावेल, अंटाली
१६. श्रीमान् विरदीचन्द जी गुलावचन्द जी चोरडिया, विजयनगर
१७. श्रीमान् भूरालाल जी ताराचन्द जी चौपड़ा, विजयनगर
१८. श्रीमान् एवं श्रीमती मदनलाल जी चौधरी साथाना वाले, इन्दौर
१९. श्रीमान् फतहचन्द जी सुगनचन्द जी तातेड़, विजयनगर
२०. श्रीमान् तेजमल जी महता विजयनगर
२१. श्रीमान् शान्तिलाल जी पारख, जोधपुर
२२. श्रीमान् घीसालाल जी भण्डारी, ब्यावर
२३. श्रीमान् नाथू लाल जी मदनलाल जी वाफणा, भीलवाड़ा
२४. श्रीमती मातेश्वरी श्रीमान् नौरतमल जी चौधरी, भीलवाड़ा
२५. श्रीमान् जोरावरमल जी लादूलाल जी डांगी, भीलवाड़ा
२६. श्रीमान् शोभागमल जी कोठारी, जालिया कलाँ
२७. श्रीमान् विरदीचन्द जी भँवरलाल जी पगारिया, अजमेर

२८. श्रीमान् दौलतराम जी शिवचरणदास जी खण्डेलवाल, विजयनगर
२९. श्रीमान् मांगीलाल जी धमाणी, कवलियास
३०. श्रीमान् तेजमल जी बाफणा, भीलवाड़ा
३१. श्रीमान् शिवराज जी ताराचन्द जी बोहरा, विजयनगर
३२. श्रीमान् डा. जयप्रकाश जी गुप्ता, विजयनगर
३३. श्रीमान् घीसालाल जी रांका, खामोर
३४. श्रीमान् घीसालाल जी शान्तिलाल जी कुमठ, जामोला
३५. श्रीमान् सुखराज जी कोठारी, टोंगी
३६. श्रीमान् मिलापचन्द जी घेवर चन्द जी तातेड़, राताकोट
३७. श्रीमान् अमरसिंह जी पानगड़िया, सरेरी बांध
३८. श्रीमान् फतहलाल जी खटोड़, सरेरी बांध
३९. श्रीमती कंचन बाई जी, भिनाय
४०. श्रीमती सुगन बाई जी बुरड़, गुलाबपुरा
४१. श्रीमान् कनकराज जी कावड़िया, पूना
४२. श्रीमान् मोहनलाल जी खाबिया, छोटी पादू
४३. श्रीमान् हरिसिंह जी लोढ़ा, अरवड़
४४. श्रीमान् मोतीलाल जी जयसिंह जी, जयसिंहपुरा
४५. श्रीमान् रतनलाल जी कांठेड़, खामोर
४६. श्रीमान् मूलचन्द जी सुराणा, कवलियास
४७. श्रीमान् सुगनचन्द जी डोसी, ब्यावर
४८. श्रीमान् लालचन्द जी कांठेड़, ब्यावर
४९. श्रीमान् जीवराज जी जवरचंद जी सा० चोरड़िया, मेडता

प्रस्तावना

अनुयोगद्वार सूत्र में श्रमण भगवंतों के वहु आयामी वहुगुण संपन्न जीवन को वारह उपमाओं से उपमित कर उसके चौरासी विरल गुणों का सुन्दर वर्णन किया गया है।

सर्प, पर्वत, अग्नि, सागर, कमल आदि उपमानों में से प्रत्येक की सात-सात विशेषताएं वताकर उनके साथ श्रमण जीवन की तुलना की गई है। वहां कमल के साथ भी श्रमण जीवन की सात तुलनाएं की हैं—

१. कमल—कीचड़ में उत्पन्न होकर भी उससे निर्लेप रहता है। इसी प्रकार श्रमण भी संसार पंक में जन्म लेकर भी विषय-भोगों से निर्लिप्त रहता है।
२. कमल—सभी को मधुर सुगंध देता है। श्रमण भी सभी को ज्ञान की सुगंध देते रहते हैं।
३. कमल—की सौरभ चारों दिशाओं में व्याप्त होकर सभी को प्रसन्नता देती है। श्रमण की शांति और समत्व-सौरभ भी चहुँ ओर परिव्याप्त होकर सभी को प्रफुल्लता देती रहती है।
४. कमल—सूर्य एवं चन्द्रमा को देखकर खिल उठता है। श्रमण भी ज्ञानी, तपस्वी आदि गुणिजनों को देखकर आनन्द से मुदित हो उठता है।
५. कमल—प्रकाश व अंधकार में, सर्दी व गर्मी में सदा प्रसन्न रहता है। श्रमण भी सुख-दुख में सदा समभावी रहता है।
६. कमल—सदा सूर्य व चन्द्रमा की तरफ मुख किये रहता है। श्रमण का ध्यान भी सदा प्रभु आज्ञा (गुरु आज्ञा) पर केन्द्रित रहता है।
७. कमल—स्वभावतः ही उज्ज्वल व निर्मल होता है। श्रमण भी स्वभावतः शुक्ल एवं धर्म ध्यान में रत रहता है। तथा निर्मल हृदय वाला होता है।

कमल के इन सात विशिष्ट गुणों पर चिन्तन करते-करते मेरा ध्यान स्व० प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी महाराज के जीवन पर केन्द्रित हो जाता है। उनका जीवन कमल से किसी प्रकार कम नहीं था। आगमधर आचार्यों ने कमल और श्रमण के जिन गुणों की समानता स्वीकार की है, वे गुण प्रवर्तक श्री जी के जीवन में साकार हुये थे—ऐसा मेरा व्यक्तिगत अनुभव है।

वे सदा कमल की तरह अनासक्त वृत्ति थे।
सभी को ज्ञान सौरभ, शिक्षा की पराग लुटाते थे।
वे गुणानुरागी थे।
वे स्थिरचेता स्थितप्रज्ञ थे।
शास्त्र एवं गुरु आज्ञा पर उनका जीवन केन्द्रित था।
उनका हृदय बड़ा निर्मल और उज्ज्वल था।

इसके साथ ही उनके जीवन की अन्य अनेक विशेषताएं भी थीं जो आज हमारी स्मृतियों में छाई हुई हैं।

वे निर्भीक वृत्ति के स्पष्ट वक्ता थे। आगम की भाषा में वे स्वयं अभयदर्शी व अभय-प्रदाता थे।

समाज में ज्ञान, सुशिक्षा, स्वाध्याय आदि के प्रचार हेतु उन्होंने पहल की, अपनी संपूर्ण शक्ति का नियोजन किया और स्थान-स्थान पर शिक्षा केन्द्रों व स्वाध्यायी संघों की स्थापना का स्वप्न देखा, उसे साकार भी किया।

श्रमण संघ के संगठन में उन्होंने अद्भुत योगदान किया। चार तीर्थ की सेवा में, वात्सल्य भावना में वे अप्रतिम थे।

दूरदर्शिता, गंभीरता, चिन्तनशीलता और वचन-पटुता उनकी विलक्षण थी।

उनके साथ स्व०गुरुदेव महास्थविर श्री ताराचन्द जी महाराज के बहुत ही घनिष्ठ व मधुर सम्बन्ध थे। मैं भी अनेक बार उनके सम्पर्क में आया और उनके विरल गुणों की अमिट छाप मेरे हृदय पर अंकित हुई।

स्व० प्रवर्तक श्री जी का जीवन-चरित्र मेरे सामने है। इस सुन्दर प्रवाहपूर्ण जीवन चरित्र में उनके दिव्य गुणों को, उनके बहुआयामी व्यक्तित्व और अमर कृतित्व को सुन्दर सचोट शब्दों में बांधने का जो स्तुत्य प्रयास किया गया है, वह एक ऐतिहासिक आवश्यकता की सम्पूर्ति है। यह बहुत पहले ही हो जाना चाहिए था, पर कभी-कभी विलम्ब भी लाभ के लिए हो जाता है, संभवत: पहले लिखा जाता तो श्री 'सरस' जी की लेखिनी का चमत्कारी स्पर्श इस जीवन-चरित्र को न मिला होता, जो अब मिला है। और इस लेखन में, जीवन में वास्तव में ही जीवंतता आ गई है। यथार्थता को भाषा का समर्थ सहार मिल गया, या यों कहूँ—सत्य को सुन्दरता का परिवेश मिल गया, मणि को सोने क सुयोग मिल गया। उस ऊजस्वल जीवन को अभिव्यक्त होने के लिए ऐसी ही प्राणव मंजी हुई भाषा की जरूरत थी जो मिल गई।
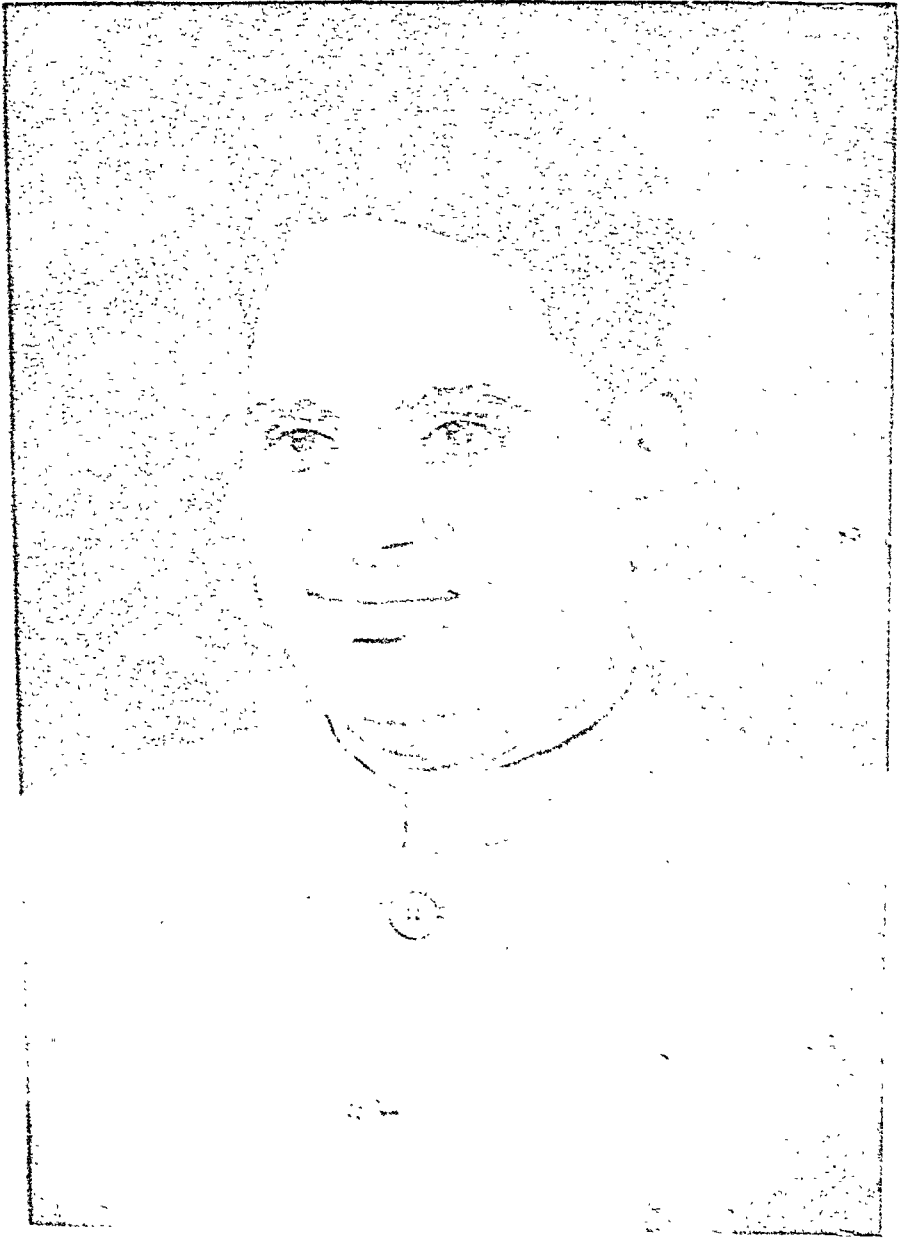
भगवान महावीर के परिनिर्वाण को २५०० वर्ष पूर्ण हो चुके। इस ढाई हजार वर्ष के दीर्घकाल में जैन गगन में भले ही किसी सहस्र-रश्मि सूर्य का उदय नहीं हो सका पर यह सत्य है कि युग-युग में अनेक ज्योतिष्मान नक्षत्र उदित होकर अंधकार को ललकारते रहे हैं। अपने प्रभामंडल से आलोक रश्मियां बिखेर कर विश्वयात्री को पथ-दर्शन तो कराते ही रहे हैं। इन ज्योतिष्मान नक्षत्रों के प्रभापुंज से जैन-गगन का ही क्या, समस्त धार्मिक जगत का अंधकार छंटता रहा है और ज्ञान-तप-त्याग-सेवा-सहिष्णुता और सद्भावना की प्रकाश किरणें भूमंडल पर फैलती रही हैं।

आज से लगभग ८८ वर्ष पूर्व (वि० सं० १९४५) में एक ऐसा ही ज्योतिष्मान दिव्य नक्षत्र इस गगनांगण पर अवतरित हुआ था, जिसने अपनी आलोक रश्मियां बिखेर कर दूर-दूर क्षितिज तक का अंधकार मिटाया, अज्ञानमय अंधविश्वास और रूढ़ियों के घने कोहरे में डूबे मानव समूह को प्रकाश का पथ दिखाया, जागरण का संदेश सुनाया और गतिशीलता का मंत्र देकर उसे प्रगति-पथ पर बढ़ जाने को प्रोत्साहित किया। वह महान श्रमण-नक्षत्र था—प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी महाराज।

प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी महाराज एक अद्भुत तेजस्वी व्यक्तित्व के धनी संत थे। वे स्वयं आचार्य न होते हुए भी अनेक प्राचीन आचार्यों की पावन परम्परा के साकार प्रतिनिधि थे। उनके व्यक्तित्व में आचार्य हेमचन्द्र, आचार्य हीरविजय सूरि जैसे निर्भीक, समाज संघटक तथा अहिंसा प्रचारक महान आचार्यों के दिव्य गुणों का स्पष्ट प्रतिबिम्ब झलक उठा था। वे समाज संघटक, शिक्षा-प्रचारक, अहिंसा के पुजारी और शांति एवं समन्वय के कट्टर पक्षधर होते हुए भी एक महान क्रान्तद्रष्टा संत थे। वे जीवनभर रूढ़ियों से लड़ते रहे, क्रांति की मशाल लिये घूमते रहे। समाज को निर्भीक, स्वावलम्बी और सुशिक्षित बनाने में उनका योगदान अद्भुत रहा है।

प्रस्तुत लेखन

मैंने कुछ मुनियों, आचार्यों आदि का जीवन चरित्र लिखा है, कई जीवन चरित्र पढ़े भी हैं, पर जो ओजस्विता, जो कृतित्व और एक संत-जीवनी के योग्य सहज गुणों की प्रवहणशीलता इस जीवन चरित्र में मिली, वैसी आज तक नहीं मिली थी। इस जीवनधारा में कहीं जड़ता नहीं, अवरोध नहीं, और कहीं क्षीणता नहीं, अपितु "प्रतिपर्व रसोदयं" के अनुसार सर्वत्र गति, प्रवाह और उत्तरोत्तर विकासमान व्यक्तित्व के दर्शन हुए। उनकी जीवनयात्रा ९ वर्ष के उष:काल से चमकने लगी जो ८० वर्ष की सांध्य वेला तक दीप्तिमान और नव प्रभा से परिपूर्ण रही। बुढ़ापे में भी उनके जीवन में ताजगी थी। उनके विचारों और जीवन की तेजस्विता तथा प्रभास्वरता नंदादीप की तरह सदा अखंड, सतत ज्योतिर्मय रही। इसी अखंडता व अक्षुण्णता ने मुझे प्रभावित किया और मैं सिर्फ जीवन चरित्र का लेखक ही नहीं रहा उस महान व्यक्तित्व का श्रद्धालु भी वन गया।

प्रस्तुत में प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी महाराज के बहु आयामी जीवन को विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत निवद्ध कर परिपूर्णता देने का प्रयत्न किया है। प्रथम खण्ड में उनके जीवन व व्यक्तित्व के विविध पक्षों को उजागर करने वाले प्रसंग हैं, जिनमें उनका उज्ज्वल व्यक्तित्व स्वयं ही वोल रहा है।

द्वितीय खण्ड में पूज्य प्रवर्तक श्री जी के गरिमापूर्ण कृतित्व की विविध झाँकियाँ हैं। समाज-सुधार, शिक्षा-प्रचार, अहिंसा की प्रतिष्ठा, जीव-हिंसा बंदी, समाज-संगठन, तथा सुधारवादी क्रांतिकारी विचारों को संक्षेप में पाठकों के समक्ष रखा गया है। इतनी वहुविध प्रवृत्तियों के वीच कभी-कभी आप काव्य रचनाएँ भी करते थे और वे भी बड़ी सरस और प्रेरक। एक प्रकरण में आप श्री जी की काव्य कृतियों का भी संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

जीवन के संपूर्ण परिप्रेक्ष्य में कहूँ तो आपको 'समाज-निर्माता' विशेषण सार्थक लगता है। वे जितने निर्भीक थे,उतने ही समाज की टूटती कड़ियों को जोड़ने में कुशल! आज की परिस्थिति में जव ऐसे वहुप्रभावी व्यक्तित्व की सर्वाधिक आवश्यकता है, तव वह हमारे वीच नहीं रहा। आज सिर्फ उनकी स्मृतियाँ ही हमें पथ-दर्शन कर रही हैं। अतः तृतीय खण्ड में गुरुदेव के प्रति भावभीनी श्रद्धांजलियाँ दी हैं, जो भक्त हृदय की अक्षय भक्ति का सूचन करती हैं।

ग्रंथ प्रकाशन एवं छात्रावास-निर्माण के मुख्य प्रेरक
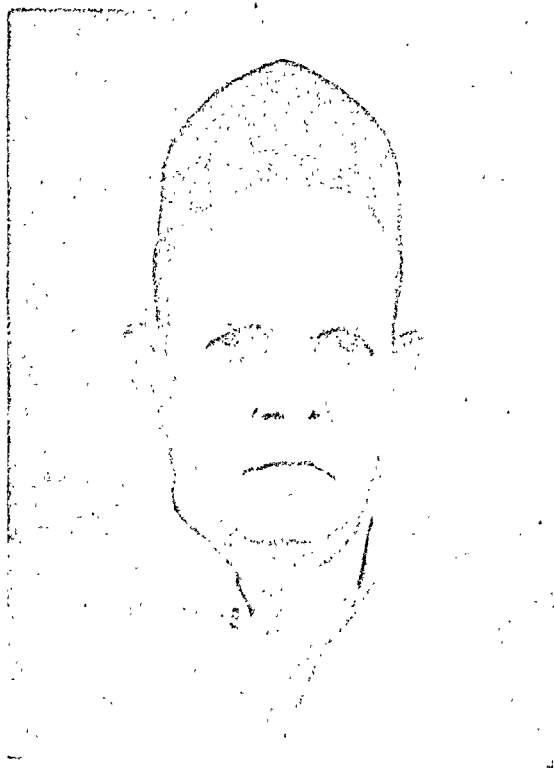
श्रीमान रामसिंहजी सा० चौधरी एकल सिंगावाले

(वर्तमान में अहमदाबाद)

तृतीय खण्ड

भावभीनी श्रद्धांजलियां (३०३ से ३४०)

प्रथम खण्ड

प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी महाराज के
इन्द्रधनुषी व्यक्तित्व के
विविध रंगों की मनहर छवि

१

जीवनयात्रा : एक महायात्री

ढाई हजार वर्ष पूर्व एक बार श्रमण-परम्परा के दो महान् दिग्गज श्रमणकेशी और गणधर इन्द्रभूति श्रावस्ती के तिन्दुकवन में मिले। केशीश्रमण पार्श्वनाथ की परम्परा के प्रतिनिधि थे और इन्द्रभूति भगवान् महावीर के धर्म-शासन के सर्वोच्च श्रमण। दोनों के मधुर-मिलन में अनेक प्रकार की तत्त्वचर्चाएँ हुई। जिज्ञासाएँ उठीं, समाधान हुए। होता ही है—

ज्ञानी से ज्ञानी मिलै, करे ज्ञान की बात

दोनों ही महान् ज्ञानी, अनुभवी, तत्त्वरसिक और जीते जागते जिज्ञासा के स्रोत। प्रश्नोत्तरों के क्रम में केशीस्वामी ने इन्द्रभूति से प्रश्न किया—

'एक बहुत बड़ा गहरा सागर है, तरंगाकुल। अथाह जलराशि लहरा रही है। तूफान उठ रहे हैं, लहरें उछल-उछल कर आकाश को चूमने जा रही हैं, ऐसे अपार पारावार को पार कर कैसे हम अपने द्वीप में पहुँच सकते हैं?'

इन्द्रभूति ने कहा—'हम साहस और दृढ़ संकल्प के साथ अपनी नाव को खेते रहेंगे, हमारा नाविक बड़ा निपुण है, तैरते-तैरते उस पार अवश्य ही पहुँच जायेंगे।'

केशी ने गौतम के संकेत से अर्थध्वनि स्पष्ट कराते हुए पूछा—"वह सागर कौन-सा है? नाविक कौन है? नौका कैसी है? और कैसे आप उस पार पहुँच जायेंगे?"

गणधर गौतम ने धीर-गम्भीर वाणी में उत्तर दिया—

सरीरमाहु नावत्ति, जीवो वुच्चइ नाविओ।
संसारो अण्णवो वुत्तो, जं तरंति महेसिणो॥

'शरीर नौका है, जीव (आत्मा) कुशल नाविक है। संसार-सागर में यह नाव तैरती-तैरती अपने तट पर पहुँच जाती है। संकल्पवली महर्षि इस यात्रा को पूर्ण कर

अपने उस अलौकिक द्वीप में पहुँच जाते हैं, जहाँ बस सुख ही सुख है ! न भय है, न कष्ट, न पीड़ा, न भूख ! न प्यास ! न शत्रु, न मित्र ! जहाँ अनन्त असीम आनन्द, अखण्ड आरोग्य और अपार शान्ति है।'

जगत् का अर्थ ही है गतिशील ! संसार के माने हैं—संसरणशील ! भव-चक्र सदा चलता रहता है। अनन्त-अनन्त प्राणी इस पथ पर सदा गति कर रहे हैं, संचरण कर रहे हैं। संसार का यह अनन्त यात्रापथ खुला है। किन्तु यह बड़ा घुमावदार है। यह पथ सीधा नहीं है, कहीं उतार है, कहीं चढ़ाव। कहीं वक्र है, कहीं सरल। इसीलिए प्राणी अनन्तकाल से यात्रा करता हुआ भी इस चक्र से निकल नहीं पाता।

इस घुमावदार चक्करदार पथ से पार पहुँचना बुद्धि का खेल है। गति करने से नहीं, किन्तु प्रगति करने से ही प्राणी अपने लक्ष्य तक पहुँच सकता है। हृदय की शुद्धि, सरलता और बुद्धि की विलक्षण निर्मलता से ही प्राणी इस पथ के पार, समुद्र के तट पर पहुँच जाता है—

'जीवा सोहिमणुप्पत्ता आययंति मणुस्सयं।'

कलुष हृदय वाले, बुद्धिहीन, अज्ञानी मंझधार में ही भटकते रहते हैं, डूबते-उतराते गोते खाते रहते हैं। इस भव-वन की घुमावदार टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों में **सहारा[1] के जंगल** की तरह भूख-प्यास से प्रताड़ित हुए बिलखते-बिलखते ही प्राण छोड़ देते हैं।

शिखरयात्रा

जीवन की यात्रा शिखर की ऊँची यात्रा है। पहाड़ की चढ़ाई है। इसमें छलांग नहीं लगाई जा सकती, किन्तु धीरे-धीरे आगे बढ़ना होता है, साहस के साथ ऊपर चढ़ना होता है। ऊर्ध्वयात्रा में संबल चाहिए, साहस चाहिए, सहारा चाहिए। ऊँचा चढ़ना, शिखर को छूना हमारा लक्ष्य है। वेदों में कहा है—

उद्यानं पुरुष ! ते नावयानं।

हे पुरुष ! ऊपर उठना ही तेरा लक्ष्य है, नीचे गिरना नहीं, तुम निरन्तर—**'ऊर्ध्वोभव'** ऊँचे उठो ! भगवान महावीर कहते हैं—**उट्ठिए,** उठो, ऊपर चढ़ो ! यह ऊर्ध्वगमन ही मानव-जीवन की यात्रा है। इस यात्रा में कहीं रुको मत ! जीवनभर विना रुके, विना पीछे मुड़े बढ़ते जाओ—

जावज्जीवमविस्सामो

जीवनभर अविश्राम चलते रहो, **चरैवेति-चरैवेति**-चलते रहो, चलते रहो, बस यही तुम्हारे प्राणों का संगान है।' कविवर जयशंकरप्रसाद ने यात्रा का यही संदेश दिया है—

हिमाद्रि तुंग शृङ्ग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती।
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतन्त्रता पुकारती।

---

१ अफ्रीका का एक बहुत बड़ा लम्बा-चौड़ा रेगिस्तान, जिसे 'सहारा का रन' कहते हैं।

अमर्त्य वीरपुत्र हो दृढ़प्रतिज्ञ सोच लो।
प्रशस्त पुण्य-पंथ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो ॥

जीवन के इस मंगलमय पुण्य-पथ पर बढ़ते जाना, अपार साहस के साथ ऊपर चढ़ते जाना, यही हमारी यात्रा है। इसी ऊर्ध्वयात्रा को पूर्ण कर हम अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। सम्पूर्ण स्वाधीनता, परम आनन्द की उपलब्धि इस यात्रा का गन्तव्य है।

यात्रा के सम्बल

यात्री अकेला ही इस पथ पर बढ़ता चला जा रहा है—**'एगे आया'**—यह आत्मा अकेला यात्री है और **'संसारम्मि अणंतए'**—अनन्त संसार पथ को पार करना है। यात्रा में पाथेय तो चाहिए। इस लम्बे यात्रापथ पर पाथेय के बिना जो कोई चलेगा, वह कष्ट पायेगा, भूख-प्यास से पीड़ित हो कर रुक जायेगा। महाप्राज्ञ प्रभु ने कहा है—

अद्धाणंमि महंतं तु अपाहेओ पवज्जइ।
गच्छंतो सो दुही होइ छुहा-तण्हाए पीडिओ ॥

इसलिए यात्रापथ में पाथेय जरूरी है। पाथेय साथ में रहे तो यात्रा सुखपूर्वक, बाधारहित पूर्ण हो सकती है। सोचिए, जीवन-पथ का पाथेय क्या है? मानवयात्री को किस सम्बल की जरूरत है; जो उसे निर्विघ्न मंजिल तक पहुँचा दे? मनीषियों ने उस पाथेय के नाम गिनाये हैं—

आत्मज्ञान
ध्रुवसंकल्प
संयम एवं तप का अभ्यास
सहिष्णुता
कर्मठता
आत्मोत्सर्ग की भावना
सत्यनिष्ठा
सहृदयता
एकता एवं अनुशासन
बौद्धिक एवं आत्मिक बल

मनुष्य जब तक अपने विराट् एवं अनन्त-शक्तिसम्पन्न स्वरूप का ज्ञान प्राप्त नहीं कर पायेगा, तब तक वह दीनता-हीनता का शिकार होता रहेगा। केशरीसिंह भी अपना स्वरूप भूल कर गर्दभसिंह बन गया था और धोबी के डंडे खाता रहा, किन्तु जैसे ही उसे अपना भान हुआ, उसका स्वाभिमान जगा, वह हुँकार उठा, दीनता भाग गई, पौरुष प्रदीप्त हो उठा। आत्मज्ञान के अभाव में दीनतारूपी राक्षसी दबोच लेती है, मनुष्य क्षुद्रता के कठघरे में बन्द हो जाता है। आत्मज्ञान से आत्मविश्वास जगता है, स्वरूपबोध का दिव्यप्रकाश मिलता है, वह प्राणों के पिण्ड में ही ब्रह्माण्ड का दर्शन करने लगता है। अथर्ववेद में कहा है—

'सर्वाह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इवासते'

'गोष्ठ (गौशाला) में गायों की भांति समस्त देवता इस मानव में निवास करते हैं।'

प्रश्नोपनिषद्कार कहते हैं—

प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत् प्रतिष्ठितम्।

संसार में जो कुछ है वह और जो स्वर्ग में है वह भी मनुष्य के प्राणों में प्रतिष्ठित है। यह **'अक्खए अणाबाहे'**—अक्षय और अनाबाध-शक्ति का स्रोत है। इस शक्ति-स्रोत का अनुभव आत्मज्ञान से ही सम्भव है। आत्म-ज्ञान से आत्मविश्वास बढ़ता है। आत्म-विश्वास ध्रुव संकल्प जगाता है। ध्रुव संकल्प ही मनुष्य की विराट् शक्ति को केन्द्रित कर सत्कार्य में नियोजित करता है। नेपोलियन बोनापार्ट से किसी ने पूछा—"आपकी असाधारण सफलताओं का रहस्य क्या है?" नेपोलियन ने दो टूक उत्तर दिया—"दृढ़ निश्चय और ध्रुव संकल्प।" भगवान् महावीर ने मनुष्य के पतन का, असफलता का कारण बताते हुए कहा है—

'अणेगचित्ते खलु अयं पुरिसे'

यह मनुष्य अनेक चित्त वाला है, विविध विकल्पों से युक्त है। विकल्पों से मनुष्य की शक्ति उसी प्रकार बिखर जाती है जैसे चलनी में भरा हुआ जल बिखर जाता है। साध्य की सिद्धि करने के लिए, लक्ष्यवेध करने के लिए चाहिए—

'अहीव एगंतदिट्ठिए'

सांप की भाँति एकान्त (एक पदार्थ में निविष्ट) दृष्टि। दृष्टि को एक ही लक्ष्य पर केन्द्रित करना होगा। "अविक्खित्तेण चेयसा"—अविक्षिप्त चित्त से—एकाग्र चित्त से लक्ष्य-साधना करनी होगी। **"कहं कहं वा वितिगिच्छ तिण्णे"**—किसी भी उपाय से विचिकित्साओं के दल-दल को पार करना होगा। विचिकित्सा-विकल्प से मन की अक्षय शक्ति छिन्न-भिन्न हो जाती है, ध्रुवसंकल्प से वह केन्द्रित हो कर अभेद्य, अपूर्वबलयुक्त बन जाती है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक कार्लाइल ने कहा है—'कमजोर से कमजोर आदमी भी अपनी शक्ति को एक लक्ष्य पर केन्द्रित कर कुछ न कुछ कर दिखाएगा, किन्तु ताकतवर से ताकतवर आदमी भी अपनी शक्ति को छिन्न-भिन्न करके कुछ नहीं कर सकेगा।'

किसी स्त्री ने घास की ढेरी को उठा कर बाहर फेंक दिया कि जलाने के सिवाय इसका क्या उपयोग होगा? दूसरी स्त्री ने उसी घास को भिगो कर कूट-पीट कर रस्सी बनाई और उससे हाथी को बाँध दिया, कुएँ से जल निकाल लिया। केन्द्रित गुम्फित घास में कितनी शक्ति है? जब तिनकों से हाथी बाँधने की सांकल बन सकती है, तो बिखरे हुए विचार एकाग्र हो कर क्या नहीं कर सकते? एकाग्रता से ध्रुव संकल्प को बल मिलता है। यही जीवनयात्री का महान सम्बल है।

संयम एवं तप का अभ्यास—जीवन-यात्रा में सफलता प्राप्त करने के लिये संयम का अभ्यास बहुत जरूरी है। संयम का अर्थ है—आत्मनिग्रह। नियमबद्धता अथवा विवेकपूर्वक नियंत्रण। संयम से ही सदाचार सधता है, शक्ति प्राप्त होती है। संयमहीन

शक्तिहीन होता है। शक्तिहीन संसार में कभी आनन्द का अनुभव नहीं कर सकता। अखण्ड आनन्द, शक्ति, ऊर्जा और तेज प्राप्त करने के लिए संयम-साधना अत्यन्त आवश्यक है। संयम से ही तप की सिद्धि होती है। तपःसाधना द्वारा ही आत्मा की अनन्त शक्तियां प्रकट होती हैं। भगवान् महावीर ने कहा है—**'अहिंसा-संजमो-तवो'**—धर्मरूप महल के तीन आधार हैं—अहिंसा, संयम और तप। इनके बिना धर्म टिक नहीं सकता। प्राचीन समय में जब कभी किसी को इष्टसिद्धि करनी होती तो वह तप करता था। चक्रवर्ती वासुदेव अपनी सार्वभौम सत्ता फैलाने के लिए तेला करते थे। ऋषि-महर्षि कर्मावरण क्षीण कर ज्ञान-प्राप्ति के लिए तप करते थे। वास्तव में **'तपोमूल-मिदं सर्वम्'**—संसार में जो भी सिद्धि है, उपलब्धि है, शक्ति है, उसका मूल तप में छिपा है। संयम और तप के अभ्यास द्वारा ही जीवन में सहिष्णुता आती है, मन को निगृहीत करने की क्षमता आती है, कर्मठता और तेजस्विता बढ़ती है।

कर्मठ व्यक्ति जिस सत्कार्य में प्रवृत्त हो जाता है, उसे प्राणप्रण से पूर्ण करके ही दम लेता है। लक्ष्य के पीछे बलिदान होने की भावना उसमें निहित होती है। एक कहावत है—**'न निश्चितार्थाद् विरमन्ति धीराः'**—धीर साहसी अपना निश्चित अर्थ प्राप्त किये बिना विश्राम नहीं लेते। वे सोच-समझकर जो मार्ग चुन लेते हैं, उस पर बढ़ते जाते हैं। उसी के प्रति समर्पित हो जाते हैं। भगवान् महावीर की भाषा में—**'तद्दिट्ठीए तम्मुत्तीए तल्लेसे'**—उसी पर दृष्टि टिका देते हैं, उसी में बुद्धि लगा देता है, उनका संकल्प उसी लक्ष्यबिन्दु में रमण करने लगता है। अंग्रेजी में कहावत है—

To aim is not enough, we must hit.

एक उर्दू शेर में उसका भावार्थ कहें तो—

"निशाने पर जो लग जाये उसे ही तीर कहते हैं।"

कविवर विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस में एक जगह कहा है—

प्रारभ्यते न खलुविघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारब्धमुत्तमजनाः न परित्यजन्ति॥

अल्पबुद्धि वाले विघ्नों के डर से कार्य प्रारम्भ ही नहीं करते। वे सिर्फ नक्षत्र पूछते रहते हैं, काम शुरू नहीं करते। मध्यमबुद्धि के मनुष्य कार्य प्रारम्भ कर देते हैं; लेकिन थोड़ा-सा विघ्न आया कि हार-थक कर बैठ जाते हैं। किन्तु उत्तमपुरुष बार-बार विघ्न आने पर भी प्रारम्भ किये हुए कार्य को बीच में नहीं छोड़ते। वे मिट जायेंगे, मगर पथ से हटेंगे नहीं।

आत्मोत्सर्ग की वृत्ति हाथी की वृत्ति होती है। भगवान् महावीर ने कहा है—**'संगामसीसे जह नागराया'** जैसे नागराज हाथी रणक्षेत्र में मोर्चे पर जा कर डट जाता है, चाहे भालों के घाव लगें, चाहे गोलियों की बौछार हो, रणभूमि में मरना मंजूर है, मगर वापस भागना नहीं। बलिदानी अपने लक्ष्य पर इसी प्रकार डट जाता है। **'चइज्ज देहं**

नहु धम्मसासणं'—शरीर को छोड़ दूंगा, मगर अपने धर्म पर आँच नहीं आने दूंगा। ऐसे बलिदानी के लिए कुछ भी दुष्कर व दुष्प्राप्य नहीं है। नीतिकार ने कहा है—

शरीर-निरपेक्षस्य दक्षस्य व्यवसायिनः।
बुद्धिप्रारब्धकार्यस्य नास्ति किंचन दुष्करम् ॥

आत्म-बलिदान की जिसमें उमंग होती है, उसे शरीर का मोह नहीं होता, वह सिर्फ अपने कर्तव्य का ध्यान रखता है। उसकी बुद्धि प्रारम्भ किये हुए कार्य को पूर्ण करने में जुटी रहती है। वह स्वार्थों और सुखों का बलिदान करने को उद्यत रहता है। ऐसे व्यक्ति के लिए संसार में कौन-सा कार्य कठिन है ? गालिब के शब्दों में वह सितारों पर भी कमन्द डाल सकता है—

"पस्तियों में रहकर भी जिनके इरादे हों बुलन्द,
डालते हैं वोह जवाँ-हिम्मत सितारों पर कमन्द।"

ऐसे दृढ़संकल्पी और बलिदानी व्यक्ति सत्य पर अड़िग रहते हैं। सत्य को ही वे ईश्वर समझते हैं। **'सच्चस्स आणाए उवट्ठिओ मेहावी मारं तरइ'**—वे सत्यनिष्ठ पुरुष सत्य के लिए सब कुछ छोड़ देते हैं। अपने सत्यबल से मृत्यु को भी जीत लेते हैं। उनकी सत्यनिष्ठा ही उन्हें संसार में सर्वोच्च पद पर आसीन कर देती है। एक राजा के सामने जब लक्ष्मी ने कहा कि—'मैं जाती हूँ, क्योंकि तुम सत्य के पक्षपाती हो गये हो।' तो उसने साफ-साफ कहा—'जाओ !' जब कीर्ति, आरोग्य और सत्ता भी जाने को तैयार हुई तो राजा ने सहर्ष कह दिया—"सब कुछ जाए तो भी मुझे परवाह नहीं। मैं अपना सत्य नहीं छोड़ूंगा।" जब सत्य ने कहा—"मैं भी जा रहा हूँ; तो राजा ने उसे पकड़ लिया। कहा—'सत्य देवता ! तुम्हारे लिए ही तो मैंने लक्ष्मी, कीर्ति आदि सबको त्याग दिया। लेकिन मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकता। सत्य की रक्षा करना ही मेरा जीवन-ध्येय है। इसीलिए राजस्थानी कवि कहता है—

सत मत छोड़ो शूरमा, सत छोड़े पत जाय।
सत की बाँधी लक्ष्मी, फेर मिलेगी आय ॥

सत्य ही ईश्वर है, **'सच्चं खु भगवं'** सत्य ही भगवान है। इस जीवन-यात्रा में सत्यनिष्ठा बहुत बड़ा सम्बल है। सत्य का आग्रही—कभी असत्य का आश्रय नहीं लेता। बड़े से बड़ा लाभ दीखता है, तब भी वह उसकी परवाह नहीं करता, वह लाभ का लोभ न करके किसी भी मूल्य पर सत्य की रक्षा करता है। सत्यनिष्ठ को न पुत्र का मोह होता है, न शिष्य का, न परम्परा का और न अपने शरीर का ही। उसका नारा होता है—**'सत्यमेवेश्वरो लोके'** संसार में सत्य ही एकमात्र ईश्वर है।

सत्यनिष्ठ का हृदय सदा करुणा एवं भ्रातृभाव से ओतप्रोत रहता है। वह सहृदय होता है। किसी के कष्ट में स्वयं मोम की तरह पिघल जाता है। जिसको विश्वास देता है, उसे पूरा निभाता है। भगवान् महावीर ने सहृदय का आदर्श बताया है—**'महुकुम्भे महुपिहाणे'**—मधु का घड़ा और मधु का ही ढक्कन अर्थात् वाणी मीठी मधु

के समान हो और हृदय निर्मल, पवित्र, सदा भलाई करने वाला—**पियंकरे पियंवाई**—प्रिय करने वाला और प्रिय ही बोलने वाला हो ! सहृदयता मनुष्यता का भूषण है। जीवन-यात्रा का दुर्लभ सम्बल है। जिसके पास हृदय नहीं, वह दूसरे हृदय को कैसे समझ सकेगा ? हृदय ही हृदय को जीतता है। हृदय की सद्भावना वायुमण्डल को मैत्रीपूर्ण बना देती है। बड़े-बड़े अत्याचारी, अंगुलीमाल और अर्जुनमाली जैसे हत्यारे भी सहृदयता से अभिभूत हो गए। पशु और अबोध बच्चे भी सहृदयता से रीझ उठते हैं।

सहृदय दूसरों के हृदय को सहज ही अपनी ओर खींच लेता है। हृदय का हृदय के प्रति आकर्षण एकता और संगठन को बल देता है। मनुष्यों की एकता कोई झुंड नहीं है, यह विचार और भावना के सूत्र से बंधा हुआ हार्दिक संगठन है। जीवन-पथ पर मनुष्य अकेला आया है, पर सबको साथ ले कर चलना पड़ता है। मनुष्य का स्वभाव है, वह दूसरों के साथ आत्मीय सम्बन्ध-एकत्वभाव स्थापित करके चलता है। इसीलिए आदिचिन्तक ऋषि ने कहा है—

'संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्'

साथ में चलो, मिलकर चलो, मिलकर कुछ बात कहो। अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता, अकेला तिनका रस्सी नहीं बन सकती, अकेली ईंट महल या मन्दिर का रूप नहीं ले पाती। समूह में ही शक्ति है—**'संघे शक्तिः कलौ युगे'**—कलियुग में संघ में ही शक्ति है। अँग्रेजी की कहावत है—United we stand, divided we fall. 'संगठित होकर हम खड़े रह सकते हैं, विभाजित होते ही गिर पड़ेंगे।'

संगठन और विभाजन का परिणाम देखना हो तो किसी भी बड़े भवन या मन्दिर की तरफ देख लो, किसी भी बड़ी संस्था का इतिहास पढ़ लो। भारत की पराधीनता का कारण क्या था ?—सिर्फ फूट ! नैषधीय चरित्र में कहा है—

पंचभिर्मिलितैः किं तज्जगतीह न साध्यते।

'जगत में ऐसा कौन-सा काम है, जिसे पांच व्यक्ति मिल कर नहीं कर सकते ?' संगठन, एकता एवं अनुशासन में सफलता का रहस्य छिपा है। जहाँ अनुशासन नहीं, छोटे-बड़े का लिहाज नहीं, वह संघ, संस्था अधिक दिन टिक नहीं सकती। जिस झाडू को बांधने की रस्सी ढीली हो गई है, उसके तिनके बिखरते क्या देर लगेगी ? कवि ने कहा है—

'यत्र सर्वेऽपि नेतारःसर्वे पण्डितमानिनः
सर्वे महत्त्वमिच्छन्ति ससंघोऽप्यवसीदति।'

जिस संगठन में सभी नेता हैं, सभी अपने को पण्डित मानते हैं। सभी अपना-अपना महत्व जमाना चाहते हैं, वह संगठन अधिक दिन नहीं चल सकता। संगठन एवं एकता का प्राण अनुशासन है। भगवान महावीर ने कहा है—

'अणुसासिओ न कुप्पिज्जा'

गुरुजनों के अनुशासन से कभी क्षुब्ध नहीं होना चाहिए। क्योंकि अनुशासन में रहने वाला आत्मानुशासन करता है और आत्मानुशासन करने वाला कहीं भी शासन कर सकता है। जीवन में सुख, स्वाधीनता और उन्नति की कामना करने वाला संगठन, एकता और अनुशासन में आस्थाशील होता ही है।

बुद्धिबल एवं आत्मबल

अनुशासन का अर्थ यह नहीं है कि व्यक्ति पशु या भेड़-बकरी की तरह पीछे-पीछे चलता रहे। अनुशासन में बौद्धिकता का लोप नहीं करना है। बुद्धिबल ही तो सर्वश्रेष्ठ बल है। मित्रबल, धनबल, शरीरबल, कुलबल इन सब में बुद्धिबल श्रेष्ठ है। यदि बुद्धि बल है, तो आत्मबल भी जाग्रत रहता है। बुद्धि के साथ आत्मा का गहरा सम्बन्ध है। एक ओर हजारों-लाखों सुभट हों और एक ओर अकेला बुद्धिमान। दुबले-पतले लँगोटी-धारी गाँधी ने अंग्रेजी शासन की दुर्दान्त सेनाओं के दाँत खट्टे कर दिये! किस बल पर? बुद्धि एवं आत्म-बल के आधार पर ही तो!

मुद्राराक्षस में एक प्रसंग है। जिस समय चाणक्य ने लोगों के मुख से सुना कि अनेक प्रभावशाली वीर और प्रचण्ड योद्धा उनका साथ छोड़ कर विपक्ष में चले गये हैं। उस समय उस बुद्धिबली ने स्वाभिमानपूर्वक कहा—'जो चले गये हैं, वे तो चले ही गए हैं, जो शेष हैं वे भी जाना चाहें तो चले जाएँ। नन्दवंश का विनाश करने में अपने पराक्रम की महिमा दिखाने वाली और कार्य सिद्ध करने में सैकड़ों सेनाओं से अधिक बलवती केवल एक मेरी बुद्धि मेरे साथ रहे—

एका केवलमर्थसाधनविधौ सेनाशतेभ्योऽधिका,
नन्दोन्मूलन-दृष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मा गान्मम।

तो यह महिमा है बुद्धिबल की। बुद्धिबल से ही मनुष्य की श्रेष्ठता है, शरीरबल में तो सिंह, हाथी और गरुड़ मनुष्य से कहीं अधिक बलशाली हैं। किन्तु वास्तव में **'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य'**—जिसके पास बुद्धि है, वही बलवान है। बुद्धिमान ही जीवन-यात्रा को निर्विघ्न अपनी मंजिल तक पहुँचा सकता है। बुद्धिबल से ही आत्मबल की जाग्रति और वृद्धि होती है। आत्मबल सब शक्तियों का मूल बीज है। आत्मबल टॉनिक पीने से नहीं बढ़ता है, किन्तु वह ध्रुव संकल्प, संयम, तप, सहिष्णुता, कर्मठता, बलिदान की भावना, निःस्वार्थवृत्ति, सत्यनिष्ठा और अनुशासनबद्धता से बढ़ता है। आत्मबली ही सर्वबली होता है। वह किसी भी शक्ति से पराजित नहीं होता। छोटी-सी देह में उसकी विराट् आत्मा संसार की समस्त शक्तियों को छिपाये रहती है। इसलिए जीवन की यात्रा में, श्रेष्ठता के शिखर को छूने में आत्मबल आदि ये सम्बल आवश्यक ही नहीं, किन्तु अनिवार्य हैं। इन्हीं सम्बलों के आधार पर मनुष्य अपनी यात्रा में सफल हो कर मंजिल पा सकता है।

इतनी भूमिका के बाद हम इस बात पर आना चाहते हैं कि जीवन की इस शिखर-यात्रा में एक ऐसा महान यात्री; एक शिखर यात्री अभी-अभी हमारे सामने से

गुजर चुका है जिसके पास ये सम्बल थे। उसके जीवन में उपरिवर्णित सभी शक्तियों का विकास हुआ था। एक छोटे से गाँव में, अनजान परिवार में जन्म लेकर उसने वह कमाल पैदा किया कि जिसके लिए एक सूफी संत ने पुकारा था—

शक्ले इन्सां में खुदा था, मुझे मालूम न था।
चाँद बादल में छिपा था, मुझे मालूम न था॥

उसके चरण-चिह्न अभी धूमिल नहीं हुए हैं। उसकी स्मृतियां अभी स्मृति-पटल से ओझल नहीं हुई हैं। जिसने देखा, वह आज भी उस महायात्री की याद में तरसता है, उसकी तस्वीर दिल में देखकर पुकारता है—

तलाश उसकी थी काबे में,
मिला वह खानाए-दिल में।

उस महायात्री का हृदयहारी नाम था महाश्रमण पन्नालाल! पन्ना हरा होता है, लाल-रक्ताभ! हरा रंग जीवन में सदावहार, प्रसन्नता-प्रफुल्लता और समृद्धि का सूचक है। उसका जीवन सदा बहार था, उसकी समृद्धि, आन्तरिक वैभव, आध्यात्मिक सम्पत्ति द्वितीया के चाँद की तरह सदा बढ़ती ही रही। लालिमा उनके अन्तःकरण की तेजस्विता की सूचना देती है। वे बालक थे तब भी उनका हृदय अनन्त उत्साह से भरा था, यौवन तो पौरुष और उत्साह का पिंड होता ही है। पर बुढ़ापे में भी उन्हें वृद्धत्व छू नहीं गया। उनके अन्दर कर्मठता, तेजस्विता की रक्तिमा सदा प्रवाहित थी। वे एक कर्मयोगी थे। कर्मण्यता में उनका अटूट विश्वास था। जीवन की अन्तिम साँस तक वे पुरुषार्थ और कर्मयोग में लीन रहे, जिस कार्य में उनका विश्वास था, रुचि थी उसे प्राणपण से करते रहना, बस करते रहना, यही उनका लक्ष्य था, इसी में आनन्द और कृतार्थता की अनुभूति करते थे। उनके सतत अविश्रान्त उदात्त कर्मयोग को देखकर अमेरिकी दार्शनिक विलियम ड्यूरेड का यह उल्लेख याद आता है। उसने एक पुस्तक—Meaning of life (जीवन का उद्देश्य) लिखी है। इसमें श्री जवाहरलाल नेहरू का एक मत उल्लेख किया है। श्री नेहरू ने लिखा है—"सच्चा समाधान चिर कर्मण्य रहने में है। जिस दिव्य कर्म में मेरा मन लग गया है वही कार्य अविश्रान्त रूप से करने में बस है·········उसीमें से मैं सम्पूर्ण उत्साह, शान्ति और समाधान पा लेता हूँ।"

स्व० महामना प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी महाराज भी अपने विषय में कुछ लिखते तो इसी प्रकार की भावाभिव्यक्ति करते, इसी से मिलीजुली शब्दावली में।

उनकी सत्यनिष्ठा, संयम वृत्ति और निर्भीकता अद्वितीय थी। इन्हीं शक्तियों ने तो उनको एक सामान्य भूमिका से महाश्रमण के शिखर पर पहुँचाया। संगठन प्रेम, अनुशासनबद्धता और परोपकार, परहित के लिए आत्म-बलिदान कर डालने की उनकी उद्दाम भावना आज भी उनके सम्पर्क में आने वालों के दिलों में लिखी हुई मिलेगी।

संक्षेप में यहाँ इतना कहना प्रासंगिक होगा कि जीवन-यात्रा के जिन गुणों को सम्बल रूप में हमने स्वीकार किया है, वे गुण उस दिव्य व्यक्तित्व में मूर्तिमान थे। वह शक्ति और वह ऊर्जा उस महाप्राण में तरंगित थी कि हजारों-हजार श्राद्धजन उससे प्रेरित होते थे। उनकी संप्रेषणशीलता अद्भुत थी।

उनके सम्बन्ध में दिव्य चमत्कारों की भी अनेक श्रुतियां हैं, पर वह और कुछ नहीं उनके आन्तरिक बल का ही प्रतिबिम्ब था। जो देवताओं को भी आकृष्ट करता है। भगवान् महावीर की वाणी में जिस महामानव के चरणों में—

देवा वि तं नमंसंति

देवता भी नमस्कार करते हैं, वह आत्म-पुरुष था वह व्यक्तित्व ! जिसकी जीवन रेखाएँ अगले पृष्ठों पर अंकित हो रही हैं।

संस्कार-जागरण

□

प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से वसन्त-ऋतु को काव्यों में 'ऋतुराज' कहा गया है। गीता में भी 'ऋतूणां कुसुमाकर:' कहकर इसकी विशिष्टता बताई है। किन्तु प्रकृति के संभरण और समृद्धि की दृष्टि से विचार करें तो वसन्त से भी अधिक 'वर्षा-ऋतु' का महत्व है। प्राचीन संस्कृत साहित्य वर्षा-ऋतु की महिमा से भरा पड़ा है। वर्षा की धाराओं से प्रकृति का अतृप्त और रिक्त हृदय शीतल मधुर जल से लबालब भर जाता है। नदी-नद-सरोवर सब का अन्तस्तल जल-पूरित हो जाता है, निदाघ की भीषण उष्मा शांत हो जाती है, और शीतलता का साम्राज्य छा जाता है। सूखे खेत हरे-भरे हो जाते हैं, नग्न धरा हरी साड़ी पहनकर शृंगार सजने लगती है। सूखे और नंगे पहाड़ों पर भी हरी-हरी दूब निकल आती है जो देखने पर हरी मखमल-सी बिछी लगती है मन को गुदगुदाने, वाली आँखों को सरसाने वाली। समस्त जीव जगत की सुख-समृद्धि वर्षा ऋतु पर ही निर्भर करती है।

बादशाह ने अपने सभासदों से पूछा कि बारह में से दो निकाल दिये तो क्या बचा? सभी ने कहा—दस! किन्तु गणित को भी मानवीय दृष्टि से देखने वाले बीरबल ने कहा—शून्य!

आश्चर्यपूर्वक बादशाह ने कारण पूछा—तो बीरबल ने बताया—बारह महीनों में से यदि वर्षा के दो महीने निकल जायं, तो संसार का क्या हाल होगा? न धरती पर अन्न पकेगा, न घास-फूस निकलेगा, न वृक्षों पर पत्ते और फल आयेंगे, न नदी और तालाबों में पानी की एक बूंद मिलेगी। फिर संसार शून्य नहीं हो जायेगा?

कल्पना कीजिए, यदि एक वर्ष अच्छी वर्षा न हुई तो दुष्काल से त्राहि-त्राहि नहीं मच जाती है? नर-कंकाल और पशु-कंकालों से धरती का रूप कितना रौद्र, कितना

बीभत्स बन जाता है? तो वर्षा ऋतु ही सृष्टि का प्राण है, जगत का आधार है। वर्षा ऋतु से ही वर्ष बनता है।

वर्षा ऋतु के दो मास होते हैं। श्रावण और भाद्रपद। ये दो मास भारत की धर्म और संस्कृति-प्रिय प्रजा के त्यौहारों के दिन हैं। उत्सव और उल्लास के महीने हैं। प्रकृति की हरी-भरी गोद को देखकर मानव-मन भी सहज ही ललक उठता है और वह त्यौहारों के रूप में अपना आन्तरिक उल्लास व्यक्त करता है। भाद्रपद तो महान पर्वों का महीना है। इसी महीने में वासुदेव श्रीकृष्ण का जन्म होता है। कारागार की एक अंधेरी कोठरी में भारत खण्ड की राजनीतिक चेतना का सूर्योदय होता है। इसी भाद्रपद में पर्युषण-महा पर्व का प्रारम्भ होता है। जैन-जगत का यह अष्टाह्निक महापर्व आध्यात्मिक जागरण और संस्कार-शुद्धि का महान संदेश लेकर आता है। अनुश्रुति है कि प्राचीन समय में आठ दिन तक श्रद्धालु-जन उपवास कर आत्मचिन्तन, ध्यान-स्वाध्याय और आत्मालोचन करते रहते थे। वर्ष भर की भूलों और अपराधों की शुद्धि तथा नयी आध्यात्मिक शक्ति की उपलब्धि का यही पुण्य पर्व है। निर्ग्रन्थ प्रवचन का उपासक, चाहे वह श्रमण हो या श्रावक, इन दिनों में नई आध्यात्मिक ऊर्जा प्राप्त करता है, वर्ष भर के लिए नये संकल्प करता है और मनोबल संचित करता है। भाद्रपद मानव जाति को भद्रता-सरलता और सात्त्विकता का संदेश देता है। भद्र—कल्याणकारिता का उद्बोधन देता है।

प्रचीनतम जैन अनुश्रुति के अनुसार भाद्रपद का महीना मानवता की संस्कार शुद्धि का महीना है। गुहावासी मांसाहारी जातियों ने जब धरती पर हरियाली छाई देखी, फल-फूल खिले देखे तो मांसाहार को त्यागकर फल-फूल शाक-आहार द्वारा आजीविका चलाने का पवित्र संकल्प किया था। क्रूरता का परित्याग कर दयालु और संस्कारी बनने का यह उपक्रम था। इसलिए भाद्रपद संस्कार-जागरण, संस्कार-शुद्धि अथवा संस्कार निर्माण का महीना है। प्राचीन मानव सभ्यता की दृष्टि से।

हां तो भाद्रपद की इसी शुद्धसात्त्विक वेला में, पवित्रता और तपाराधना की प्रेरक घड़ियों में एक बालक ने जन्म लिया था। श्री तुलसादेवी के गर्भ से अवतार धारण किया था। असंख्य-असंख्य जीवधारियों के कल्याण और श्रेयस्साधन की अनन्त संभावनायें लेकर।

राजस्थान का जोधपुर राज्य उसमें नागौर जिला का विशेष महत्व है। इसी नागौर जिला में डेगाना शहर के पास एक छोटा-सा गांव है—कीतलसर! शायद कभी इस गाँव में खूब गहरे और विशाल सरोवर सदा जल से भरे रहे होंगे, उनका तल (पैंदा) कभी सूखा नहीं होगा। इस कारण गाँव का नाम भी कीतलसर रख दिया हो। कीतलसर की भूमि सोना-मोती उगलती है या नहीं, मुझे नहीं पता, किन्तु वहां की नारियाँ अवश्य ही रत्नगर्भा हुई हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है—भाटी गोत्रीय माला-कार वालूराम जी की धर्मपत्नी तुलसादेवी। संयोग से इन दम्पती की आजीविका का साधन भी—निर्माण और विकास का एक अंग था। धरती माता को नये-नये रंग-विरंगे परिवेश से मंडित करते रहना—फल-फूल, शाक-सब्जी के रूप में विविध अलंकारों से

उसकी शोभा बढ़ाते रहना और जन-जन को शाकाहार की सामग्री सुलभ करना—यही सात्त्विक धंधा था उनका। बालूराम जी घरेलू खेती-बाड़ी करते थे। इसलिए उन्हें 'माली' कहा जाता था। पता नहीं फूलों की माला बनाने वाले वे मालाकार थे या नहीं। किन्तु कलाकार तो अवश्य थे। जिन्होंने अपनी संतान में सात्त्विक और उदात्त संस्कारों का निर्माण किया।

वि० सं० १९४५ भाद्रपद शुक्ला तृतीया शनिवार को श्री तुलसादेवी जी ने एक होनहार तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। पुत्र का नाम 'पन्नालाल' रखा गया।[1]

यह एक स्मरणीय संयोग ही कहा जा सकता है कि प्रवर्तक पूज्य श्री पन्नालालजी महाराज साहब का जन्म, दीक्षा और स्वर्गवास तीनों शनिवार के दिन ही हुए।

शनि ग्रह ज्योतिष शास्त्र के अनुसार शक्ति और स्थिरता का प्रतीक माना गया है। प्रसिद्ध ज्योतिषी शास्त्री डा० चन्दनलाल जी पाराशर ने लिखा है—'शनि अन्तःकरण का स्वामी है। यह बाह्य और आन्तरिक व्यक्तित्व को मिलाने का कार्य समान रूपेण करता है। अहंभावना, का भी प्रतीक है। आत्मिक रूप से यह तत्त्वज्ञान, सक्रियता, नायकत्व, मननशीलता, सतर्क स्थिरता, मानसिक रूप से उच्चाधिकार योग, तंत्र एवं संन्यासित्व का प्रतिनिधित्व करता है।[2]

मनीषी चिन्तक उपाध्याय श्री अमर मुनि जी ने लिखा है—"शनि स्थिरता का प्रतीक है, लेकिन निष्क्रियता का नहीं। निष्क्रिय रहने वाला कोई देव कैसे हो सकता है। ज्योतिष शास्त्र में शनि का स्वरूप बाणारूढ़ धनुष खींचे हुए बताया गया है, जो जीवन में वीरतापूर्वक लक्ष्य वेध करने की सक्रियता का प्रतीक है।"[3]

सामान्य जीवन में भी स्थिरता आवश्यक है। अस्थिरता जीवन का सबसे बड़ा दोष है। एक अंग्रेज कवि ने जीवन के तीन बड़े शत्रुओं के नाम गिनाये हैं—

Hurry हरीं—हड़बड़ी—जल्दबाजी
Worry वरी—चिन्ता-फिकर
Curry करी—गड़बड़ी

ये तीनों ही अस्थिरता जन्य दोष है। श्री पन्नालाल जी के व्यक्तित्व में जन्म वेला में शनि का आगमन उक्त शनि के प्रतीकात्मक और प्रभावशील गुणों का स्पष्ट निदर्शन करता है। वे धैर्य की अचल मूर्ति थे ही, उनमें सक्रियता, मननशीलता, उच्च अधिकार और संन्यास योग का आगमन शनि का उच्च प्रभाव स्पष्ट सूचित करते हैं। उनके व्यक्तित्व का विश्लेषण करने पर पूरे जीवन में शनि का प्रभाव परिलक्षित होता है, जो अगली घटनाओं से स्वयं ही सूचित हो जायेगा।

---

१ ईस्वी सन् ८ सितम्बर १८८८
२ 'सात वारों से क्या सीखें' भूमिका, पृ० ११। ३ वही

बाल्यकाल : संस्कार निर्माण की बेला—

बाल्यकाल कितना निर्दोष और पवित्र होता है। कहा जाता है—बालक में भगवान का रूप है। जहाँ तक उसकी सरलता का प्रश्न है—वह आदर्श होती है। जैनाचार्यों ने भी कहा है—

"किं बाललीलाकलितो न बालः पित्रोः पुरोजल्पति निर्विकल्पः।"

—रत्नाकरपच्चीसी, श्लोक ३

'जह बालो जंपंतो' जैसे बालक बिना कुछ छिपाव-दुराव किए सरलतापूर्वक जो भी किया है, वह सब कह सकता है, वैसा ही सरल मन आलोचना करते समय होना चाहिए। बालक का हृदय निर्विकार होता है। साथ ही वह कच्ची मिट्टी का पिंड है, माता-पिता जैसे संस्कार भरना चाहें, जैसी मूर्ति घड़ना चाहें वैसी ही घड़ सकते हैं।

श्री पन्नालाल जी के पिता बालूराम जी सरल प्रकृति के परिश्रमी व्यक्ति थे। व्यवसाय से माली होने के कारण उनकी प्रकृति में कोमलता थी और कोमल फूल-पौधों के प्रति सहज अनुराग था। वे सहेजने की वृत्ति वाले थे। बालक को भी वे एक नन्हे पौधे की तरह बड़ी सावधानी और कोमलता के साथ संभालते थे। माता तुलसाजी के जीवन में धार्मिक संस्कारों का रंग था, साथ ही वह अनुशासन में कठोर भी थी। माली फूलों को खाद्य पानी देकर बढ़ाता है, प्यार दुलार करता है तो बेकार झाड़-झंखाड़ को उखाड़ता भी है, टेढ़ी-मेढ़ी डालियों को कैंची भी करता है। माता तुलसा जी के जीवन में ये दोनों ही गुण थे। सत्संगति एवं सरलता, मीठी और कोमलवाणी रात-दिन परिश्रम करते रहने की आदत—ये सब तुलसाजी के व्यक्तित्व के घुले-मिले रंग थे जिनका प्रतिबिम्ब बालक पन्नालाल जी के जीवन में झलकना स्वाभाविक ही था।

वीर नेपोलियन से किसी ने पूछा—आपने यह वीरता कहाँ से सीखी ?

उत्तर मिला—माता के दूध के साथ मिली हुई है।

यदि मैं प्रवर्त्तक श्री पन्नालालजी महाराज साहब से पूछता—आपके जीवन में यह कोमलता और कठोरता का संगम कैसे हुआ तो वे शायद ऐसा ही उत्तर देते—माता की जन्म-घुटी के साथ ही हुआ ! सच तो यह है कि उदात्त और बहुरंगी व्यक्तित्व निर्माण के संस्कार उन्हें माता के दूध के साथ ही मिले थे।

भाग्य का चक्र

श्री बालूरामजी बड़ी फक्कड़ वृत्ति के थे। स्पष्टवादी और बे-हिचक खरी-खरी सुनाने वाले। कभी-कभी 'उलटा चोर कोतवाल को डांटे' वाली कहावत के शिकार हो जाते हैं। कहने वाले ने कह दिया—**'सत्ये नास्ति भयं क्वचित्'**—साँच ने आंच कोनी, किन्तु व्यवहार में जब हम सत्य पर चोट पड़ती देखते हैं तो धीरज डोल जाता है। क्षणिक-अहित सत्य की शाश्वत आस्था को हिला देता है। हम ही क्या, संत तुलसीदास जैसों ने भी किसी चोट से आहत होकर कह दिया था—

'साँच कहूँ तो मारे लाठी, झूठे जग पतियाही'—कुछ ऐसा ही घटनाक्रम बालूरामजी के साथ घटित हुआ। किसी बात पर ठकुर सुहाती न कह सके, न कर सके, परिणाम स्वरूप ठाकुर साहब नाराज हो गये और उन्हें गाँव से निकल जाने की आज्ञा दे दी। वि० सं० १९५५ के लगभग राज-कोप का शिकार हुआ, वह परिवार अपनी जन्मभूमि की मिट्टी को अन्तिम बार स्पर्श कर सदा-सदा के लिए उसे छोड़ने को विवश हुआ। पक्षी को भी अपना घोंसला छोड़ते समय कष्ट होता है, तो इन्सान का यह मिट्टी का घरोंदा चाहे जितना बड़ा हो या छोटा, छोड़ते समय दिल भर आना सहज है। भरे दिल से दम्पती ने अपना सामान बांधा, १० वर्ष के पन्नालालजी भी मां-बाप का साथ देने जुट गए। एक भैंसा था, जिस पर सब सामान लादा, और निकल पड़े जन्मभूमि का त्याग कर।

प्रश्न था—'जायें तो कहाँ ? आपत्तिकाल में कौन सहायता करेगा ? फिर याद आया—

धीरज धर्म मित्र अरु नारी,
आपत काल परखिये चारी।

बाबा तुलसीदास ने कहा है तो अब इसकी परीक्षा करनी चाहिए। धीरज, धर्म और नारी तीनों तो वहीं साथ थे ही, अब बारी थी मित्र की।[1] थांमला के सेठ जोरावरमलजी डूंगरवाल बालूरामजी के पिता के घनिष्ट मित्र थे। बालूरामजी को उन पर भरोसा था कि वे इस बुरी बखत में नजर नहीं फेरेंगे और सहारा देंगे। परिवार के सभी प्राणी भैंसे पर सामान लादकर धर-मजला-धर कूचा चल पड़े। विपत्ति कभी अकेली नहीं आती। थोड़ी दूर चले होंगे कि भैंसा बिदक गया। वह उछालें मारने लगा, लदा हुआ सामान इधर-उधर गिरा दिया और मनमौजी छूटकर भाग गया। आखिर उसे भी परतंत्रता अखरी होगी। क्यों इन्सान के बन्धन में रहे ? भाग गया सो भाग गया। सामान भी रास्ते में दूर तक फैल गया। घाव में और घाव ! दुष्काल में अधिक मास की तरह और अधिक पीड़ा ! किन्तु सभी ने साहस बटोरा। बुरा वखत सभी को आता है—

दिन एक-से नहीं हैं चमने-रोजगार के।
दो दिन खिजा के होते हैं दो दिन बहार के॥

किन्तु मनुष्य तो वह है, जो हिम्मत न हारे, जिन्दगी की राह पर कदम बढ़ाता ही चला जाये—जीवन-सागर में तूफान तो आते ही हैं, किन्तु तूफानों से टक्कर लेकर चलने वाला ही तो इन्सान है—

सामान अपने कोमल कन्धों पर सिर पर उठाया और मारवाड़ के वे कंटीले, रेतीले रास्ते पार करते हुए श्री डूंगरवाल जी के घर थामला पहुँचे। डूंगरवाल जी में मित्रता और सज्जनता दोनों ही गुण थे। सच्चा मित्र क्या नहीं करता ?

साचो मित्र सचेत कहो काम न करै किसो।
हरि अर्जुन रे हेत, रथ कर हाँक्यो राजिया।

यहाँ तो रथ हाँकने का सवाल ही नहीं, सवाल था सिर्फ आश्रय का, सहारे का। बालूरामजी ने डूंगरवालजी से सिर्फ एक ही बात कही थी—बेल को बढ़ने के लिए सहारा देना पड़ता है, आपत्ति में फंसा इन्सान भी जब उसका आसियाना उजड़ जाता है तो नया आशियाना बसाने के लिए, अपने पर फैलाने के लिए थोड़ा-सा सहारा चाहता है।"

डूंगरवालजी दिल के दरिया थे। मित्रों के सुख के साथी ही नहीं, दुख के साथी भी थे। उन्होंने बालूरामजी को हिम्मत बंधाई और आश्रय दिया। रहने के लिए स्थान, और करने के लिए काम बस दो बातें मिल गई तो पुरुषार्थी कष्ट की नदी को बड़ी जल्दी ही तैर जाता है। फिर बालूरामजी तो संस्कारी थे। धार्मिक प्रकृति के ! पुरुषार्थ करके उजड़ा हुआ घर तो बसाया ही, मन को शांति देने के लिए वे धर्म की शीतल छाया में आगये।

संत-समागम

थांवला में उस वर्ष[1] गुरुदेव श्री मोतीलालजी महाराज का शिष्य मंडली सहित चातुर्मास था। वहाँ के भावनाशील श्रद्धालु श्रावकों के लिए यह परम सौभाग्य का प्रसंग था। उनका उपदेश सर्वसाधारण के लिए होता था, उसमें नैतिक जीवन की प्रेरणा और सदाचार का प्रोत्साहन मुख्यत: होता जो श्रोताओं के हृदय को सीधा स्पर्श कर जाता। श्री डूंगरवालजी को एक दिन सत्संग में जाते देखकर बालूरामजी ने पूछा-सेठ जी ! आप सत्संग में जाते हैं, सुना है मुनिजी का उपदेश बड़ा ही सुन्दर होता है, क्या हम भी सुन सकते हैं ?

सेठ जी—वाह ! यह भी कोई पूछने की बात है ? संतों का द्वार तो सभी के लिए खुला है। यह तो नदी की बहती धारा है, जो इसमें डुबकी लगाले, जो अपना घड़ा भरले वह उसी का है। भाई, तुम भी मेरे साथ चलो, मुनिजी के दर्शन करो, और उनके उपदेश भी सुनो !······

दूसरे दिन दोनों मित्र गुरुदेव श्री मोतीलालजी की सेवा में पहुँचे। बालूरामजी का परिचय हुआ और गुरुदेव ने बड़े स्नेह एवं वात्सल्य के साथ उनसे बातचीत की। जादू तो वह है जो सिर चढ़कर बोले, पहली ही मुलाकात में बालूरामजी पर 'संत-समागम का जादू चढ़ गया। धर्म-कथा सुनकर वे घर आये तो बड़े शाँत और खुश थे। तुलसाजी ने पूछा—आज क्या किसी मित्र के घर दाल-बाटी खा के आये हो ? कैसे बड़े खुश-खुश और तरोताजा दीख रहे हो ?

---

१ वि० सं० १९५६

जोले वालकों ने मजाक किया—पन्नालालजी, मुँहपत्ती बाँधने से तुम बड़े गुरुजी बन गये ? साधुजी जैसे ही लगने लगे हो। मुँहपत्ती तुम्हारे चेहरे पर अच्छी जंचती है ?

पन्नालालजी हाथ जोड़कर गुरुदेव के पास आये और बोले—गुरुदेव ! मेरे मुँह पर यह मुँह-पत्ती कैसी लगती है ?

गुरुदेव ने हँसकर कहा—अच्छी लगती है ! क्यों क्या बात है ?

पन्नालालजी—मुंहपत्ती लगाने से मैं भी आप जैसा लगने लगा हूँ, यह सच है ?

हाँ, हाँ, मुँहपत्ती तो साधुता का प्रतीक है। साधु जैसा लगे तो इसमें अच्छी बात ही है"—गुरुदेव ने मुस्कराकर कह दिया, किन्तु पन्नालालजी के ये शब्द उन्हें बड़े गहरे लगे—"मैं भी आप जैसा लगने लगा हूँ"। शब्दों के बिम्ब में छिपी अर्थ-किरणों के प्रकाश में वे कुछ देर तक सोचते रहे, और पन्नालालजी के आन्तरिक-संस्कारों में छिपी दिव्य नियति को पढ़ने लगे। बालक के ये शब्द इसे भविष्य में क्या मेरे समान ही बनाने में समर्थ होंगे ? "जो भाखै बालक कथा" बच्चे की कही हुई वाणी सती के वचन जैसी सत्य-सिद्ध होती है, तो क्या इसका यह कथन भविष्य के किसी रहस्य का संकेत है ?" गुरुदेव कुछ देर तक विचारमग्न हो गये।

गुरुदेव की विचार-मग्नता भंग करते हुए पन्नालालजी ने फिर पूछा—"महाराज ! क्या मैं भी मुंहपत्ती लगाकर आप जैसा साधु बन सकता हूँ ?

हाँ, जरूर बन सकते हो वत्स ! गुरुदेव ने बालक पन्नालाल पर एड़ी से चोटी तक दिव्य दृष्टि डाली और वे सोचने लग गये। इसके दिव्य लक्षण तो मुँह बोल रहे हैं; बालक होनहार है। फिर मधुर शब्दों में बोले—पन्ना ! क्या सचमुच ही तेरे मन में साधु बनने की उमंग उठी है ? ऐसी उमंग क्यों उठी ? ऐसा क्यों पूछा ?"

बालक मन की इस गूढ़-ग्रन्थि को खोल नहीं सका। अन्तःप्रेरणा और अज्ञात संस्कारों का संवेदन तो हर कोई कर सकता है, लेकिन क्यों, कैसे, किसलिए—इन गूढ़ प्रश्नों का विश्लेषण मनोविज्ञान का विषय है, बालक के पास इनका उत्तर देने वाली शब्दावली भी तो नहीं ! और फिर हर संवेदन और हर प्रेरणा की अभिव्यक्ति करने में भाषा समर्थ भी कहाँ है ? पन्नालालजी चुप हो गये। 'बस, यों ही' के सिवाय उनके पास और शब्द भी क्या थे ! फिर भी ढाढस बटोर कर कह दिया—मुझे साधु का बाना अच्छा लगता है। इस मुंहपत्ती और रजोहरण से मुझे लगाव-सा हो गया है ?"

शास्त्रों के गहन अभ्यासी गुरुदेव मोतीलालजी ने पन्नालालजी के भाषा-व्यवहार और आन्तरिक अनुराग से यह स्पष्ट समझ लिया कि बालक में जन्मान्तरीय संस्कार प्रबल है। सुसंस्कारों का यह अंकुर समय पर कल्पवृक्ष का रूप धारण कर सकता है। अभी वात्सल्य का जल, ज्ञान का प्रकाश और अभ्यास की हवा अपेक्षित है। बस, धूप-हवा और जल के योग से यह कल्पवृक्ष अवश्य ही फलित होगा।

गुरुदेव के आशा और उत्साह भरे उत्तर ने पन्नालालजी के संकल्प को जागृत कर दिया—"मैं भी साधु बनूंगा" और गुरुदेव के मानस-संकल्प ने उनकी भवितव्यता को

पहचान कर निर्णय ले लिया—"पन्नालाल एक दिन इस जैन-संघ के मुकुट में वहुमूल्य पन्ना वनकर चमकेगा। लाल की भाँति इसकी आभा से जैनसंघ का भाल दीप्त होगा।" वस, फिर क्या था—जौहरी ने रत्न को परख लिया, गुरु ने शिष्य की आत्मा को जान लिया। पन्नालालजी उत्साह और लगन के साथ ज्ञानाभ्यास में जुट गये, और गुरुदेव मोतीलालजी मुक्त-मन से 'ज्ञान दान' करने में। वस, गुरु-कृपा होगई तो फिर शिष्य को अक्षय-अमर संपत्ति मिलने में क्या विलम्व होता है ? कहा गया है—

तिर्यक् समोऽपि पुरुषो सुगुरोः कृपातः
सम्यक्त्वरत्नमनघं लभते चरित्रम् ।
सर्वज्ञतां च तरसं ह्यजरामरत्वं
किं वर्णयामि सुगुरोः करुणा महत्त्वम् ॥

—गुरु की कृपा से पशु के तुल्य अज्ञान मनुष्य भी सत्यासत्य विवेक रूप निर्मल सम्यक्त्व रत्न को प्राप्त कर लेता है। सम्यक्त्व से सम्यक् चारित्र, सर्वज्ञता और अजर अमर पद-रूप निर्वाण की प्राप्ति भी हो जाती है। गुरु कृपा का कितना महत्त्व वताया जाय ? वास्तव में—

मोक्ष मूलं गुरोः कृपा

मोक्ष का मूल कारण श्री गुरुदेव की कृपा ही है।

श्री पन्नालालजी को गुरु-कृपा का वरदान मिल गया, वे कृतकृत्य हो गये और गुरुचरण-चंचरीक वनकर मकरन्दपान करने लग गये।

३
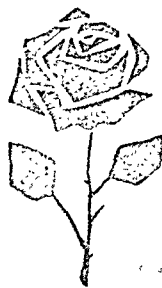
परीक्षा और दीक्षा

☐

सूर्य की प्रथम किरण का स्पर्श पाकर जैसे सूरजमुखी फल की कलियाँ खिल उठती हैं और सूर्यगति के साथ-साथ फूल घूमने लगता है; लगभग वही दशा श्री पन्नालाल की हो गई थी, पूज्य श्री मोतीलाल जी महाराज के सम्पर्क में आने के बाद। वह प्रति-पल, प्रतिक्षण उनके सम्पर्क में जुड़ा रहना चाहते थे। चातुर्मास काल में चार मास तक वे थांवला में स्थिर रहे। पन्नालाल जी को सामान्य तत्त्व-ज्ञान का बोध कराया, सामायिक आदि धार्मिक क्रियाएँ भी सिखाईं। चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् जब गुरुदेव श्री ने विहार किया तो श्री पन्नालाल जी भी उनका अंचल पकड़कर बैठ गये, जैसे छोटा वालक गाँव को जाती हुई माँ का अंचल पकड़कर उसके साथ चलने का हठ करता है, उसी प्रकार पन्नालाल जी भी गुरुदेव के साथ-साथ रहने का हठ पकड़ बैठे। बालक की खुशी में माता-पिता की खुशी है, यह समझकर बालूराम जी और तुलसा जी ने उसे प्रेम पूर्वक गुरुदेव के साथ जाने की अनुमति दे दी।

गुरुदेव श्री, वालक पन्नालाल जी के भीतर दिव्य संस्कारों की झलक देख चुके थे। उनके मन में वलवती जिज्ञासा और त्यागमार्ग के प्रति सहज आकर्षण भी था, जो उनकी रहस्यमयी आँखों और सरल मुखाकृति से व्यक्त हो रहा था। इसलिए गुरुदेव ने पन्नालाल जी को मौखिक रूप से तत्त्व ज्ञान सिखाना प्रारम्भ किया। तीव्र स्मरण-शक्ति के कारण वालक पन्नालाल जी ने कुछ ही समय में आश्चर्यजनक प्रगति कर ली।

सत्संग का प्रत्यक्ष प्रभाव जीवन पर क्या होता है, यह जान पाना कठिन है, किन्तु धीरे-धीरे विचारों में एक रासायनिक परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है, संस्कारों में स्वाभाविक जागृति और एक प्रकार की वैराग्यवृत्ति फलवती होने लगती है, जो कुछ ही समय में अपना रंग प्रकट कर देती है।

पन्नालाल जी ११ वर्ष के होंगे, किन्तु फिर भी जैसे-जैसे वे तत्त्वज्ञान सीखते गये और गुरुदेव के सान्निध्य में रमते गये, वैरागी के नाम से प्रख्यात होने लग गये। खान-

पान में संयम, वोल-चाल और रहन-सहन में शालीनता एवं विवेक आने लगा। कुछ लोग कहने लग गये—यह बालक अब साधु बनेगा। साधु-संतों के प्रेमी इस अनुमान से प्रसन्न थे तो कुछ द्वेषी लोगों का दिल जलने भी लगा। कुछ लोग ऐसे होते हैं, जिनसे दूसरे का भला फूटी आँखों से भी नहीं देखा जाता। नीतिकार कहते हैं—

घातयितुमेव नीचः, न च परकार्यं साधयितुम्'

नीच प्रकृति का व्यक्ति दूसरों के अच्छे कार्य को बिगाड़ना ही जानता है, सुधारना नहीं। उन्हीं में के दो-चार विघ्नसंतोषी व्यक्ति बालूराम जी के पास पहुँचे और उनके कान भरने लगे—तुम्हारा बेटा तो साधु बन जायगा, अपने छोकरे को कमाने-खाने लायक बनाना है या भीख माँगने लायक ! पता है, तुम हो माली, पुरुषार्थी, नया-नया सृजन करने वाले और फिर इन जैन-साधुओं की संगत में पड़ कर तुम्हारा बेटा बनेगा—भीख मांगने वाला। झोली हाथ में लेकर घर-घर भिक्षा माँगेगा, तब क्या तुलसा जी तुम्हारा दूध लज्जित नहीं होगा ?"—यों उलटी-सुलटी अनेक बातें उन मत्सरी बन्धुओं ने बालूराम जी को सिखाईं।

तो उन्हीं के भक्त हैं। वे तो अपना पंथ बढ़ाना चाहेंगे। तेरे वंश की उनको क्या चिन्ता है ?" बस, अब तो बालूराम जी का सन्देह और भी बढ़ गया। वे सेठ जी को बिना बताये ही चल पड़े। पता लगाते-लगाते वहाँ से कई मील दूर जशनगर (केकिन) पहुँचे। वहाँ पूज्यश्री मन्दिर में व्याख्यान दे रहे थे और पन्नालाल जी वहीं एक ओर बैठे अध्ययन कर रहे थे। बालूराम जी ने अपने पुत्र को शास्त्र रटते देखा तो बस मन और उतावला हो गया। सीधा उसका कान पकड़ा और बोले—"चल, घर चल !"

पन्नालाल जी—पिताजी, आप अचानक कैसे आये ? और आये तो पहले गुरु महाराज के दर्शन किये बिना मुझे चुपचाप घर को ले जा रहे हो ? चलो, गुरु महाराज के दर्शन करो।"

पिता—"नहीं, मुझे दर्शन-वर्शन नहीं करने हैं। बस, सीधी नाक की डांडी घर का रास्ता पकड़।"

पुत्र—पिताजी ! मैं यहाँ पढ़ाई कर रहा हूँ। घर नहीं जाऊँगा।"

"क्यों ?"

"मेरा घर में मन नहीं लगता। मैं तो गुरु महाराज के पास पढ़ाई करूँगा।"

पुत्र का उत्तर सुनकर बालूराम जी का रहा-सहा सन्देह पक्का हो गया। लोगों ने ठीक ही कहा था—'ये साधु लोग भुरकी डाल देते हैं।' लड़के को यों अपने बाप से छुड़ा देते हैं। लेकिन मैं भी तो मर्द हूँ, इसे यहाँ नहीं छोड़ूँगा। वे उसका हाथ पकड़कर उठाने की कोशिश करने लगे—"चल ? घर चलता है कि नहीं।" बालक ने भी अपना हठ पकड़ लिया—"नहीं चलूँगा।" पिता ने और जोश खाया, जोश में होश गुम। बालक का हाथ पकड़ कर बड़े जोर से घसीटना शुरू किया। वे घसीटते-घसीटते सीढ़ियों तक ले आये। वे आवेश में अन्धे हुए यह भी नहीं देख पाये कि आगे सीढ़ियाँ हैं। बस, बालक सीढ़ियों पर लुढ़क गया और नीचे सिर के बल गिरा। वहाँ था पत्थर। पत्थर की चोट लगते ही कपाल से रक्त की धार बह चली। बालक जोर-जोर से रोने लगा। लोग व्याख्यान से उठकर दौड़े आये। बालूराम जी ने यह सब देखा तो एक अपराधी की भाँति काँप उठे। चुपचाप आये। अनजाने ही आवेश में पुत्र का सिर फोड़ डाला। वे रंगे हाथों पकड़े गये। अपराधी की तरह दयनीय हो गये।

लोगों ने पूछा—"बालक को तुमने क्यों पटका ? कौन हो तुम ?"

अब तो फिर अधिकार का क्रोध भड़क उठा—"यह मेरा छोकरा है। महाराज के साथ भाग आया था। मैं अब इसे घर ले जाना चाहता हूँ। यह चलता नहीं है।"

श्रावकों ने समझाया—"यह तुम्हारा बेटा है, पशु तो नहीं है ? इन्सान को जानवर की तरह घसीटना क्या ठीक है ? इसे प्रेम से समझाओ। इसके बाप होकर भी तुम प्यार से इसे समझा नहीं सकते ? घर ले जाना है तो महाराज मना नहीं करते, पर एक चोर की तरह क्यों ? खुल्लमखुल्ला ले जाओ और इसे प्यार-दुलार के साथ ले जाओ। इसका मन है तो भले जाए, जबरदस्ती क्यों करते हो ? क्या इसे जानवर समझ लिया

है। इतना समझदार और होशियार लड़का है, बात से समझाओ, हाथ से और लात से क्यों ?"

श्रावकों की कड़ी चेतावनी से बालूराम जी का क्रोध ठंडा पड़ गया और उन्हें अपना अपराध स्पष्ट दीखने लगा।

लोगों ने बालक के घाव की मरहम-पट्टी की। बालूराम जी को शान्त किया। बालक से कहा—"तुम्हें तुम्हारे पिताजी बुलाने आये हैं तो तुम अपने घर जा सकते हो ? क्या इच्छा है तुम्हारी ?"

बालक—"मैं घर नहीं जाऊँगा। मैंने गुरुदेव के साथ रहकर अध्ययन करने का निश्चय किया है। अध्ययन के बाद मैं साधु बनूंगा, दीक्षा लूंगा। मुझे घर से कुछ लेना-देना नहीं है।"

बालूराम जी पत्थर की तरह देखते ही रह गये। 'इस छोटे-से बालक में इतना साहस कब, कैसे आ गया ! मेरे सामने इसकी जबान भी नहीं खुलती थी। आज तो निर्भीक होकर बोल रहा है।' बालूराम जी ने उसे प्रेम, भय, लालच और आतंक से—हर तरह से समझाने-बुझाने की कोशिश की, पर बालक पन्नालाल जी पर तो गहरा रंग चढ़ चुका था—'सूरदास की कारी कमलिया चढ़ै न दूजो रंग'। उनके मुँह में एक ही बात थी—मैं गुरुदेव का शिष्य बनूंगा, मुझे गृहस्थी में नहीं रहना है।"

श्रावकों ने भी बालूराम जी को समझाया—तुम्हारा पुत्र जब तुम्हारे लाख समझाने पर भी घर जाने को तैयार नहीं है तो फिर इसके साथ जबरदस्ती क्यों करते हो," फिर बालक पन्नालाल जी से भी पूछा गया—"बोल तेरी क्या इच्छा है ?"

बालक—"मुझे घर नहीं जाना है। मैं गुरुदेव के साथ रहूँगा और साधू बनूँगा।"

बालक की दृढ़ भावना देख कर बालूराम जी को अनुभव हुआ—'पूर्व जन्म के संस्कार भी कभी-कभी मनुष्य को अनजाने ही महान पथ की ओर खींच ले जाते हैं। पन्नालाल में भी पूर्व संस्कारों की प्रेरणा है। मैं इन्हें दबाना चाहूँगा तो ये दबेंगे नहीं। फिर बहकाने-फुसलाने जैसी कोई बात यहाँ नहीं है। बालक अगर संस्कारी है तो कौन इसे रोक सकता है ?' कुछ देर के मनोमन्थन के पश्चात् बालूराम जी भी पूज्य गुरुदेव की सेवा में आये। अपने अज्ञान, वहम और अल्हड़पन के लिए क्षमा मांगते हुए वह गुरुदेव के चरणों में गिर कर रो पड़े। गुरुदेव ने समझाया और अतिमुक्तक, ध्रुव, प्रह्लाद, मणक, हेमचन्द्राचार्य, शंकराचार्य, संत एकनाथ आदि कितने ही संस्कारी बालकों के उदाहरण उनके सामने रखे। उनकी समझ में आ गया, बालक ही भविष्य का निर्माता है। विचारक और कवि ने इसीलिए अपनी काव्य पंक्ति में कहा है—Child is the father of man—अर्थात् बालक ही आदमी का जनक अथवा पिता है। जो उच्च संस्कार बचपन में सहजतया आ सकते हैं, वे फिर जीवन भर प्रयत्न करने पर भी आ पाने मुश्किल हैं।

बालूराम जी ने प्रार्थना की—"गुरुदेव ! यदि इसका भाग्य इसे संसार का भला करने के लिए पुकार रहा है तो मैं इसे रोककर पाप का भागी नहीं बनूंगा। मेरी सहर्ष

गुरु नियोग

□
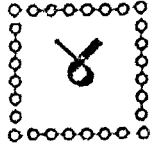
भगवान महावीर ने सच्चे साधक की मनोवृत्तियों का वर्णन करते हुए कहा है—

लाभालाभे सुहे दुक्खे जीविए-मरणे तहा।
समोणिंदापसंसासु तहामाणावमाणओ॥

साधक अपनी अन्तर्वृत्तियों को इस प्रकार मोड़ता है कि वे उसकी मनोनुवर्तिनी बन जाती हैं। लाभ हो या हानि, सुख हो या दुःख, आनन्द का सुप्रभात हो या विषाद का गहन अंधकार, कोई निन्दा करे या प्रशंसा, कहीं सन्मान मिले या अपमान—दोनों ही प्रकार की-अनुकूल-प्रतिकूल स्थितियों में वह समचित्त रहता है। सुमेरू की भाँति न वर्षा से गलता है और न धूप से पसीजता है। अपनी मनोवृत्तियों को इस प्रकार बना लेता है कि उन पर बाह्य वातावरण का कोई असर नहीं होता। अन्तर में ही सदा रमण करता हुआ अन्तर्मुखी जीवन जीता है। न उसे किसी की प्रशंसा व मधुर वचन अनुरक्त कर सकते हैं और न कटुवचन या निन्दा व्यथा पहुँचाते हैं। यह आदर्श साधक की स्थिति है, जिसे उपनिषद और गीता में स्थितप्रज्ञ कहा है, आगमों में 'वीतराग' कहा है।

'वीतराग साधना' का यह पथ सरल नहीं है। उत्तराध्ययन सूत्र में इसे **'असि-धारा गमणं चेव दुक्करं चरिउं तवो'** तलवार की धार पर चलने जैसा दुष्कर कहा है। अग्नि की प्रज्वलित शिखाओं को पी जाने जैसा कठोर है। साधना की कठिनता की मुख्य बात है मन को वश में करना। जीवन में सुख-दुख तो आते ही हैं। मान-सन्मान और अप-मान भी मिलते हैं, किन्तु सुख का मधुपान और दुःख का विषपान—दोनों ही समय में एक समान प्रसन्नता, बुद्धि और विवेक को स्थिर रखना बड़ा कठिन है। सन्मान का और सुख का प्रसंग आते ही मन उछलने लगता है तथा अपमान और कष्ट की एक हल्की-सी चोट पड़ते ही मन व्यथित एवं उद्विग्न हो जाता है, धीरज छोड़ देता है—सामान्य जीवन में ऐसी ही स्थितियाँ आती हैं, किन्तु साधक को इन दोनों ही स्थितियों पर विजय प्राप्त करना होता है। उसको महासागर बनकर सब कुछ सह लेना होता है, शिवशंकर

वनकर विषपान कर लेना होता है। यही साधक का असिधारा व्रत है। मोम के दाँतों से लोहे के चने चवाने हैं। मुनि पन्नालाल जी ने दीक्षा ग्रहण करते ही गुरुदेव से जो पहली शिक्षा ग्रहण की वह यही थी—"**करेमि भंते ! सामाइयं।**"—"भगवन् ! मैं समभाव की साधना स्वीकार करता हूँ। प्रत्येक परिस्थिति में अपने मन को संतुलित रखूँगा, विचारों को विवेक से बाँधकर रखूँगा। दुःखों को सहन करूँगा और सुखों को भी। कोई गाली देगा तव भी प्रसन्न रहूँगा और कोई वन्दना-स्तुति करेगा तव भी। किसी भी स्थिति में मैं मन की 'समता' को नहीं खोऊँगा। सम-मन वनकर ही मैं 'श्रमण' के विरुद को चमकाऊँगा। मन की स्थिरता और समता ही मुझे ज्ञान-ध्यान, तपोभ्यास के लिए वल प्रदान करेगी।"

गुरु चरणों में इस शिक्षा को ग्रहण कर श्री पन्नालाल जी अव शास्त्र-अध्ययन में जुटे। जैसे स्वच्छ व शान्त जल में वस्तु का यथार्थ प्रतिविम्व झलक आता है। उसी प्रकार मुनि पन्नालाल जी के स्वच्छ व शान्त प्रशान्त मनःसरोवर में तत्त्वज्ञान एवं आगम वाणी अविकल रूप से प्रतिविम्वित होने लगी। गुरुदेव श्री की प्रेरणा उन्हें और अधिक वल प्रदान कर रही थी।

मुनि श्री पन्नालाल जी की दीक्षा के पश्चात् गुरुदेव श्री मोतीलाल जी महाराज ने आनन्दपुर से प्रस्थान कर लाम्विया को पवित्र किया। दीक्षा के सातवें दिन वैशाख शुक्ला त्रयोदशी (१३) शनिवार को वड़ी दीक्षा (छेदोपस्थापनीय चारित्र) प्रदान किया और वहाँ से विहार करते हुये जसवन्तावाद के लिए चातुर्मासार्थ प्रवास किया। चातुर्मास में चतुर श्रावकों का विश्वास प्रचंड आत्मविकास के पथ पर वढ़ता है। जैसे श्रावण में वर्षा की झड़ी लगती है, वैसे ही श्रमण-जीवन एवं श्रमणोपासक जीवन में भी तप-जप, ज्ञान-ध्यान, संयम-सेवा की झड़ी लग जाती है। नवदीक्षित वाल मुनि श्री पन्नालाल जी भी इस झड़ी में भीग गए और रम गए—'श्रमणत्वमिदं रमणीयतरं' के मधुर गान में।

जसवन्तावाद का सफल चातुर्मास सम्पन्न कर गुरुदेव श्री मोतीलाल जी महाराज अपने तेजस्वी नवदीक्षित शिष्य को साथ लिए विहार करते हुए अजमेर पधारे। वहाँ पहले से ही गुरुदेव श्री के लघु गुरु भ्राता श्रीगजमल जी महाराज, श्री विजयलाल जी महाराज आदि मुनिप्रवर विराजमान थे। संत-मिलन स्वजन-मिलन से भी अधिक सुखद होता है, फिर स्वजन भी और संत भी—'मिसरी मिला मधुर दूध स्वर्ण कटोरे में' जैसा ही सुसंयोग वन जाता है। गुरुदेव श्री के दर्शन कर जहाँ भक्तों का हृदय सागर हर्षातिरेक से ठाठें मारने लगा, वहाँ संत-मिलन के मधुर प्रसंग से गुरुदेव एवं मुनि पन्नालाल जी का मन भी आनन्द-विभोर हो उठा।

गुरु-वियोग

महाकवि कालिदास ने कहा है—

कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च पुनश्चक्र नेमिक्रमेण।'

यह संसार बड़ा विचित्र है, यहाँ न किसी को एकान्त सुख मिलता है, और न दुःख। नियति का चक्र निरन्तर चलता ही रहता है, जो कभी ऊपर और कभी नीचे घूमता है। इस नियति-चक्र से सामान्य मनुष्य तो क्या, चक्रवर्ती एवं अनन्त बली तीर्थङ्कर भी नहीं बच सकते। सुख-दुख और जन्म-मरण अवश्यम्भावी भाव हैं, मनुष्य जन्म को शुभ प्रसंग और मृत्यु को अशुभ प्रसंग मानता है, किन्तु ये दोनों ही प्रसंग कभी टल नहीं सकते।

अजमेर में आनन्द की स्रोतस्विनी वह रही थी। सन्त-समागम का महान् लाभ जन-सामान्य को मिल रहा था और मुनि श्री पन्नालाल जी की श्रुताराधना भी अस्खलित गति से चल रही थी। पार्श्व जयन्ती[1] का विशाल समारोह भी सानन्द सम्पन्न हो चुका था। अचानक उसी दिन गुरुदेव श्री मोतीलाल जी महाराज शरीर में अधिक अस्वस्थता अनुभव करने लगे। वृद्धावस्था के कारण सामान्य दुर्बलता और कुछ व्याधि तो कई दिनों से चल रही थी, किन्तु मनोबली व्यक्ति रोग का भोग करते हुए भी उसे महत्त्व नहीं देते। सहसा व्याधि ने उग्र रूप धारण कर लिया। श्वास, बेचैनी आदि अनेक रूपों में पीड़ा का वेग बढ़ा, वेदना से शरीर टूटने लगा। फिर भी गुरुदेव श्री का मनोबल अटूट था। वे व्याधि-वेदना से जूझने लगे। व्याधि को ललकारा और मृत्यु को भी चुनौती देकर वे वीर योद्धा की भाँति जीवन के रणक्षेत्र में डट गये। रोग की असह्य पीड़ा को भी वे समभावपूर्वक सहन करते गये। मनुष्य रोगाक्रान्त होने पर आकुल-व्याकुल हो जाता है, एक तो वेदना और फिर मृत्यु का भय। दोनों ही मन की शान्ति खा जाते हैं, किन्तु गुरुदेव श्री जैसे तपोधन, योगी का आत्मबल शारीरिक पीड़ा को तो मन पर आने ही नहीं देता, और मृत्यु का उन्हें कोई भय नहीं था, क्योंकि चारित्र-श्रुत-शील की आराधना से वे कृतकृत्य थे। ऐसे कृतकृत्य तपस्वी को मृत्यु का क्या भय—

न संतसंति मरणंते सीलवंता बहुस्सुया।

शील सम्पन्न एवं महाज्ञानी पुरुष मृत्यु निकट आने पर भी घबराते नहीं हैं। व्याधि का प्रकोप बढ़ता गया। मृत्यु सामने आकर नाचने लगी; फिर भी गुरुदेव श्री पूर्ण समाधिस्थ और शान्त थे। वे प्रायः सम्पन्नकार्य थे, किन्तु फिर भी एक उत्तरदायित्व उनके कंधों पर था—मुनि श्री पन्नालाल के व्यक्तित्व निर्माण का।

गुरु अपने शिष्य की चिन्ता न करे तो फिर गुरुता में स्खलना आती है। अतः गुरुदेव ने मुनि श्री गजमल जी महाराज एवं श्री विजयलालजी महाराज के शिष्य श्री धूलचन्द जी महाराज से कहा—

"यह पन्ना तुम्हारे हाथ में है। जौहरी के हाथ में रत्न सौंपकर मैं निश्चिन्त हूँ।"

तपस्वी श्री धूलचन्द जी महाराज की स्वीकृति पाकर गुरुदेव श्री पूर्ण निश्चिन्त हो गये। अब उन्होंने शान्त व स्थिर मन होकर श्री गजमल जी महाराज के समक्ष निःशल्य होकर आलोचना की। संलेखना—संथारा कर पूर्ण समाधिभाव में लीन हो गये।

---

१ पोष वदी १०

'अरिहंत-शरणं, सिद्ध शरणं, साधु शरणं, केवलि प्ररुपित्त धर्म शरणं' बस इन चार महा-शरण का स्मरण करते हुए, मृत्यु से निरपेक्ष होकर परम शान्ति का अनुभव करते हुए उन्होंने देहत्याग किया। एक ज्योतिपुंज धरा से विलीन हो गया। पौष कृष्णा ११ का मध्याह्नोत्तर काल था, किन्तु फिर भी भक्तजनों के समक्ष एक वार अंधेरी रात-सी आ गई।

वालमुनि पन्नालाल जी के हृदय को गुरु-वियोग का आघात लगना सहज था। वे सहसा इस चोट से विचलित हो गये। जिन गुरुदेव के वरदहस्त की शीतल छाया में जीवन का यह नया पौधा संरक्षण और संवर्धन पा रहा था, वह छाया आज आँधी के एक ही वेग से ध्वस्त हो गई। इस स्थिति में असहायता और आश्रयहीनता का अनुभव मन को द्रवित कर ही डालता है। मुनि पन्नालाल जी भी कुछ काल तक ऐसी संभ्रम स्थिति में पड़े रहे। पर आगमवेत्ता गुरुवर श्री गजमल जी महाराज आदि मुनि मंडल का मधुर सान्त्वना-भरा सहयोग, सान्निध्य और सतत वैराग्य-वोधक भावनाओं का चिन्तन गुरु-वियोग के दुस्सह कष्ट को सहने में सामर्थ्य देने वाला सिद्ध हुआ।

मुनि श्री पन्नालाल जी पुन: शान्त एवं स्थिरचित्त से ज्ञान की आराधना तथा निर्मल संयम-साधना में लीन हो गये।
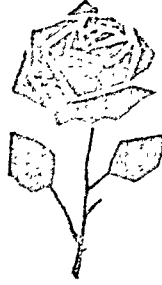
कसौटी पर

□

नीतिकार चाणक्य ने कहा है—

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते
निघर्षणच्छेदन-ताप-ताडनैः ।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते
त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा ।

अर्थात् सोने की परीक्षा चार प्रकार से होती है—घिसना, काटना, तपाना और पीटना । इसी प्रकार त्याग, शील, गुण और कर्म के द्वारा पुरुष की परीक्षा होती है ।

पुरुष की उदारता, निस्पृहता, सदाचार, विद्या, सहिष्णुता और परोपकार-परायणता देखकर उसके व्यक्तित्व की—उसकी साधना की और उसके भीतर छिपी मानवता की परीक्षा की जाती है ।

सन्तों के विषय में कहा जाता है—**'संत शबदां परखिये'**—बोलने से सन्त की परीक्षा करनी चाहिए । इसके दो अर्थ हो सकते हैं—दूसरों की कटु और अप्रिय वाणी सुनने पर यदि मन में रोष-क्षोभ नहीं आता तो सन्त की साधुता की परीक्षा होती है । दूसरा अर्थ है, मधुर, प्रिय और शिष्ट भाषा बोलने पर सन्त की परीक्षा हो जाती है ।

पहली परीक्षा सन्त की क्षमाशीलता को प्रकट करती है । भगवान महावीर ने कहा है—

'जिइंदिए जो सहइ स पुज्जो'

जो जितेन्द्रिय सब प्रकार के कष्ट-अपमान, ताड़ना-तर्जना, कटुवचन आदि को हँसता-हँसता सह लेता है, वह पूज्य है ।

वास्तव में क्षमा, सहिष्णुता, धैर्य और तितिक्षा यह सन्त का, श्रमण का श्रेष्ठ धर्म है। उसे 'पुढवी समो मुणी हवेज्जा'—पृथ्वी के समान धीर-गम्भीर होने की शिक्षा दी गई है।

हमारे चरित नायक मुनि प्रवर श्री पन्नालाल जी महाराज अपने प्रिय गुरुदेव के वियोग के पश्चात् श्रमण धर्म की इस सार्थक साधना में बड़ी लगन से जुट गये थे। बचपन में ही उनकी गम्भीरता और तेजस्विता देखकर गुरुदेव श्री गजमल जी महाराज आदि मुनियों का ध्यान उन पर केन्द्रित हो गया था और वे पूरे मनोयोग से उनकी शिक्षा-दीक्षा, तितिक्षा आदि पर ध्यान देने लगे। उनका अगाध स्नेह और वात्सल्य पाकर मुनि पन्नालाल जी कृतार्थ हो रहे थे, गुरुदेव की स्मृति यद्यपि मन को कभी-कभी कचोटने लग जाती थी, किन्तु उनका अभाव खटकने-जैसा नहीं रहा। उनके वात्सल्य की पूर्ति पूज्य गजमल जी महाराज एवं धूलचन्द जी महाराज ने करने का सफल प्रयास किया।

पूज्य मोतीलाल जी महाराज के स्वर्गारोहण के पश्चात् विक्रम संवत् १९५८ का चातुर्मास अजमेर श्री संघ के आग्रह पर वहीं किया गया। मुनि श्री पन्नालाल जी इस समय लगभग तेरह वर्ष के थे। इस समय एक विचित्र घटना घटी जो उनकी उत्कृष्ट तितिक्षा वृत्ति का परिचय देती थी।

पर्युषण के दिन नजदीक आ रहे थे। श्रमण परम्परा की विधि के अनुसार संवत्सरी के पूर्व केशलुंचन करना अनिवार्य है। मुनि श्री पन्नालाल जी का केशलुंचन हुआ। धूप चढ़ने से पहले ही प्रातः केशलुंचन कर मुनिश्री नगर के वाहर गुरुदेव जी के साथ शौच के लिए गये। लुंचन किया हुआ मस्तक काफी चमक रहा था। वैसे ही उनका गौरवर्ण और भव्य ललाट काफी तेजस्वी दीखता था। लोच करने के वाद तो सोना और पालिश चढ़ा जैसा चमकने लगा। बालक के दिव्य भाल और चमकते-दमकते ललाट पर दर्शक की आँखें सहसा ही जा टिकती थीं।

मुनिश्री के चमकते भव्य ललाट को देखकर एक मुसलमान युवक का मन न जाने क्यों उद्वेलित हो उठा। उसे शरारत क्यों सूझी, पता नहीं। गुरु-शिष्य जैसे ही थोड़े आगे निकले, दबे पैरों से चुपके से वह पीछे-पीछे आया और उनके मस्तक पर पूरे जोर के साथ एक कड़कोल (कड़कोल्था) जमा दी और भाग गया।

तत्काल लुंचित मस्तक पर इतने जोर की चोट लगते ही मुनिवर की आँखों में अंधेरा छा गया। एड़ी से चोटी तक विजली-सी चमक गई और वे घवड़ाकर वहीं जमीन पर वैठ गये। गुरुदेव को आवाज दी। गुरुदेव ने पीछे मुड़कर देखा तो वे चकित रह गये—वालक मुनि घबराया हुआ-सा रास्ते पर बैठा है, आँखें अश्रुपूर्ण हैं और एक हाथ से सिर को पकड़ रखा है। गुरुदेव ने कहा—"पन्ना, क्या हुआ?"

वालक मुनि ने व्यथित स्वर में कहा—"मेरे सिर पर किसी ने यह कड़कोला से मारा है। किसने मारा, यह पता नहीं। भयंकर वेदना हो रही है।" और उनकी आँखों से पीड़ा का पानी वह निकला।

गुरुदेव ने इधर-उधर देखा, कोई दिखाई नहीं दिया। शिष्य के मस्तक को वात्सल्य से पुचकारा और फिर धीरज बँधाते हुए कहा—"पन्ना तू वीर पुत्र है। एक कड़कोल की मार से ही घबरा उठा? अपने पूर्वजों की शान को तू कैसे ऊँची रख सकेगा? गजसुकुमार और खंधक अनगार की चौपाई गाने वाला तू क्या उनकी सहिष्णुता, तितिक्षा और धीरज नहीं सीख सका? कड़कोला की मार से घबराने वाला क्या खाक धधकते अँगारे सिर पर रखेगा? ऐसे प्रसंग तो जीवन में आते ही हैं। उठ! सहनशीलता रख। तेरी आँखों में आँसू नहीं हर्ष उमड़ना चाहिए, क्योंकि आज कर्म निर्जरा के दो-दो प्रसंग एक साथ आये हैं। हँसते-हँसते कष्ट सहन करने वाला वीर होता है। तू सिंह की सन्तान है, गीदड़पन तुझे शोभा नहीं देता। फिर आज तो तेरी परीक्षा हुई है। घड़े की परीक्षा के समय उसे भी चोट सहनी पड़ती है। चोट सहने पर ही पक्के-कच्चे घड़े का पता चलता है। साधक यदि चोट, प्रहार और यातना न सहेगा तो उसकी साधुता की परीक्षा कैसे होगी? देख भगवान ने कहा है—

हओ न संजले भिक्खू मणं पि न पओसए।
तितिक्खं परमं नच्चा भिक्खु धम्मं विचिंतए॥

किसी के प्रहार करने पर भिक्षु क्रोध न करे। मन में भी द्वेष न लाये। वह सोचे, तितिक्षा परम धर्म है। सहन करने वाला साधक श्रमणत्व की शोभा बढ़ाता है।"

गुरुदेव श्री के सान्त्वना तथा साहस भरे वचन सुनकर बालक मुनि पन्नालाल जी अपनी शिरःपीड़ा भूल गए। तुरन्त हँसते हुए नये जोश के साथ उठे और बोले—"गुरुदेव! आप चलिए। अब मेरा मन स्वस्थ है। पीड़ा तो भूल ही गया और अधिक साहस एवं सहिष्णुता से मन उमगने लगा है। अब तो कड़कोला क्या वज्र भी सिर पर आ पड़े तो मुँह से चूँ नहीं निकलेगा।"

यह सुनकर गुरुदेव ने उन्हें अपनी छाती से लगा लिया और कहा—"पन्ना, आज तू कसौटी पर कसा गया था। तू खरा उतरा। तू साधना में पक गया है।"

मुनि पन्नालाल जी इस प्रकार श्रमण धर्म की तितिक्षा और सहिष्णुता की पहली परीक्षा में ही शत-प्रतिशत अंकों से सफल हुए।

अजमेर का चातुर्मास सम्पन्न करने के बाद गुरुदेव श्री विजयलाल जी महाराज ने अनेक छोटे-बड़े क्षेत्रों में विचरण कर संवत् १९५९ का चातुर्मास मसूदा में व्यतीत किया।

विक्रम संवत् १९६० का भीलवाड़ा और १९६१ का किशनगढ़ में हुआ।

अब तक मुनि श्री पन्नालाल जी महाराज ने साधना एवं श्रुताभ्यास में काफी परिपक्वता प्राप्त कर ली थी। यद्यपि उनकी अवस्था सौलह वर्ष की ही थी, किन्तु—**'तेजसां हि न वयः समीक्षते'**,[1] अर्थात् तेजस्वी पुरुषों का तेज देखा जाता है, उनकी

---
१ रघुवंश

आयु की समीक्षा नहीं की जाती। साधु-समाज में उनका अच्छा प्रभाव और वर्चस्व बढ़ रहा था। अनेक मुनिजन भी मुनिवर पन्नालाल जी की सम्मति लेकर ही निर्णय किया करते थे। अचानक चातुर्मास में गुरुदेव श्री विजयलाल जी महाराज के स्वर्गवास के पश्चात् आप गुरुदेव श्री केशरीमल जी महाराज के साथ किशनगढ़ से विहार कर अजमेर पधार गये।

चमत्कार को नमस्कार

यह वही अजमेर है, जहाँ दो वर्ष पूर्व आपकी सहिष्णुता और तितिक्षा की कसौटी हुई थी। गुरुदेव श्री के उद्बोधन ने सुप्त सिंहत्व को जगाया और मुण्डित मस्तक पर लगी तेज चोट को भी भुलाकर तत्क्षण आप हँसते हुए अपने कार्य में जुट गये थे। इस घटना के बाद पता नहीं और भी कितनी ही परीक्षाएँ हुई होंगी। प्रकृति ने जब उनका नामकरण ही रत्न संज्ञक (पन्ना) कर दिया तो रत्न की भाँति बार-बार शाण पर चढ़ना, तराश पाना तो होना ही था, और उस हर बार की परीक्षा में कुछ-न-कुछ नया तेज-चमत्कार प्रकट होता था। इसी अजमेर में एक घटना फिर घटी, इसने तो मुनिवर पन्नालाल जी के सुप्त प्रचण्ड आत्मविश्वास को जगा दिया, मनःशक्ति के अनुकूल अद्भुत चमत्कार से सबको स्तम्भित कर दिया।

सर्दी का मौसम था। मध्याह्न का समय। सुहावनी धूप! मुनिवर पन्नालाल जी शरीर चिन्ता (शौच-बड़ी नीत) के निवारणार्थ गुरुदेव की आज्ञा लेकर नगर के बाहर लुंगिया अस्पताल की तरफ गये। मुनिवर के हाथ में एक झोली थी। झोली में शौचार्थ जल-भरा पात्र था। लुंगिया के मार्ग में ही एक टेकड़ी पर कुछ मुसलमान भाई बैठे थे तथा कुछ खड़े थे। एक मुर्दे को दफनाने के लिए गोर (कब्र) खोद रहे थे। जैसे ही उन्होंने एक जैन साधु को अपनी ओर आते देखा तो उनमें से दो मनचले युवक उठकर आगे आये और मुनि को रोकते हुए बोले—"ओ ढुंढिये! हमने सुना है तुम्हारे पास बड़ी-बड़ी करामातें होती हैं, आज कुछ करामात दिखाओ।"

मुनिजी ने शान्त भाव से कहा—"भाई, हम जैन साधु कभी जादू-टोना नहीं करते और न हम कभी करामात दिखाते हैं। हम तो सिर्फ अपनी आत्म-साधना और जप-तप में लगे रहते हैं। चमत्कार और करामात से हमें क्या लेना-देना है।"

युवक बोले—"नहीं-नहीं, तू बात को टाल रहा है। जब तक कुछ करामात नहीं दिखायेगा, तुझे न आगे जाने देंगे, न पीछे।"

मुनि बोले—"भाई, मैं तो अभी आगे शौच के लिए जा रहा हूँ। मुझे पहले शरीर-चिन्ता से निवृत्त होने दो। ऐसे समय में रोकना क्या इन्सानियत है?"

"नहीं, हम नहीं जाने देंगे। तू घुटा हुआ साधु लगता है। तेरा ललाट भी चमक रहा है। बातें बनाकर हमको बुद्धू मत बना।" युवकों ने हठ पकड़ लिया। सामने टेकड़ी पर बैठे अन्य लोग भी युवकों की बातें सुनकर तालियाँ पीटकर हँसने लगे। इस पर युवकों का हौंसला और भी बढ़ गया और वे मुनिजी का रास्ता रोक कर अड़ ग

वड़ी विषम स्थिति थी। शरीर के प्राकृतिक वेग—मल-मूत्र के वेग को नहीं रोका जा सकता। वलात् रोकने पर अन्य वीमारी होने का डर रहता है। परिस्थिति इतनी विकट थी कि लाख समझाने पर भी युवक टस-से-मस नहीं हुए। मुनि पन्नालाल जी एक वार तो घवराहट-सी महसूस करने लगे। पर दूसरे ही क्षण किसी अज्ञात शक्ति ने प्रेरित किया। उनका आत्मवल हुँकार उठा। वे सहसा मौन, आँखें वन्दकर ध्यानस्थ हो गये। मन-ही-मन नवकार मंत्र का स्मरण करने लगे। कुछ देर वाद आँखें खोलीं तो वे युवक वहीं खड़े वड़ी वेशर्मी से हँस रहे थे। मुनिवर ने ओजस्वी वाणी में कहा—"वोलो, रास्ता नहीं देते हो ?"

"नहीं, जब तक तू करामात नहीं दिखायेगा, हम तुझे रास्ता नहीं देंगे।" हठीले युवकों ने कहा।

"अच्छा, तो करामात देखना ही चाहते हो।" मुनि पन्नालाल जी ने अपनी तेजो-दीप्त आँखें युवकों पर गाड़ते हुए कहा।

"हाँ, अव आया है रंग में ढुँढिया। दिखा करामात !" युवक वोले।

"वोलो किस पर दिखलाऊँ करामात ?" मुनिश्री की जोशीली एवं दृढ़ वाणी सुनकर युवक जरा घवरा गये। सोचने लगे—'यदि अपने पर दिखाने को कह देंगे तो यहीं चिपका देगा हमें। यह वला अपने सिर पर क्यों लें ? घर दूसरे का जले, मजा हम देखें।' यह सोचकर टेकड़ी पर खड़े अन्य लोगों की तरफ इशारा कर दिया।

मुनिजी ने अपनी तेजःस्फूर्ति दृष्टि ज्यों ही उधर फेंकी, त्योंही कब्र खोदने वाला आदमी धड़ाम से कब्र के अन्दर जा पड़ा। दोनों युवक यह देखकर घवरा गये। मुनिजी ने पूछा—"वोलो, अव तुम पर भी दिखाऊँ कुछ करामात ?"

युवक गिड़गिड़ाकर मुनिजी के चरण पकड़ने लगे—"वावा, माफ कर दो। हमने वहुत गुनाह किया है।"

"जैन साधुओं के साथ फिर कभी अड़ोगे ? फिर कभी करामात दिखाने के लिए कहोगे ?"

युवकों ने कान पकड़ लिये—"ना वावा, ना ! अव हम कभी किसी साधु-महात्मा को तंग नहीं करेंगे। हमें माफ कर दो।"

मुनिश्री पन्नालाल जी ने चेतावनी देकर युवकों को क्षमा कर दिया। वास्तव में—'महप्पसाया इसिणो हवंति' ऋषिजन प्रसन्न और प्रसाद पूर्ण हृदय वाले होते हैं।

मुनिश्री वापस स्थानक लौटे। तव तक काफी विलम्व हो गया था। गुरुदेव को कुछ चिन्ता भी होने लगी थी। जव उन्हें आया देखा तो आश्चर्यपूर्वक गुरुदेव ने कहा—"पन्ना ! आज इतना विलम्व कैसे हुआ ?"

मुनिवर ने आपवीती सव घटना सुनाई। गुरुदेव ने विस्मित भाव से पूछा—"तुमने क्या मंत्र जपा ?

मुनिवर—"गुरुदेव ! नवकार मंत्र के सिवाय तो मैं और कोई मंत्र जानता भी नहीं हूँ । यह सब कैसे हुआ, इस विषय में स्वयं मैं भी अज्ञात हूँ । पर सिर्फ इतना अनुभव हो रहा है कि उस समय मेरे भीतर एक प्रचण्ड आत्म-शक्ति जागृत हो गई थी । एक लौ की भाँति कोई दिव्य शक्ति प्रज्वलित हो उठी थी । आत्म-शक्ति या नवकार मंत्र की प्रभावी शक्ति—कुछ भी समझें, इनके प्रभाव से ही यह सब हुआ ।"

मुनिश्री की आँखों में अब भी एक दिव्य तेज दमक रहा था, जिसे देखकर गुरुदेव एवं अन्य संतगण चमत्कृत हो गये । गुरुदेव ने स्पष्ट देखा, यह श्रमण एक महान क्रान्तिकारी एवं तेजस्वी व्यक्तित्व के रूप में उभरेगा । जिन शासन की अद्भुत प्रभावना करेगा, किन्तु प्रकट में सिर्फ इतना ही कहा—"देखो, यों करामात दिखाना हम श्रमणों का काम नहीं है । भविष्य में ऐसा कभी मत करना ।"

मुनिश्री ने विनयपूर्वक गुरुदेव की शिक्षा स्वीकार की और अपनी साधना-आराधना में जुट गये ।

६
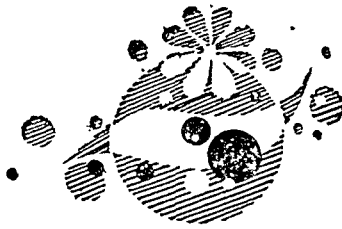
जनपद-विहार

☐

भगवान् महावीर ने ऋषि-मुनियों के लिए कहा है—**विहार चरिया इसिणं-पसत्था।**

—श्रमण-ऋषियों के लिए विहार करना प्रशस्त है। उनकी यात्रा नदी-प्रवाह के समान है। नदी जिस नगर के परिपार्श्व से निकलती है, वह नगर धन-धान्य, व्यापार आदि की दृष्टि से विकास के शिखर पर चढ़ता जाता है। नदी का किनारा सदा हरा-भरा रहता है और उसकी जलधारा से भूमि की उर्वरता बढ़ती जाती है। गंगा-यमुना आदि नदियों के किनारे बसे नगर आज समृद्धि की होड़ में आगे बढ़ रहे हैं, इसका सबसे प्रमुख कारण नदियों का सान्निध्य ही है। संतों के सत्संग से भी जन-जीवन में सत्संस्कार, सद्विचार और सदाचार की समृद्धि बढ़ती है। जन-जीवन की अनेक आपदाएँ-विपदाएँ स्वत: पलायन कर जाती हैं और भ्रातृत्व का विमल व्यवहार जीवन में उतरने लगता है। कहा भी है—

> साधु, सलिला, बादली, चले भुजंगी चाल।
> जिण-जिण सेरी नीसरे, तिण-तिण करत निहाल॥

मुनि श्री पन्नालाल जी अपने गुरुजनों के साथ गंगा की पावन धारा की भाँति जनपद में विचरण करने लगे थे। उनकी वाणी में माधुर्य तो था ही; शास्त्राभ्यास और अनुभव के साथ उसमें ओज और गाम्भीर्य भी व्यक्त होने लगा था। उनका व्यवहार मनोमुग्धकारी था। प्रथम सम्पर्क में ही व्यक्ति चुम्बकीय जैसे आकर्षण से खिंच जाता था। प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण दूर-दूर तक की जनता मुनि श्री के सम्पर्क में आती। जैन व अजैन व्यक्ति भी उनके दर्शन करने को उत्सुक रहते और जो उनका उपदेश एक बार सुन लेता, वह बार-बार सुनने के लिए लालायित रहता।

विक्रम संवत् १९६२। चैत्रमास में किशनगढ़ श्रीसंघ के अत्याग्रह पर आप वहाँ पधारे और वहाँ वैरागी छीतरमल जी एवं श्री छोटमल की दीक्षा सम्पन्न हुई। इस वर्ष के चातुर्मास्य के लिए आपने हरमाड़ा श्री संघ की आग्रह-भरी प्रार्थना स्वीकार की। यह चातुर्मास पूज्य गुरुदेव श्री केशरीमल जी महाराज के साथ सम्पन्न हुआ। अन्य अनेक विशिष्ट कार्यों में इस चातुर्मास की एक विशेष महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी—मुनिश्री द्वारा 'रमल विद्या' का अध्ययन।

विद्या और ज्ञान कोई भी बुरा नहीं होता, यदि उनका उपयोग जनहित एवं आत्महित में किया जाए। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि हमारे चरितनायक मुनि श्री पन्नालाल जी एक क्रान्तदर्शी संत होने के साथ-साथ शक्ति के विकास में विश्वास रखते थे। प्राचीन विद्याएँ जो पात्र एवं अनुभवी गुरु के अभाव में लुप्त हो रही थीं या जिनका दुरुपयोग किया जा रहा था, उन लुप्त-सुप्त विद्याओं का अनुसन्धान कर रहस्य प्राप्त करने की बलवती जिज्ञासा आप में थी। आपने ज्योतिष विद्या, रमल विद्या, तंत्र-मंत्र विद्या आदि अनेक प्रकार की प्राचीन विद्याओं का अनुशीलन किया और उनका रहस्य भी प्राप्त किया। आपका कथन था—ये विद्याएँ तो क्षयोपशम भाव हैं। इनका ज्ञान प्राप्त करना बुरा नहीं है, यदि दृष्टि में विवेक और संयम का पुट है। भगवान महावीर का स्पष्ट कथन है—

समियंति मन्नमाणस्स समिया वा असमिया वा समियं हवइ।

—आचारांग ५।५

सम्यग्दृष्टि के लिए सब ज्ञान सम्यग्श्रुत है। चाहे वह स्व-मत का हो या पर-मत का। चाहे वह तर्क-विद्या हो, तंत्र-विद्या हो या रमलविद्या। क्योंकि वह उसका प्रयोग विवेकपूर्वक ही करेगा। मध्ययुग की जैनयति परम्परा में ज्योतिष, तन्त्र-मन्त्र विद्याओं का काफी प्रचार था, किन्तु जब उनके जीवन में संयम का बन्धन शिथिल होने लगा तो विद्याबल का प्रवाह ऊर्ध्वगामी होने के बजाय अधोगामी होने लग गया। संयम एवं सम्यग् विवेक के अभाव के कारण वांछित फलदा विद्यासुन्दरी पर भी उँगली उठने लग गई थी। दीर्घप्रज्ञ मुनि श्री पन्नालाल जी महाराज इतिहास की इस अक्षम्य भूल को पकड़ चुके थे, इसलिए उन्होंने शक्ति के साथ संयम और सम्यग् विवेक का कड़ा बन्धन बाँधा और इसी कारण उनके जीवन में समय-समय पर जहाँ आवश्यक हुआ, आत्मबल चमत्कार बनकर प्रस्फुटित हुआ किन्तु कहीं भी उसका अहितकर परिणाम नजर नहीं आया। अस्तु, ज्योतिष और रमल विद्या का ज्ञान भी इसी दृष्टि से उन्होंने प्राप्त किया था।

हरमाड़ा चातुर्मास सम्पन्न कर मुनि श्री ने आस-पास के छोटे क्षेत्रों में भ्रमण कर वि० सं० १९६३ का चातुर्मास पाडू रूपारेल में, वि० सं० १९६४ का चातुर्मास भील-वाड़ा में, वि० सं० १९६५ का जालिया में और वि० सं० १९६६ का पुनः पाडू रूपारेल में सम्पन्न किया।

वि० सं० १९६६ का चातुर्मास गुरुदेव श्री गजमल जी महाराज के साथ प्रारम्भ किया था। किन्तु कुछ विशेष कारणवश पूज्य गुरुदेव श्री केशरीमल जी महाराज के पास पादूरूपारेल में पहुँचना पड़ा।

वि० सं० १९६७ का चातुर्मास मसूदा (अजमेर), वि० सं० १९६८ का अजमेर, वि० सं० १९६९ का किशनगढ़, वि० सं० १९७० का भिणाय, वि० सं० १९७१ का पादूरूपारेल एवं वि० सं० १९७२ का मसूदा में सम्पन्न हुआ।

वि० सं० १९६९ किशनगढ़ में गुरुदेव श्री केशरीमल जी महाराज का स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् आप पूज्य गुरुदेव श्री धूलचन्द जी महाराज के सान्निध्य में रहने लगे। सान्निध्य तो गुरुदेव का था, पर वास्तव में व्याख्यान एवं जन सम्पर्क का दायित्व तो आपके ही कन्धों पर था।

कबिरा गरब न कीजिए...

वि० सं० १९७३ का चातुर्मास गुरुदेव श्री धूलचन्द जी महाराज के साथ आपने बाँदनवाड़ा में किया। गुरुदेव श्री अस्वस्थ होने के कारण चातुर्मास के पश्चात् भी यहीं विराजते रहे।

इस वर्ष राजस्थान के इस अंचल में महामारी का भयंकर आतंक फैल रहा था। न्यूनाधिक रूप में पूरा देश ही इस चपेट में था। स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट दीखने वाला व्यक्ति भी एक-दो दिन में धराशायी हो जाता था। साधारण रूप में शरीर के किसी भाग पर एक गाँठ उठती और एक-दो दिन में ही आदमी मृत्यु का ग्रास बन जाता। चारों ओर मृत्यु की काली छाया मँडरा रही थी, किन्तु कुछ क्षेत्र इस महामारी के आतंक से अब भी सुरक्षित थे। उनमें बाँदनवाड़ा और टांटोटी का नाम लिया जा सकता है। टांटोटी में उन दिनों आचार्य श्री नानकराम जी महाराज की सम्प्रदाय के आचार्य श्री अभयराम जी महाराज के आज्ञानुवर्ती स्वामी श्री छोटमल जी महाराज (बड़े) स्थानापति थे। वे बड़े उग्रतपस्वी थे; साथ ही चमत्कारी संत के रूप में भी उनकी ख्याति थी। प्रतिवर्ष अनेकों तेले करते और गांव के बाहर उत्तर दिशा में डाई नदी के किनारे पर पीर जी की एक दरगाह थी, वहीं जाकर तीन दिन तक एकान्त में ध्यान आदि किया करते थे। उनके तपोजन्य प्रभाव की दूर-दूर तक चर्चा थी। टांटोटी में अब तक महामारी की छाया नहीं पड़ी थी। ग्रामवासी इसे धर्म का एवं तपस्वी स्वामी छोटमल जी महाराज का ही प्रभाव समझते थे और उनका विश्वास सही भी था। जब आस-पास के क्षेत्रों में प्रतिदिन महामारी अपना पंजा फैलाकर कोई-न-कोई भक्ष्य ले रही हो, तब बीच का एक छोटा-सा गांव उसके आतंक से सर्वथा सुरक्षित रहे—यह चमत्कार नहीं तो और क्या था? ग्रामवासियों को स्वामी जी ने आश्वस्त भी कर रखा था, जब तक छोटू जिन्दा है, तुम्हें डरने की जरूरत नहीं।

इन्हीं दिनों (वि० सं० १९७४ के चातुर्मास के पूर्व) मुनि श्री पन्नालाल जी महाराज आपको सुख-साता पूछने के लिए टाँटोटी पधारे। पन्नालाल जी महाराज की

तेजस्विता और प्रभावशीलता की अनेक बातें भी जनता में फैल चुकी थी। किन्तु उन्होंने स्वयं कभी अपने मुँह से इन घटनाओं की चर्चा तक नहीं की। वास्तव में साधक के लिए यह उपयुक्त भी नहीं है कि वह अपने मुँह से मियांमिट्ठू बने। मुनि श्री जब टांटोटी पधारे तब अनेक चर्चाओं के बीच महामारी की चर्चा आई और स्वामी छोटमल जी महाराज की आँखों में जरा चमक आ गई। वे बोले—देखो पन्न जी! चारों ओर प्लेग का भारी आतंक छाया हुआ है, किन्तु टांटोटी में उसका कुछ असर-वसर नहीं है। मैंने अपने प्रभाव से इसको गाँव में घुसने से रोक रखा है। टांटोटी के एक कुत्ते का भी वाल बांका नहीं हो सकता, जब तक मैं हूँ! बोलो तुम में है, ऐसी करामात?

मुनिवर पन्नालाल जी मौन और गम्भीर हो गये। साधक को अपनी शक्ति का अहंकार कभी नहीं होना चाहिए और न वाणी द्वारा अपनी महानता व्यक्त करनी चाहिए। इसीलिए भगवान ने कहा है—'अत्ताणं न समुक्कसे—अपने मुँह अपना उत्कर्ष नहीं बताना चाहिए। जैसे शक्ति को छिपाना, दीनता दिखाना दोष है, वैसे ही शक्ति का प्रदर्शन करना और अपने मुँह मियांमिट्ठू बनना भी दोष है। स्वामी छोटमल जी महाराज अपनी तपःशक्ति के प्रभाव को हजम नहीं कर पाये और मुनि श्री पन्नालाल जी के समक्ष उसकी बड़ी-बड़ी बातें करने लगे। कुछ देर तो मुनि श्री मौन भाव से सुनते रहे, पर जब स्वामी छोटमल जी महाराज बार-बार उसी बात को दुहराने लगे तो मुनि श्री पन्नालाल जी ने गम्भीर स्वर में कहा—

ठीक है, आपका प्रभाव प्रबल है, पर गर्व नहीं करना चाहिए···कौन जाने कब क्या होता है।...

कुछ दिन तक मुनि श्री स्वामी छोटमल जी के पास रहे और फिर लौटकर वापस वांदनवाड़ा आ गये। समय की बलिहारी है, इसी १९७४ के चातुर्मास में प्लेग का फिर जोर बढ़ा और टांटोटी गाँव उसके चंगुल में फँस गया। आश्चर्य! महामारी का पहला आक्रमण स्वामी छोटमल जी पर ही हुआ। एक गाँठ उठी और देखते ही-देखते तपस्वीराज स्वर्गवासी हो गये। कुछ दिन बाद उनके शिष्य श्री हरिलाल जी महाराज भी इसी के शिकार हुए और अब पूरे गाँव में भगदड़ मच गई। दस-पन्द्रह मनुष्य प्रतिदिन कालकवलित होने लगे। कुछ ही दिनों में टांटोटी सूना-सूना-सा हो गया। वह वीभत्स और हृदयद्रावक दृश्य आज भी बुजुर्गों के दिलों पर अंकित है और उसकी स्मृति मात्र से रोमांच हो जाता है।

वांदनवाड़ा में स्थित मुनि श्री पन्नालाल जी ने टांटोटी की घटना सुनी तो उनके मन पर गहरी चोट लगी। साथ ही वे कुछ समय के लिए विचार-मग्न हो गए।

भगवान ने तपस्वी साधकों को जहाँ जितेन्द्रिय कहा है, वहाँ **"गुत्तिदिए गुत्तबंभयारी संखित्तविउलतेउलेस्से"** आदि विशेषण भी दिये हैं। उनका रहस्य इस घटना के प्रकाश में स्पष्ट होने लगा। इन्द्रियों के विकारों को जीतना ही बस नहीं है, किन्तु इन्द्रिय-विजय से जो शक्ति प्राप्त होती है, उस शक्ति को गुप्त रखना, उस शक्ति का अहंकार न

करना—यह इन्द्रिय-विजय से आगे की साधना है। शक्ति प्राप्त होना उतना महत्त्व का नहीं, जितना उस शक्ति के दर्प को हजम कर लेना।" मुनि श्री बहुत देर तक इसी बात पर सोचते रह गये। वे स्वयं शक्ति-सम्पन्न थे, पर उन्होंने न तो कभी अपनी शक्ति का बखान किया और न उसके भरोसे पर किसी को आश्वासन दिया। बल्कि सदा सत्कर्म, सदाचार और तपाराधन की प्रेरणा देकर आपत्तियों से स्वयं लड़ने का ही सन्देश दिया। आश्चर्य की बात है कि चारों ओर जहाँ महामारी की काली भयावनी छाया मँडरा रही थी, वहाँ बांदनवाड़ा में दो-चार छुटपुट घटनाओं के अतिरिक्त प्रायः पूरा नगर ही सुरक्षित रहा।

शिक्षा-गुरुजी का विछोह

वि० सं० १९७४ का चातुर्मास सम्पन्न होने के बाद पूज्य गुरुदेव धूलचन्द जी महाराज ने बांदनवाड़ा से विहार कर अनेक नगरों में भ्रमण किया और १९७५ का चातुर्मास भिणाय में सम्पन्न किया। इस चातुर्मास के बाद आप टांटोटी पधारे। वहाँ पूज्य गुरुदेव श्री गजमल जी महाराज भी जालिया चातुर्मास कर विहार करते हुए पधार गये थे। संतों का मधुर मिलन उत्साहवर्द्धक रहा। वहां गुरुदेव श्री गजमल जी महाराज का स्वास्थ्य क्षीण होने लगा। सामान्य बीमारी में भी उन्हें ऐसा अनुभव हुआ कि यह शरीर अब अधिक दिन टिकने वाला नहीं है। माघ शुक्ला १४ के दिन गुरुदेव श्री धूलचन्द जी महाराज के समक्ष निःशल्य भाव से आलोचना आदि कर संलेखना की इच्छा व्यक्त की। कुछ संतों ने कहा—गुरुदेव अभी तो ऐसी कोई बात नहीं है? आपने स्थितप्रज्ञ की भाँति उत्तर दिया—श्वास तो हवा है। इसका कोई भरोसा नहीं है—

पवन तणी परतीत, किहि कारण काठी करी?
इणही आहिज रीत, आवै के आवै नहीं॥

एक सांस आई और दूसरी आयेगी कि नहीं, कोई पता नहीं। यह जीवन और यह शरीर 'फेणुबुब्बुय संन्निभं'—पानी के परपोटे के समान है। इसलिए इसका भरोसा कर अपना संलेखना-संथारा टालते जाना क्या उचित है?

आपका दृढ़ धैर्य और अंतिम आत्मशुद्धि की तीव्र अभिलाषा सभी को चकित करने वाली थी। वास्तव में यही तो मृत्युकला है। जीने की कला, हर कोई जानना चाहता है। परन्तु मृत्युकला कोई विरला ही जानता है। गुरुदेव श्री गजमल जी महाराज ने संलेखना की और वे सम्पूर्ण समय अत्यन्त सावधानी के साथ आत्म-आराधना, चिन्तन-मनन आदि में जागरूकता के साथ बिताने लगे। ऐसा लग रहा था कि वे मृत्यु की भीति से मुक्त होकर महाकाल का स्वागत करने की तैयारी कर रहे थे। मृत्यु-काल सामने खड़ा दिखाई दे रहा था और वे निर्भीकता के साथ अपनी तैयारी कर उस पर आरूढ़ होने को थे। आखिर फाल्गुन कृष्णा १३ के दिन अभयमूर्ति गुरुदेव श्री ने यावज्जीवन संथारा किया और उसी रात्रि में आपका स्वर्गवास हो गया।

प्रारम्भ किया। आगम-वेद, पुराण, कुरान, गीता, भागवत के अनेक संदर्भों को प्रस्तुत करते हुए आपने अहिंसा, उसमें पशुवध, पशुवध में सहायक होने वाले व्यापार आदि पर जोशीला प्रवचन दिया। प्रवचन के बीच राष्ट्रीय समस्या—'विदेशी वस्त्र' भी आ गया। आपने उसे भी अहिंसा का प्रश्न लेकर काफी प्रभावशाली ढंग से श्रोताओं के हृदय को झकझोरा।

अहिंसा का यह प्रसंग चल ही रहा था कि वहाँ का प्रशासक (अँग्रेज) कैप्टेन, कैण्टोनमेण्ट का मुख्य अधिकारी घोड़े पर सवार होकर उधर ही सभास्थल की तरफ आ गया। और वहीं रुक गया।

यह वह जमाना था, जब भारतीय प्रजा पर अँग्रेजी शासकों का एकच्छत्र राज्य था। लोग कहते थे कि अँग्रेज का कुत्ता भी शेर बना हुआ था। किसी अँग्रेज आफीसर का आदेश ही कानून माना जाता था और उसके विरुद्ध आवाज उठाना बरबादी को बुलाना या मौत को निमन्त्रण देना था। अँग्रेजी सत्ता के विरोध में आवाज उठाने वालों को दमन की चक्की में पीसा जा रहा था। पूरे देश में अँग्रेजों का दमनचक्र चल रहा था।

नसीराबाद तो फौजी छावनी थी। धारा १४४ लागू थी, जिसके अन्तर्गत पाँच या इससे अधिक व्यक्तियों का सार्वजनिक स्थान या मार्ग पर एकत्र होना भी अपराध था। ऐसी स्थिति में अँग्रेजी सेना की नाक के नीचे सार्वजनिक स्थान पर यह सभा आयोजित हुई। उसमें अहिंसा और विदेशी वस्त्र के बहिष्कार की चर्चा, और सामने खड़ा है अँग्रेज—कैप्टेन, नगर का प्रशासक स्वयं। व्यवस्थापकों के होश गुम हो गये, उनके चेहरे सफेद पड़ गये। अब करें तो क्या करें? इधर-उधर कानाफूसी होने लगी। मुनि श्री ने जनता की भयाक्रान्त स्थिति को भाँप लिया। १४४ धारा के आन्तर्गत यह आयोजन करने की व्यवस्थापकों की भूल का उन्हें भी अफसोस हुआ। पर अब क्या है? जब ऊखल में सिर दे दिया तो फिर डरना काहे का। उन्होंने बचपन में यही पाठ पढ़ा था।

तावद् भयेषु भेतव्यं यावद् भयमनागतम्।
आगतं तु भयं द्रष्ट्वा प्रहर्तव्यमशंकया॥

अर्थात् भय (विपत्ति) जब तक सामने नहीं आ जाए, तब तक उससे बचने का प्रयत्न करना चाहिए, किन्तु जब सिर पर भय आ जाए तो फिर निर्भय होकर उस पर प्रहार करना ही बुद्धिमानी है। यह विचार कर मुनि श्री ने निर्भीकतापूर्वक अपना प्रवचन चालू रखा और जनता को भी शान्ति के साथ सुनने का आह्वान किया।

इधर कैप्टेन घोड़े से नीचे उतरा। घोड़े की लगाम साथ के पुलिस इन्सपेक्टर को थमाई और स्वयं मुनि श्री की ओर आगे आया। कैप्टेन को आगे बढ़ा देखकर जनता का कलेजा धक्-धक् कर उठा। लोग देख रहे थे और मन में आशंकित थे कि कहीं मुनि श्री को गिरफ्तार न कर लें। कप्तान सीधा मुनि श्री के सामने पहुँचा और बोला—तुम कौन हो?

लोगों की भय भरी बातें सुनकर भी मुनि श्री विचलित नहीं हुए। साहस और धीरज के साथ उन्होंने कहा—"आप लोग घबरायें नहीं। जो होना है, वह होगा। भाग जाने और छिप जाने की बातें न करें। पहली बात यह कि मुझे दृढ़ आत्म-विश्वास है कि ऐसा कुछ भी नहीं होगा। पुलिस हमें गिरफ्तार नहीं करेगी, फिर कारण भी तो कुछ नहीं। अहिंसा में हमारी दृढ़ आस्था है। **'अहिंसाप्रतिष्ठायां तत् सन्निधौ वैरत्यागः'** का सूत्र बोलते रहे हैं। इसकी आज परीक्षा है कि हमारे मन में किसी के प्रति विरोध और विद्वेष नहीं है तो दूसरे के मन में क्यों होगा। यदि उनके मन में ऐसा कुछ हो भी, तब भी हमारी अहिंसा वीरों की अहिंसा है। क्षत्रिय मारना जानता है, पर साधु मरना जानता है। यदि हमें अहिंसा में विश्वास है तो प्राणोत्सर्ग के लिए भी तैयार रहना होगा।"

मुनि श्री इस प्रकार भय और आशंका से उद्वेलित उपस्थित जनसमूह को उद्-बोधन दे रहे थे, तभी पुलिस दल स्थानक के सामने आ गया। पर आश्चर्य ! महान् आश्चर्य !! वह रुका, नहीं सीधा आगे की सड़क पर बढ़ता चला गया और कुछ दूर जाकर अगले मोड़ से स्टेशन की तरफ मुड़ गया।

लोगों की मनःस्थिति बड़ी विचित्र हो रही थी। कुछ लोगों को अब भी आशंका थी कि पुलिस दल को स्थानक का पता नहीं है, अतः इधर-उधर खोज रहे हैं। शायद घूम-फिर कर वापस यहीं आयेंगे। पर मुनि श्री का अटल आत्मविश्वास अपना चमत्कार दिखा चुका था। लोगों को आश्वस्त करते हुए उन्होंने कहा—आप लोग व्यर्थ में भय न खायें, अफवाहें न फैलायें। सब लोग शान्ति के साथ अपने काम में लगे। जो कुछ भी होना है, हम सब स्थितियों में अपने आत्म-बल पर विश्वास किये खड़े हैं।

कुछ देर बाद श्री बालचन्द जी पारख घटना का पता लेकर आये और मुनि श्री के आत्मबल की सराहना करते हुए बोले—"गुरुदेव ! वास्तव में हम लोग तो व्यर्थ ही घबरा गये थे। पुलिस तो रेलवे स्टेशन पर किसी अपराधी को पकड़ने के लिए जा रही थी। आपका अटल आत्मबल ही था जो ऐसी आशंकाओं से विचलित नहीं हुआ और बार-बार हमें भी धीरज बँधाता रहा। यदि हमारे कहने से आप किसी भी अज्ञात स्थान को चले जाते तो कैसा मजाक होता ?"

गुरुवर श्री ने गम्भीरता में हँसी के साथ कहा—'बनिया डरता जल्दी है। लेकिन हम तो महावीर की सन्तान हैं। युद्ध के मैदान में भी सीना तानकर चलने वाले हैं। हमें किसी भी परिस्थिति में अपना आत्मबल और आत्म-विश्वास नहीं खोना चाहिए। वास्तव में आत्म-बल ही मनुष्य की रक्षा करता है।"

नसीराबाद में मुनि श्री जितने दिन भी रहे, जब भी प्रवचन करते सी० आई० डी० पुलिस उनकी बातें नोट कर कैप्टेन को बराबर रिपोर्ट देती थी। लेकिन सब कुछ कहकर भी अपनी प्रवचन पटुता के कारण वे कभी भी सी० आई० डी० की पकड़ में नहीं आये।

इस प्रकार मुनि श्री पन्नालाल जी महाराज के जीवन में बार-बार ऐसे प्रसंग आते रहे, जब उनकी वर्चस्विता और वाणी के जादुई प्रभाव से न केवल सामान्य जन ही, बल्कि कठोर शासक, क्रूर हिंसक और भयानक डाकू भी नतमस्तक हो गये।

वाणी द्वारा आत्मबल जगाया

मनुष्य के पास वाणी एक ऐसा अमोघ साधन है, जिसके द्वारा वक्ता चाहे तो दूसरे को हतोत्साह और निराश कर सकता है और चाहे तो प्रोत्साहित एवं आशावादी बना सकता है। वक्ता चाहे तो गालियाँ देकर दूसरों को अपना दुश्मन भी बना सकता है और चाहे तो वाणी के द्वारा यथोचित प्रशंसा एवं प्रतिष्ठा देकर दूसरों को अपना भी बना सकता है। वाणी वह शस्त्र है, जिसके प्रयोग से व्यक्ति दूसरों को मौत के घाट उतार सकता है और चाहे तो दूसरों की पीड़ा के घावों पर सहानुभूति की मरहमपट्टी करके जिला भी सकता है। वाणी से श्रोता को विरक्त भी बनाया जा सकता है और उसी वाणी से दूसरों को भोगासक्त भी बनाया जा सकता है। वाणी का यथार्थ उपयोग करने की जिम्मेदारी सबसे अधिक त्यागी साधु-सन्तों पर आती है, जिनके वचनों पर दुनिया सर्वाधिक विश्वास करती है, जिनकी सत्यवादिता एवं आप्तता पर विश्वास करके जगत् उनके वचनों के अनुसार चलता है। इसलिए साधु-सन्तों का कर्तव्य है कि वे अपने सम्पर्क में आने वाले चाहे पुण्यवान हों चाहे तुच्छ, समभाव से यथायोग्य मार्गदर्शन दें, उन्हें गुमराह न करें और न मार्गदर्शन देने में उपेक्षा करें। बल्कि श्रमण भगवान महावीर के अनेकान्तवाद—सापेक्षवाद के दृष्टि-कोण से आत्मा में निहित अनन्त शक्तियों की अभिव्यक्ति के लिए प्रत्येक व्यक्ति को वे प्रोत्साहन दें, उन्हें निरुत्साहित या निराश न करें; इसीलिए भगवान महावीर ने स्पष्ट शब्दों में कहा—

"पच्छा वि ते पयाया खिप्पं गच्छंति अमरभवणाइं।
जेसिं पिओ तवो संजमो य खंतीय बंभचेरं च॥"

'जीवन की पिछली अवस्था में भी वे दीक्षित व्यक्ति शीघ्र अमर भवनों को प्राप्त कर लेते हैं, जिन्हें संयम, तप, क्षमा और ब्रह्मचर्य प्रिय है।'

इसीलिए भगवान् महावीर का साधु वर्ग के लिए खास आदेश है—

जहा पुण्णस्स कत्थइ, तहा तुच्छस्स कत्थइ।
जहा तुच्छस्स कत्थइ, तहा पुण्णस्स कत्थइ।

'साधु वर्ग जैसे एक पुण्यवान् को उपदेश देता है, वैसे ही वह एक तुच्छ व्यक्ति को उपदेश या प्रेरणा दे। इसी प्रकार जैसे वह तुच्छ व्यक्ति को मार्गदर्शन देता है, वैसे ही पुण्यशील उच्च वर्ग को भी मार्गदर्शन दे।'

तात्पर्य यह है कि साधु के पास चाहे बालक आए, युवक आए, बूढ़ा आए, महिलाएँ आएँ या जिन्दगी के किनारे से लगा हुआ व्यक्ति आए, फिर वह चाहे धनाढ्य

हो, नेता हो या उच्च अधिकारी हो, अथवा वह साधारण व्यक्ति हो, निर्धन हो या श्रमजीवी हो; उसे सबको समान भाव से मार्गदर्शन देना चाहिए।

हमारे चरितनायक की वाणी में वह जादू था, उनकी वृत्ति में वह समताभाव था कि उससे तुच्छ से तुच्छ उपेक्षित व्यक्ति को भी मार्गदर्शन मिलता था और बड़े से बड़े नेता को भी।

एक ज्वलन्त उदाहरण से पाठकों को पता लग जायगा कि आपकी वाणी में कितना आत्मबल जगाने वाला चमत्कार था।

वि० संवत् १९८७ का वर्षावास मसूदा में पूर्ण करके गुरुदेव ग्रामानुग्राम पैदल विहार करते हुए अजमेर पहुँचे। वहाँ एक बार महात्मा गाँधी जी की सेवा में हर समय रहने वाले उनके अनन्य सेवक श्री महादेव भाई देसाई आपके दर्शनार्थ आये। बातचीत के सिलसिले में महादेव भाई ने आपसे मार्गदर्शन लेने की दृष्टि से नम्रतापूर्वक निवेदन किया—"महाराज साहब! आजकल नेता लोगों को बड़ी कठिनाई से गुजरना पड़ता है। नेताओं के सिर पर आजकल ब्रिटिश सरकार की दुधारी तलवार लटकी रहती है। वे अगर सरकार के खिलाफ उग्र आन्दोलन छेड़ते हैं तो उसको गिरफ्तार करके जेल में डालकर सरकार उसकी कर्तृत्व शक्ति कुंठित कर डालती है और अगर वे चुपचाप सरकार की अन्याय पूर्ण नीतियों को सहते हैं, कुछ भी प्रतीकार नहीं करते तो जनता उन्हें कोसती है, तथा अन्दर ही अन्दर अपने अन्तर में घुटते रहते हैं। ऐसी स्थिति में क्या किया जाय? कुछ सूझता नहीं।"

उत्तर में आपने उन्हें प्रोत्साहित करते हुए ओजस्वी वाणी में कहा—"देसाई जी! यों इन मामूली हवा के झौंकों से न घबराइये। ये तो मामूली झौंके हैं। अभी तो आप लोगों को इनसे भी भंयकर कसौटियों से गुजरना होगा। आत्मा में अनन्तशक्ति है। उस शक्ति की अभिव्यक्ति और विकास भी तभी होगा, जब आप इस प्रकार के संकटों का मजबूत मनोबल के साथ सामना करेंगे, आप अन्त तक अहिंसा-सत्यरूपी आत्मबल के साथ टिके रहेंगे। अगर आप इतने छोटे-से संघर्ष या संकट से घबरा गए तो आपकी आत्मिकशक्तियों को जंग लग जाएगा, यह आपका सबसे बड़ा नुकसान होगा।

दही को मथ कर मक्खन निकालते हुए तो आपने देखा ही होगा। दही बिलौने से पहले दही के बड़े मटके में बीच में एक लकड़ी का डंडा लगाया जाता है, जिसे 'रई' कहते हैं, उस पर रस्सी का एक टुकड़ा लपेटा जाता है, जिसके दोनों सिरे पकड़ कर इधर से उधर, उधर से इधर खूब खींचा जाता है। उक्त रस्सी के टुकड़े को 'मारवाड़ में 'नेता' कहा जाता है। जब रस्सी का बेजान नेता भी खींचातानी का इतना कष्ट सहन करता है, तभी जाकर मक्खन निकाल पाता है, तब आप तो जानदार नेता (अगुआ) है, आप भी सरकार और जनता दोनों तरफ की खींचातानी से घबरा गए तो स्वातन्त्र्यरूपी मक्खन कैसे निकाल पायेंगे? आपको संघर्ष या संकट से नहीं घबराकर अपने में सोई हुई आत्म-शक्ति को जगाने के लिए तपस्या, धैर्य और संयम से काम लेना आवश्यक है।"

आपके इस मार्गदर्शन का महादेव भाई पर बहुत ही अद्भुत प्रभाव पड़ा। वे बहुत ही प्रसन्न हुए और बोले—"महाराज साहब ! आपके आत्म-विश्वास भरे प्रेरक उपदेश से हमें बहुत ही सुन्दर मार्गदर्शन मिला है। इससे हमारा आत्मबल बढ़ा है। हम आपके इस उपदेश को जिंदगी भर नहीं भूलेंगे। हमें यह सदा मार्गदर्शन देता रहेगा।"

स्वधर्म क्या है ?

गुरुदेव श्री की वाणी को प्रभावपूर्ण बनाने में उनकी व्युत्पन्नप्रतिभा भी सदा सहायक सिद्ध हुई। उनकी विचार-चेतना इतनी प्रबुद्ध और सुस्पष्ट थी कि कभी भी किसी भी जटिलतम विषय को तुरन्त स्पष्ट और सरल अभिव्यक्ति के साथ प्रस्तुत करने में सक्षम रही।

एक बार गुरुदेव श्री 'रायला' नामक गाँव में पधारे। वहाँ जैन वसति नहीं थी, पर वैदिक ग्रन्थों के गहन अभ्यासी कर्मकांडी और शास्त्रार्थप्रिय ब्रह्मणों का वह गढ़ था। अनेक ब्राह्मण विद्वान विचार-चर्चा व तर्क-वितर्क करने गुरुदेव श्री के निकट आये। वह युग शास्त्रार्थ और वाद-विवाद का था, किसी भी परधर्मी को वाद-विवाद में परास्त कर देना बहुत बड़ी गौरव की बात थी। समाज में भी उसका सम्मान होता था।

एक ब्राह्मण विद्वान ने कहा—गीता में कहा है—**स्वधर्मे निधनं श्रेयः**—अपने धर्म में मर जाना अच्छा है, परन्तु पर-धर्म की ओर मुँह करना भयावह है (परधर्मो भयावहः) इसलिए हम लोग आपके धर्म से डरते हैं।

गुरुदेव—पंडित जी ! आपने गीता तो पढ़ी है, पर लगता है उसका हृदय नहीं पढ़ा, सिर्फ शब्दों को पकड़ कर ही बैठ गये हैं।

पंडित—कैसे ?

गुरुदेव—स्वधर्म और पर-धर्म का अर्थ क्या है, यह भी कभी आपने सोचा ? स्वधर्म का मतलब वैदिक धर्म और पर-धर्म का मतलब जैन-बौद्ध आदि यह मानना गलत है। स्व का अर्थ है आत्मा। जो आत्मा का धर्म है, जो चिदानन्द का धर्म है, वही वास्तव में स्वधर्म है, आत्मा के अतिरिक्त जो अन्य मार्ग हैं, वह पर-धर्म है। आत्मा को स्वधर्म में ही समर्पित हो जाना चाहिए; पर-धर्म (विषयों की तरफ) में जाना उसके लिए भयावह है, दुःखप्रद है, यह गीता का आशय है।

उपस्थित विद्वान् और श्रोतागण इस अद्भुत और सुन्दर अर्थ को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। वहाँ के अनेक विद्वान् आपके संपर्क में आये और विविध प्रकार की भ्रांतियों से मुक्ति पाई।

वाणी के बल से विरोध शान्त किया

वाणी में चमत्कारिक शक्ति का सम्बन्ध आत्मबल से है। जिसमें जितना प्रखर आत्मबल होगा, उसकी वाणी का प्रभाव भी उतना ही शीघ्र और अधिक होगा। जिनमें आत्मबल नहीं होता, उनकी वाणी चाहे जितनी शुद्ध भाषा से युक्त हो, लच्छेदार हो, चाहे जितनी बुलंद आवाज हो, उसका असर चिरस्थायी नहीं होता। आत्मबल सम्पृक्त वाणी में चुम्बक की तरह दूसरों को खींचने की सम्मोहक शक्ति होती है। इसीलिए नीतिकार ने कहा—

'वाण्येका समलंकरोति सततं, वाग्भूषणं भूषणम्'

एकमात्र वाणी ही मनुष्य के व्यक्तित्व को विभूषित कर सकती है, इसलिए वाणी रूपी आभूषण ही वास्तव में आभूषण है।

हमारे चरितनायक श्री के आत्मबल का परिचय हम पूर्व पृष्ठों में पा चुके हैं। उनकी वाणी में ओज और तेज भी आत्मबल के अनुरूप बढ़ा-चढ़ा था। यही कारण है, कि सांसारिक दृष्टि में बड़े माने जाने वाले धनाढ्य और सत्ताधीशों पर भी उनकी वाणी का रामबाण-सा जादुई प्रभाव पड़ जाता था। विरोधी से विरोधी व्यक्ति भी उनकी वाणी के कारण हतप्रभ होकर अनुकूल बन जाता था। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है—भयंकर विरोध के बावजूद मसूदा में साध्वी जी की दीक्षा का होना।

बात संवत् १९९३ की है। आप भिणाय चातुर्मास व्यतीत करके मसूदा में मार्गशीर्ष कृष्णा १२ को आचार्य श्री जयमल्लजी महाराज साहब की अज्ञानुवर्तिनी महासती श्री पानकुँवरजी महाराज के निश्राय में एक बहन (वर्तमान—महासती श्री सुगनकुँवर जी) की दीक्षा सम्पन्न कराने हेतु मसूदा श्रावक संघ की विनति पर मसूदा पधारे। इधर उपर्युक्त सम्प्रदाय के मंत्री मुनि श्री चौथमलजी महाराज एवं आचार्य श्री स्वामीदास जी महाराज की सम्प्रदाय के मंत्री मुनि श्री छगनलाल जी महाराज तथा मंत्री श्री मिश्रीलाल जी महाराज आदि अपने मुनिमण्डल सहित मसूदा पधार गये थे।

उन दिनों मसूदा राव साहब बाल-दीक्षा के विरुद्ध थे। उनके दिमाग में किसी ने यह ठसा दिया था कि जैनसाधु छोटे उम्र के लड़के-लड़कियों को मूँड लेते हैं। तब से उन्होंने यह पक्का विचार कर लिया था कि किसी भी लड़के या लड़की की दीक्षा अपने राज्य में न होने दी जाय।

हमारे चरितनायकजी का मसूदा-राव साहब, पर अत्यधिक प्रभाव था। मसूदा राव साहब विजयसिंहजी आपकी समझाने की उत्तम शैली के कारण आपके अनन्य भक्त बने हुए थे। स्थानीय श्रावक संघ इसी उद्देश्य से उक्त बहन की दीक्षा निर्विघ्नरूप से सम्पन्न करा देने हेतु आप श्री को सम्मानपूर्वक विनति करके लाया था।

आप एक दिन, मुनिमण्डल के साथ प्रातःकाल शौचक्रिया के लिए जंगल में पधार रहे थे, उधर से मसूदा रावसाहब विजयसिंह जी प्रातः भ्रमण करके शहर की

ओर लौट रहे थे कि अकस्मात् आपको देखकर वन्दना को और एक ओर ले जाकर आपसे एकान्त में निवेदन किया—"आप यहाँ कव पधारे ?"

मुनिश्री ने उचित अवसर देखकर कहा—"राव साहव, मैं कुछ दिन हुए, स्थानीय जैन श्रावक संघ की विनति से यहाँ आया हुआ हूँ। यहाँ संघ की ओर से एक वहन की दीक्षा होने जा रही है, उसी निमित्त से मैं और ये मुनिगण आए हुए हैं।"

दीक्षा का नाम सुनते ही राव साहव के भावों में परिवर्तन होने लगा, जो उनके चेहरे पर परिलक्षित होता था। फिर भी अपने को संयत करके वे वोले—"गुरुदेव ! आप जैसे सुधारक संत का ऐसी दीक्षा में भाग लेना कहाँ तक उचित है ? मैं तो ऐसी दीक्षाओं का विरोधी हूँ, और यहाँ इस दीक्षा पर प्रतिबंध लगवा रहा हूँ और आप इसमें सम्मिलित होने के लिए पधारे हैं ?" वड़ा आश्चर्य है।"

इस पर मुनिश्री पन्नालाल जी महाराज ने अपनी तेजोयुक्त वाणी में उनसे कहा—"राव साहव ! आप दीक्षा का विरोध क्यों करते हैं ?"

राव साहव—"इसलिए कि छोटी उम्र की लड़कियाँ वहका कर मूँड ली जाती हैं। जव वे वयस्क और समझदार होती हैं तो या तो अन्दर ही अन्दर घुटती रहती हैं, अथवा साध्वीजीवन छोड़कर आवारागर्द फिरती हैं।"

मुनिश्री—"सभी साध्वियाँ ऐसी नहीं होतीं, राव साहव ! कोई एकाध केस हो जाय, उस पर से सारे ही साध्वी समाज को वैसा ही मान लेना, उचित नहीं है। यों तो गृहस्थवर्ग में कई परिवारों में भी ऐसे केस होते देखे जाते हैं। फिर भी वर्तमान-काल के अशान्त और भोग-विलास पूर्ण गृहस्थजीवन में व्यक्ति स्व-पर कल्याण की साधना तो दूर रही, स्वकल्याण की साधना भी निश्चिन्ततापूर्वक नहीं कर सकता, जवकि साधुजीवन में त्याग-वैराग्य का वातावरण सहजरूप से मिलता है, फिर समय और निश्चिन्तता रहती है, इसलिए स्व-कल्याण के साथ-साथ हजारों व्यक्तियों का कल्याण भी कर सकता है। गृहस्थ वर्ग में दोनों ही प्रकार की नीति चलती हैं—कई गृहस्थ कम से कम देकर वदले में अधिक लेते हैं; कई जितना देते हैं, उतना ले लेते हैं। परन्तु साधुवर्ग में—सच्चे त्यागपरायण साधु-साध्वियों में कम से कम और वह भी उपकृतभाव से लेकर वदले में ज्यादा से ज्यादा देने की नीति प्रचलित है। सच्चा साधु वर्ग संसार पर भारभूत नहीं, अपितु संसार के लिए वरदानरूप है। धर्मात्मा साधु वर्ग के अस्तित्व पर ही सारा संसार टिका हुआ है। आप अगर मुझे अपने (स्वयं के) लिए कुछ मानते हैं, तव तो आपको समस्त सुविहित साधुवर्ग को भी मानना चाहिए। मैं स्वयं कुछ नहीं था, परन्तु गुरुदेव की कृपा से आज इतना योग्य वन सका हूँ। इसी प्रकार साधु जीवन अंगीकार करने वाले भले ही आज सर्वथा प्रभाव शून्य दीखें, परन्तु उनकी अन्तरात्मा में छिपी हुई ज्ञान ज्योति एक दिन प्रगट होती ही है। इसलिए आपको दीक्षा जैसे मंगल कार्य में वाधक नहीं वनना चाहिए। वल्कि दीक्षा ग्रहण करने वाले व्यक्तियों को अपनी ओर से प्रोत्साहन और सहयोग देना चाहिए।"

डाकू की गुरु-भक्ति

राजनीति निग्रह और संग्रह में विश्वास करती है। दुष्ट-दुर्जन का निग्रह और सज्जन-सुनागरिकों का संग्रह-संरक्षण करना राजनीति का मूल-मंत्र है, किंतु धर्मनीति इन दोनों से ऊपर उठकर अनुग्रह का मंत्र देती है। वह मनुष्य में दुर्जन-सज्जन का अन्तर मौलिक नहीं मानती। सज्जन मनुष्य भी परिस्थितिवश, वातावरण और संस्कारों के कारण दुर्जन बन जाता है, जैसे कि गंगाजल भी गंदी नाली के पानी के साथ मिलकर गंदाजल हो जाता है। और दुर्जन सत्संग एवं सत्संस्कारों के परिणामस्वरूप सज्जन बन सकता है। धर्मनीति मूलतः मनुष्य की शुद्धि एवं पवित्रता में विश्वास करती है। डाकू रत्नाकर भी ऋषि वाल्मीकि बन सकता है, तस्कर प्रभव भी आचार्य प्रभव बन सकते हैं। चाहिए मानव-मात्र के प्रति अनुग्रह दृष्टि ! उसकी मनुष्यता में आस्था रखकर सुप्त-संस्कारों को उत्प्रेरित करने वाला स्नेह, वात्सल्य और अनुग्रह भाव होना चाहिए।

गुरुवर्य श्री पन्नालालजी महाराज अनुग्रह भाव के जीवंत प्रतीक थे। स्नेह और सद्भावना के अक्षय स्रोत थे। उन्होंने अनेक हिंसकों, विधर्मियों और आततायियों को अपने अनुकूल बनाया, अधर्म से धर्म की ओर मोड़ा, हिंसा व पाप से दया और पुण्य के क्षेत्र में उतारा—इसका मूल कारण था उनका असीम अनुग्रह भाव। विधर्मी और आततायी के साथ भी वे बड़ा स्नेह और आत्मीय भाव पूर्ण व्यवहार करते थे। इससे उसकी मानवता स्वतः उत्प्रेरित होकर चरणों में विनत हो जाती।

गुरुदेव श्री की अनुग्रह-दृष्टि के अनेक चमत्कार प्रसिद्ध हैं जिनमें एक की चर्चा हम यहाँ करते हैं।

राजस्थान का तत्कालीन प्रसिद्ध डाकू मोडसिंह आज भी एक भयावह स्मृति बना हुआ है। उनके आतंक से अजमेर राज्य एवं उसके पार्श्ववर्ती क्षेत्रों की प्रजा

तथा उग्र वातावरण को देखकर न्यायाधीश महोदय ने स्वामी श्री जोरावरमलजी को निवेदन किया कि आप यह दीक्षा मारवाड़ राज्य से बाहर करें तो ठीक रहे।

गुरुदेव श्री पन्नालालजी महाराज को श्री लोढा साहब ने भी सब स्थिति सूचित की। तभी आप श्री ने स्वामी श्री जोरावरमलजी महाराज को सुझाव दिया—"आप श्री यह दीक्षा 'भिणाय' (अजमेर राज्य सीमा) में आकर करें, सब जिम्मेदारी मेरी है। मुझे पूरा विश्वास है कार्यक्रम निर्विघ्न सानन्द सम्पन्न होगा।

गुरुदेव का उत्साहप्रद प्रस्ताव स्वीकार कर स्वामी श्री जोरावरमलजी शिष्य-परिवार के साथ 'भिणाय' पधार गये।

इधर मुनिश्री पन्नालालजी महाराज के पास भी एक वैरागी थे शंकरलालजी। उनकी दीक्षा का भी आग्रह चल रहा था, अतः इसी अवसर पर उनकी दीक्षा की घोषणा भी करदी गई और गुरुदेव श्री भी 'भिणाय' की ओर प्रस्थित हुए। भिणाय का श्रावक-संघ दीक्षा-महोत्सव की जोरदार तैयारियों में जुट गया। एक दिन स्वामी श्री जोरावरमलजी ने गुरुदेव श्री से कहा—"कहीं तिंवरी वाले सज्जन यहाँ भी विघ्न उपस्थित करने का प्रयत्न न करें।"

निर्भीक और दृढ़ स्वर में गुरुदेव ने आशंका निर्मूल करते हुए कहा—"आप निश्चिंत रहिए। इस शुभ कार्य में कोई भी शक्ति बाधा उपस्थित नहीं कर पायेगी। सब कार्य निर्विघ्न सानन्द संपन्न होगा।"

इसी प्रसंग पर क्षेत्रीय सब पुलिस इन्सपेक्टर गुरुदेव श्री के दर्शन करने आगये। वार्तालाप के प्रसंग में गुरुदेव ने कहा—"हमारे स्वामीजी को आशंका है, कहीं सज्जन लोग खीर में मूसल न पटक दें।" (उनका इशारा तिंवरी के लोगों की तरफ था)।

इन्सपेक्टर साहब ने हँसते हुए कहा—"आप क्यों चिंता करते हैं, आपके भगत हम किसलिए हैं? पहले कोई भी सूचना मेरे पास आयेगी, मैं सब समझ लूंगा।"

इन्हीं दिनों अजमेर राज्य एवं उसके निकटवर्ती राज्यों में डाकू मोडसिंहजी की डकैतियाँ चालू थीं। आज यहाँ, कल वहाँ—यों प्रतिदिन उनकी डकैती के समाचार सुने जाते थे और जनता एक भय एवं आतंक से सिहर उठती। भिणाय-संघ के प्रमुख व्यक्तियों ने भी इस समस्या पर विचार किया। दीक्षा महोत्सव पर सैकड़ों हजारों दर्शनार्थी आयेंगे। उनमें पुरुष भी होंगे महिलाएँ भी होंगी। महिलाओं के शरीर पर आभूषण, जेवर आदि रहते ही हैं। डाकू मोडसिंहजी यदि इस सुनहले अवसर पर हाथ साफ करने आ गये तो समाज की लाखों की सम्पत्ति तो जायेगी सो जायेगी, किन्तु दूर-दूर तक बदनामी भी हो जायेगी। श्री संघ के अतिथि-बंधुओं पर डकैती होना श्री संघ के सिर पर एक कलंक का टीका होगा? इस समस्या पर श्रावक संघ ने गंभीरता से सोचा। सुरक्षा-प्रबंध के लिए पुलिस इन्सपेक्टर साहब का सहयोग तो मांगा ही साथ ही अपनी ओर से भी दस-पन्द्रह अच्छे राजपूत सरदारों की व्यवस्था करली। पूरी

स्थिति पर श्रावक संघ नजर रखे हुए था और हर तरह से सावधानी वरती जा रही थी।

मोडसिंहजी को भी इस महोत्सव की पूरी सूचना मिल गई थी। उनके साथियों के मुँह में पानी भी छूट आया—चलो एक ही साथ इस बार वर्षभर का काम हो जायेगा। मोडसिंहजी ने जब यह सुना कि मेरे आतंक से भयभीत होकर वहाँ के जैन-संघ ने १०-१५ राजपूत सरदारों को लाठियाँ देकर तैनात किया है तो उन्हें बड़ी हँसी आई। वे गुरुदेव श्री पन्नालालजी महाराज के भक्त थे, और इस प्रसंग पर अपनी गुरु-भक्ति का प्रदर्शन करना चाहते थे, पर अपने मन की यह वात गुरुदेव तक कैसे पहुँचाये ? आखिर अचानक अवसर आ ही गया।

मोडसिंहजी उस दिन एकलसिंगा के जंगलों में अपने साथियों के साथ बैठे दीक्षा महोत्सव की चर्चा कर रहे थे कि वहीं से जाते भिणाय के मार्ग पर एक बनिया दिखाई दिया। मोडसिंहजी स्वयं उठे, हाथ में बंदूक, मूंछें तनी हुई रौबीला चेहरा। बनिये के सामने आकर जैसे ही गर्ज कर पूछा—"तुम कौन हो ?" तो बस बनिया की घिग्घी बंध गई। उसके होश उड़ गये, गला सूखने लगा। दो क्षण कुछ बोला नहीं गया। देखते ही रहे, मोडसिंह ने फिर जरा धीमी आवाज में कहा—"डरो मत ! बताओ तुम कौन हो ?"

"मैं एकलसिंगा का रहने वाला महाजन हूँ। मुझे मोड़ूलाल पोखरणा कहते हैं, पर मेरे पास कुछ नहीं है। मुझे मारना मत !"

डाकू मोडसिंह—"तुमने सच्चा-सच्चा नाम बता दिया इसलिए हम तुम्हें कुछ नहीं कहेंगे, डरो मत ! मेरा नाम डाकू मोडसिंह है………।"

पोखरणाजी का कलेजा तो धक्-धक् करने लगा। भय के मारे उनके हाथ-पैर काँपने लग गये। जिस मोडसिंह के नाम से मिलट्री कांपती है, बड़े-बड़े पुलिस अधिकारी जिसका सामना करने में हिचकिचाते हैं वह डाकू मोडसिंह बन्दूक लिए सामने खड़ा है, महाकाल की तरह………पोखरणाजी दो मिनट तक कुछ बोल नहीं पाये, देख भी नही पाये।

डाकू ने पूछा—"बताओ, कहाँ—भिणाय जा रहे हो ?"

"हाँ, हाँ हुजूर !" पोखरणाजी ने कहा।

"महाजन हो तो पन्नालालजी महाराज को भी जानते होगे ?"—मोडसिंह ने पूछा।

पोखरणाजी—"हाँ ! वे तो हमारे गुरुजी हैं। उन्हीं के दर्शन करने भिणाय जा रहा हूँ।"

मोडसिंहजी पोखरणाजी के कुछ पास आ गये और कंधे पर हाथ रख कर बोले—"देखो, वे मेरे भी गुरु हैं। उनको मेरी एक वात कह दोगे ? वहाँ दीक्षा होने वाली है, वहुत-से यात्री आयेंगे। सुना है यात्रियों की रक्षा के लिए दस-पंद्रह कांदे खाने वालों को

इकट्ठा कर लिया है, महाराज को कह देना इन बनियों का धन क्यों पानी में बहा रहे हो? मोडसिंह इन कक्कडधजों से कभी डरने वाला नहीं है। मैं चाहूँ तो इनको चुटकियों में उड़ा दूं, किंतु महाराज को मैं गुरु मानता हूँ, इसलिए कोई भय नहीं खाये, मुझे ऐसा कुछ काम नहीं करना है, जिससे किसी को तकलीफ हो। आप सब निर्भय रहें, सुख की नींद सोयें और यह भी कह देना कि दीक्षा के एक दिन पहले, दीक्षा के दिन और दीक्षा के दूसरे दिन—यों तीन दिन भिणाय और उसके आस-पास कहीं भी कोई घटना नहीं होगी। होगी तो मोडसिंह जिम्मेदार है। इसलिए सब लोग बेफिक्र होकर दीक्षा महोत्सव का काम करें। मौका लगा तो दीक्षा के दिन मैं स्वयं समारोह में उपस्थित होऊँगा।"

यह कहकर मोडसिंहजी ने पोखरणाजी की ओर देखा, उनका भय अब उत्सुकता में बदल गया था। वे हाथ उठाकर मुजरा कर ही रहे थे कि मोडसिंहजी अपने साथियों के साथ जा मिले और क्षणभर में कहीं गायब!

पोखरणाजी ने अब संतोष की सांस ली। दो मिनट रुककर विश्राम लिया, पसीना पोंछा और फिर नया उत्साह और उमंग लेकर भिणाय की तरफ रवाना हो गये। उनके मन में आज बड़ी गौरवानुभूति जग रही थी कि एक बनिया डाकूमोडसिंह से दो बातें कर आया भिणाय पहुँच कर गुरुदेव की सेवा में उन्होंने मोडसिंहजी का संवाद सुनाया। सभी का मन आश्वस्त हो गया।

मोडसिंहजी के विषय में यह आम धारणा थी कि वह जबान का धनी है। जो बात मुँह से कह देता है वह पत्थर की लकीर है। लोभ के वश होकर आज तक उसने कभी थूक कर नहीं चाटा। गुरुदेव श्री मोडसिंहजी के इस संदेश पर भी चकित रहकर सोच रहे थे कि दीक्षा समारोह के दिन वे स्वयं यहाँ कैसे उपस्थित होंगे। उसी प्रसंग पर तो पुलिस इन्स्पेक्टर एवं जनरल मैनेजर कोर्ट ऑफ वार्डस आदि उच्च राज्याधिकारी उपस्थित होंगे। इन लोगों को उनकी तलाश है तो कैसे वे सबकी आँखों में काजल फिराकर उपस्थित रहेंगे।

वैशाख शुक्ला दशमी का दिन आया। दीक्षा महोत्सव का जुलूस प्रारम्भ हुआ। आस-पास के क्षेत्रों से आये हजारों नर-नारियों का विशाल जन-समूह राण दरवाजे के बाहर रामदेवजी के मंदिर के पास एकत्र हुआ। वहीं वटवृक्ष के नीचे गुरुदेव श्री विराजे। अहिंसा और मुनिधर्म पर गुरुदेव का ओजस्वी प्रवचन हुआ। उनका हृदय-स्पर्शी प्रवचन सुनने पुलिस के अनेक उच्च अधिकारी तथा लगभग पाँच हजार का जन-समूह उपस्थित था। धारा-प्रवाह प्रवचन चल-ही रहा था कि अचानक एक सिपाही बेतहाशा दौड़ता हुआ सभा-मंडप में सबसे आगे बैठे पुलिस इन्स्पेक्टर के पास पहुँचा। डरे-डरे उसने कहा—अभी-अभी डाकू मोडसिंह और उसके साथी तीन ऊँटों पर बैठे पुलिस स्टेशन के सामने से होकर निकल गये हैं।

इन्स्पेक्टर साहब व्यग्र हो उठे। सभा छोड़कर वे सीधे पुलिस स्टेशन की ओर चल पड़े। सभा में एक बार खलबली मच गई, लोगों ने सुना कि डाकू मोडसिंह दीक्षा देखने

आया था और यहीं से उठकर वह सबकी आँखों के सामने से निकल गया। पुलिस ने दूर-दूर तक तलाश की, पर मोडसिंह उनके हाथों नहीं लगा।

दीक्षा-समारोह निर्विघ्न सोल्लास संपन्न हो गया। सर्वत्र गुरुदेव श्री के अद्भुत प्रभाव की जय-जयकार हो रही थी। लोगों को पता चल गया था कि मोडसिंहजी ने तीन दिन तक सब यात्रियों को अभय कर दिया है तो वे धर्म के और धर्म-गुरु के पुण्य-प्रताप की महिमा गाने लगे।

वैशाख शुक्ला ११ को प्रायः सभी यात्री अपने-अपने स्थानों को चले गये। उसी दिन ब्यावर से एक बारात आई थी जो बांदनवाडा होकर बैलगाड़ियों से राताकोट जारही थी। मार्ग में डाकू मोडसिंहजी के दल ने बारात को घेर लिया। बराती भय-भीत हो गये, अपने जेवर इधर-उधर छुपाने लगे और मन-ही-मन ईश्वर को याद करने लगे। तभी एक बराती को कुछ सूझा और वह उच्च स्वर से बोला—हमें क्या पता था कि मोडसिंहजी भी अपनी जबान बदलना सीख गये हैं। हमने तो सुना था कि मोड-सिंहजी ने वचन दिया है कि दीक्षा में आने-जाने वालों को तीन दिन तक हम कुछ भी नहीं कहेंगे, और अब हम लोगों को आज घेर लिया ? यह तो विश्वासघात की बात होगई। हम नहीं जानते थे कि गुरुदेव के दर्शन कर दीक्षा में जाकर भी हम यों लुट जायेंगे ?

मोडसिंहजी ने यह तानाकशी सुनी तो उनका खून गर्मा गया। अपनी जबान का उन्हें बड़ा गौरव था। वे आगे आये और बोले—"भले आदमी, क्यों झूठ बोल रहे हो कि हम महाराज के दर्शन करने आये, दीक्षा-महोत्सव में आये ! सामने तो दुल्हा (वींद) बैठा है और कहते हो कि दीक्षा देखने आये। मोडसिंह की आँखों में भी धूल झौंक रहे हो ? मैं देख रहा हूँ कि तुम लोग दर्शनार्थी नहीं, किंतु तुमने झूठ-मूठ ही मेरे गुरु जी का नाम ले लिया है तो जाओ, मैं तुम्हें छोड़ देता हूँ। निर्भय होकर चले जाओ, कोई तुम्हें हाथ नहीं लगायेगा।

मोडसिंहजी के साथी और बराती भी यह देखकर दंग रह गये कि एक डाकू कहे जाने वाला व्यक्ति भी गुरु-भक्ति के नाम पर हाथ चढ़ी सोने की मुर्गी को भी यों छोड़ रहा है, लाखों का लालच छोड़ दिया उसने एक गुरु-भक्ति की टेक पर ! वचन की आन पर !

गुरुदेव के अद्भुत वचनातिशय और प्रभावशीलता का यह साक्षात् चमत्कार आज भी लोगों की स्मृति को गुदगुदा रहा है कि एक डकैती का जघन्य अपराध करने वाला व्यक्ति भी उनके प्रति इतनी उत्कट श्रद्धा रखता था कि लाखों का माल हाथ-चढ़ने पर भी उसे छुआ तक नहीं। गुरु के नाम पर श्रीमंतों को अभय दे दिया। यह गुरुदेव श्री के प्रति भक्ति का एक आदर्श उदाहरण है, उनके मानवीय सद्भाव का जन-जन पर छाया हुआ प्रभाव स्पष्ट सूचित होता है।

यहाँ हमें यह भी स्मरण रखना है कि आपके ही प्रयत्न व उपदेश से मोडसिंहजी ने कुछ समय बाद डाका डालना छोड़कर शांतिमय जीवन बिताना प्रारम्भ कर दिया था। और इस परिवर्तन का प्रभाव धीरे-धीरे राजस्थान के अन्य नामी डकैतों पर भी पड़ा। मोडसिंहजी के ही पुत्र प्रसिद्ध डाकू लक्ष्मणसिंहजी ने वि० सं० १९९९ के गोविन्दगढ़ चातुर्मास में गुरुदेव श्री के दर्शन किये, उपदेश सुने और उन उपदेशों का डाकू के मन पर ऐसा जादुई असर हुआ कि बस एक क्षण में जीवन ही बदल गया। गुरुदेव के चरणों में बैठकर ही उन्होंने भविष्य में डाका न डालने की प्रतिज्ञा ली और एक सद्-गृहस्थ व सभ्य नागरिक का शांतिपूर्ण जीवन बिताने लगे। यह सब सत्संग का चमत्कार देखकर सहज ही मुँह से निकल जाता है—

सत्संगतिः कथय किं न करोति पंसाम् ?

डाकू की गुरुभक्ति और गुरु का उनके प्रति अनुग्रह वास्तव में ही व्यक्ति, समाज और देश के लिए एक वरदान के रूप में व्यक्त हुआ।

९
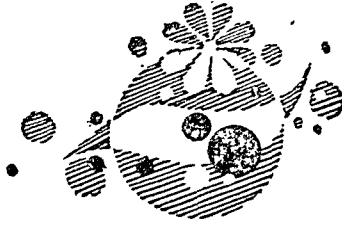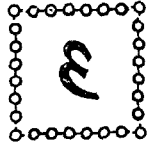
अभय के देवता

□

भगवान महावीर अभय के परम मंत्रदाता थे। उनका उद्घोष था—अभय के बिना अहिंसा अधूरी है। अभय के बिना साधना लंगड़ी है। गृह-त्याग कर प्रव्रजित होते समय उन्होंने यही वज्र संकल्प लिया था—"मेरे साधना-काल में देव, मनुष्य एवं तिर्यंच सम्बन्धी जो भी उपसर्ग आयेंगे, मैं उन्हें परम साहस एवं अटल धैर्य के साथ सहन करूँगा। विकट से विकट संकट में भी मन को निर्भीक और निश्चल बनाये रहूँगा।" घटनाएँ साक्षी हैं कि भगवान महावीर को साधना-काल में दैत्यों के दारुण उपसर्ग, कलेजा कंपाने वाले भय, पशुओं के प्राणांतक उपद्रव और मनुष्यों की घोर ताड़ना-यातनाएँ उन्हें सहनी पड़ी, पर वे कभी विचलित नहीं हुए। सदा 'अभय' बने रहे। अभय बनकर भय को जीता ही नहीं, जगत के भय को भी समाप्त करने का प्रयत्न किया। साधना सिद्धि के बाद अपने प्रवचनों में बार-बार उन्होंने यही कहा—

न भाइयव्वं, भीतं खु भया अइंति लहुयं।

कभी भी भयभीत नहीं होना चाहिए। भयभीत मनुष्य के पास शीघ्र ही भय आ जाते हैं। एक भय दूसरे भय को बुलाता है, मनुष्य की आत्मा को खाने लगता है, और धीरे-धीरे भय मनुष्य का सर्वनाश कर डालता है। इसलिए साधना में सबसे पहली शर्त है—अभय बनो! भगवान महावीर का यही घोष था—तुम स्वयं अभय बनो और अपने आत्मबल-आत्म तेज के द्वारा दूसरों को भी अभय करो। **'अभयंकरे'** यही श्रमण का सार्थक विशेषण है। उसे यही संदेश दिया गया है—**अभय दाया भवाहि य'** स्वयं अभय रहकर दूसरों को अभय दान देने वाले बनो।

गुरुदेव श्री पन्नालालजी महाराज का जीवन वृत्त पढ़ने पर यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि वे अभय के साक्षात् देवता थे। भय की भावना कभी उनके मन में नहीं जगी। किसी भी परिस्थिति में, किसी भी संकट में, और तो क्या भयंकर सिंह की दहाड़ और

क्रूर दैत्यों के अट्टहास में भी वे स्वयं तो निर्भय रहे ही, दूसरों को भी निर्भय बना दिया। उपद्रव ग्रस्त पामर मनुष्यों को भी उन्होंने आत्म-बल प्रदान कर 'अभय' कर दिया। उनके जीवन की कुछ घटनाएँ इस प्रकार हैं।

सिंह ने चरण स्पर्श किया

वि० सं० १९८२ के चैत्र का महीना था, शुक्ल पक्ष! महावीर जयन्ती का समय निकट आ रहा था। गुरुदेव श्री धूलचन्द्रजी महाराज की अनुमति प्राप्त कर गुरुवर्य श्री पन्नालालजी महाराज, मुनि श्री देवीलालजी को साथ लेकर भिणाय से भीलवाड़ा की ओर विहार कर रहे थे। मार्ग में आप बनेड़ा में रुके। बनेड़ा नरेश श्री अमरसिंहजी गुरुदेव के परम भक्त थे।[1] जब भी उन्हें गुरुदेव के आगमन का पता चलता सेवा में उपस्थित होते, प्रवचन सुनते और गुरुदक्षिणा के रूप में कुछ न कुछ त्याग प्रत्याख्यान की भेंट भी चढ़ाते। गुरुदेव के आगमन पर श्री अमरसिंहजी ने एवं स्थानीय श्रावक समाज ने विराजने के लिए अत्यधिक आग्रह किया, पर गुरुवर्य को आगे जाना था। 'चरैवेति चरैवेति' के मंत्र गायक को विश्राम कहाँ? रुकना कहाँ?

एक दिन अचानक ही गुरुदेव ने बनेड़ा से सायंकाल लगभग ५ बजे विहार कर आगे कदम बढ़ा दिए। बनेड़ा से करीब १½ मील पर भीलवाड़ा-सांगानेर मार्ग पर ही राजा जी का बाग था। आपने रात्रि विश्राम वहीं करने का निश्चय किया। बागवान से ठहरने के स्थान के विषय में पूछा गया तो उसने बताया—कोठी पर ताला लगा है और चाबी किले में ही है। बागवान भी बेचारा घबरा गया—संतों को इस जंगल में रात भर कहाँ ठहराये! उसकी घबराहट देखकर गुरुदेव ने कहा—हम रात को किसी वृक्ष के नीचे या दरवाजे में छत के नीचे ही ठहर जायेंगे। हमारी चिन्ता मत करो! हम सर पर कफन बाँध कर चलने वाले हैं। हम—

सुसाणे सुन्नागारे वा रुक्खमूले व एगओ

कभी श्मशान में, कभी शून्यागार में तो कभी वृक्ष के नीचे ही बैठकर अपना ध्यान चिन्तन करने लग जाते हैं। बस आप आज्ञा दे दें ठहरने की—

बागवान ने हाथ जोड़कर कहा—गुरुदेव! यहाँ रात को सिंह आता है। इसलिए बाहर ठहरना तो ठीक नहीं है, हम लोग मकान की छत पर सोते हैं, आप भी रात्रि में छत पर ही ठहर जाइए।"

गुरुदेव—जैन साधु रात को खुले आकाश के नीचे नहीं ठहर सकते। कुछ-न-कुछ छाया चाहिए, चाहे वह वृक्ष की हो, छप्पर की हो। इसलिए आप हमें यहीं नीचे दरवाजे में ही ठहरने की अनुमति दे दीजिए। रही बात रात में सिंह आने की, तो इसकी हमें कोई चिन्ता नहीं, कोई भय नहीं। हम अहिंसक हैं, प्राणिमात्र के प्रति मैत्री-भाव रखते हैं। किसी भी प्राणी को कष्ट नहीं देते, सताते नहीं तो सिंह हमें क्यों

---

१ वर्तमान में भीलवाड़ा क्षेत्र के संसद सदस्य श्री हेमेन्द्रसिंहजी आप ही के पौत्र हैं।

सतायेगा ? आचार्यों ने "**अहिंसा प्रतिष्ठायां तत् सान्निधौ वैरत्यागः**" कहा है तो इसका कुछ रहस्य होगा, आज इसी का अनुभव कर लेंगे।"

बागवान गुरुदेव की अभय और साहस भरी बातें सुनकर स्तब्ध रह गया। फिर भी उसने कहा—महाराज ! आपका कहना तो ठीक है, पर वह क्रूर जानवर है, उसे क्या पता आप अहिंसक हैं, साधु हैं। जो भी उसकी चपेट में आ जाता है उसी को अपना भोजन बना लेता है। अतः आप जहाँ मन हो भले ही ठहरें, पर हमारा कहना तो यही है कि रात को छत पर सो जाइये।"

गुरुदेव ने उसे समझाया—तुम्हारा डर भी ठीक है, पर अब इतनी संध्या हो गई है कि हम आगे किसी गाँव में भी नहीं जा सकते और न खुली छत पर सो सकते हैं। अब तो जो भी होगा देखा जायेगा, रात भर इसी दरवाजे में ही ठहरना चाहते हैं। और बागवान की स्वीकृति पाकर आप दोनों मुनिवर अपने प्रतिक्रमण आदि में संलग्न हो गये। ध्यान आदि साधना करते हुए आनन्द पूर्वक रात्रि व्यतीत हो रही थी।

पिछली रात्रि के करीब तीन बजे होंगे। आप हमेशा की भाँति जगकर जप एवं स्वाध्याय में लीन हो गये। उसी समय एक विकराल सिंह जंगली झाड़ियों से निकल कर धीरे-धीरे चलता हुआ बाग के दरवाजे में घुसा। जहाँ आप बैठे थे वहीं आ गया। कुछ देर खड़ा-खड़ा आपकी ओर देखता रहा, आप भी शांति और निर्भयता के साथ मौन भाव से वनराज का आगमन देख रहे थे। वनराज को शांतिपूर्वक खड़ा देखकर आपने उच्च एवं मधुर स्वर में पुकारा—"**अभयदाया भवाहि य**"[१] इस अभय मंत्र का बार-बार उच्चारण करते देखकर पता नहीं, वनराज के मन पर क्या जादुई प्रभाव पड़ा, दो-चार क्षण इधर-उधर झांककर आपके चरणं अंगुष्ठ की तरफ मुंह किया, गंध ली और जैसे उसे किसी मित्र व उपकारी की गंध मिली हो। प्रणाम-मुद्रा में सिर झुकाकर वापस शांतिपूर्वक लौट गया। बाग में आगे गया, किन्तु गुरुदेव के 'अभयदान' की शिक्षा पर आचरण करता हुआ-सा भक्ष्य लिये बिना ही वापस जंगल की ओर बढ़ गया।

गुरुदेव ने अपने साथी मुनिश्री देवीलालजी को पुकार कर पूछा—देवीलालजी यह कौन था ?

देवीलालजी ने अनजाने भाव से ही कहा—कोई गीदड़ (शृगाल) आदि होगा।

सिंह को शृगाल कहलाना कब बर्दाश्त हो सकता है। जैसे इसी का उत्तर देते हुए कुछ कदम आगे जाकर उसने खूब जोर की दहाड़ लगाई। सिंह-गर्जना सुनकर आस-पास की पहाड़ियाँ, झाड़ियां और दीवारें भी कांप कर प्रतिध्वनि करने लग गई। आपने तत्काल मुनिजी को टोक कर कहा—देखा, वनराज को शृगाल कहने का परिणाम ! अब कभी सिंह को शृगाल मत कह देना।"

---

१. उत्तराध्ययन १८।११

सिंह की दहाड सुनते ही बागवान आदि कर्मचारियों में खलबली मच गई। उन्होंने ऊपर से ही गुरुदेव को आवाज लगाकर कहा—महाराज ! सिंह आ गया है। आप ऊपर पधार जाइये ! नहीं तो वह नुकसान कर जायेगा।

गुरुदेव ने उन्हें सान्त्वना देते हुए फरमाया—घबराओ नहीं ! वनराज आगया और चला भी गया। तुम निश्चिंत रहो, किसी भी जीव को कोई कष्ट नहीं दिया।

प्रातः बागवान आदि चपरासी नीचे आये। गुरुदेव से सब घटना सुनी। बाग में भी आज सब जानवर सुरक्षित थे। बागवान ने बड़े आश्चर्य के साथ कहा—गुरुदेव ! आज यह पहला अवसर है, जब सिंह आया और किसी जीव को कष्ट दिये बिना यों ही चला गया। हमेशा ही वह अपना भक्ष्य लेने आता है और एकाध पशु का काम-तमाम करके ही जाता है। पर आज तो साक्षात् आपका तपस्तेज ही था कि सब जीव सुरक्षित रहे। हिंस्र सिंह ने भी आपका चरणस्पर्श कर हिंसा छोड़ दी।"

सूर्योदय होने पर गुरुदेव श्री बाग से आगे भीलवाड़ा की ओर प्रस्थान कर गये।

मन में मैत्रीभाव है तो सांप क्या करेगा ?

सांप सबसे क्रूर प्राणी होता है। जरा-सा स्पर्श होते ही वह डंस लेता है। यह सज्जन है या दुर्जन, इस बात को सांप नहीं देखता। परन्तु मुनि श्री पन्नालालजी महाराज सांप से भी नहीं डरते थे। इस सम्बन्ध में आपकी निर्भीकता की कई बार परीक्षा भी हुई। और हर बार आप परीक्षा में खरे उतरे।

विक्रम सं० १९८० का आपका चातुर्मास भीलवाड़ा था। चौमासे में एक बार सेठ ज्ञानचन्दजी नागौरी ने आपकी निर्भीकता व अविचलता की परीक्षा करने की दृष्टि से कुतूहलवश पांच फीट लंबे एक काले भुजंग को अपने साथ थैले में छिपा कर स्थानक में ले आये और आप जिस पट्टे पर विराजमान थे, उसके पास चुपके से छोड़ दिया। उसके बाद वे स्वाभाविक रूप से आपके साथ ज्ञान-चर्चा में लग गये। सर्पराज अपने स्वभावानुसार पट्टे के सहारे रखे हुए रजोहरण पर होता हुआ पट्टे पर चढ़ गया ! तभी नागौरीजी ने सहसा हल्ला मचाया—गुरुदेव ! सर्प सर्प !! परन्तु आपने मुस्कराते हुए अविचल-भाव से उत्तर दिया—"नागौरीजी ! घबराओ मत ! मैं इसे नहीं डराता तो यह मेरा कुछ भी नुकसान नहीं करेगा। यह भी पंचेन्द्रिय जीव है। यहाँ आया है तो प्रभु-वाणी का रसास्वादन करेगा।" और इतने में वह सर्प गुरुदेव के शरीर पर चढ़ गया। इस पर नागौरीजी ने कहा—"यह काट खायेगा, गुरुदेव !" आपने फरमाया—"क्यों बेचारे सर्प को बदनाम करते हो ? यह तो इस समय आपके द्वारा मंत्र-कीलित है। यदि मंत्रकीलित न हो तो भी हमारा इसके साथ मैत्रीभाव हैं, तब हमें क्यों काट खाएगा ? सर्प भी प्रायः उसी को काटता है, जो या तो इसे डराता है या इसके साथ छेड़खानी करता है, इस पर द्वेष-वश प्रहार करता है। मेरे मन में इसके प्रति कोई

द्वेष-भाव या छेड़ने का भाव नहीं है, और न मैं इसे डराता हूँ। तब इस सर्पराज से डरने की मुझे क्या आवश्यकता है ?"

आपकी निर्भीकता एवं निश्चलता जानकर सेठ नागौरीजी[1] बहुत ही प्रभावित हुए और आपके चरणों में नतमस्तक होकर कहा—"गुरुदेव ! मुझे क्षमा करें ! आपकी निर्भीकता की परीक्षा करने के लिए ही मैंने ऐसा किया था। आप इस परीक्षा में पूर्ण उत्तीर्ण हुए हैं। धन्य है आपके धैर्य एवं साहस को !" सर्पराज भी मानो आपको नमस्कार करता हुआ धीरे-धीरे वहाँ से चला गया।

भूत को प्रतिबोध

गुरुदेव श्री की अभयवृत्ति के परिचायक अनेक संस्मरण सुनने को मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि उन्होंने भय को सर्वथा जीत लिया था। भगवान महावीर जिस प्रकार साधना-काल में भयभैरव स्थानों पर जाकर साधना की ज्योति प्रज्ज्वलित करते थे और दुर्दमनीय दैत्यों को प्रबोध देकर उनका उद्धार करते थे, उसी पथ का अनुसरण मुनिश्री ने कई बार किया। भय के स्थान 'भूतहा' घरों में जाकर मुनिश्री ठहरे, भूतों के उपद्रव भी हुये पर उन झंझावातों में भी अविचल रहकर भी भूत का हृदय बदला, जनता का आतंक दूर किया।

घटना वि० सं० १९९१ की है। बैशाख का महीना। सूर्य की प्रचंड किरणों के ताप से धरती तवे की भाँति तप रही थी। लू की भीषण ज्वालाओं से भू-खंड जल रहा था। उस प्रचंड गर्मी में गुरुदेव श्री नसीराबाद पधारे। नसीराबाद में ठहरने के लिए कोई अनुकूल स्थान प्राप्त नहीं हुआ। जो स्थान मिला, वह इतना बन्द था कि ठंडी हवा क्या, गर्म हवा का एक झोंका भी वहाँ नहीं लगता था। दिन भर की धूप व गर्म लू से दीवारें लाल हो रही थीं और मकान भड़भूंजे की भट्टी की तरह तपने लगा था। दिन तो किसी तरह बिताया भी जा सकता था, पर रात बिताना तो दुःसंभव था। बाहर खुले में सोना या बैठना भी जैन साधु का कल्प नहीं। गुरुदेव श्री ने श्रावकों को संकेत किया कि रात्रिवास के लिए कोई दूसरा अनुकूल स्थान मिल सके तो ठीक रहे। सभी ने प्रयत्न किया पर 'रेवड़ी का नाम गुलप्सपा' सफलता हाथ न लगी। सभी को चिन्ता थी। इस अत्यन्त कष्टदायी स्थान पर गुरुदेव श्री रात्रिवास कैसे कर पायेंगे। जहाँ न हवा और न प्रकाश। तभी एक भाई ने गुरुदेव से कहा—महाराज ! मकान तो एक मैं बता दूं। लेकिन ठहरने की हिम्मत चाहिए।"

गुरुदेव ने मधुर हास्य के साथ कहा—हिम्मत-किम्मत तो फिर देखेंगे, तुम मकान तो बताओ।" वह सज्जन गुरुदेव को अपने साथ ले गया। एक लम्बा-चौड़ा मकान था। बिल्कुल खाली, हवादार, लेकिन भयावना ! वर्षों से शायद किसी मनुष्य

---

१ यह घटना सेठ शोभालालजी नागौरी से जो सेठ श्री ज्ञानचन्द्रजी नागौरी के पौत्र हैं और जो उस समय उनके साथ में थे—ज्ञात हुई।
—सम्पादक

का पाँव भी नहीं रखा गया होगा। मिट्टी की तहें जमी थीं। सज्जन ने बताया—यह मकान है ताराचन्दजी अग्रवाल का। इसे भूतहा मकान कहते हैं, आपकी हिम्मत हो तो देख लो।"

गुरुदेव ने मकान देखा, वैसे साधु-जीवन के अनुकूल निर्दोष व ध्यान आदि करने के लिए ठीक था। आपने कहा—'ठीक है, मकान हमें पसन्द है। इसका स्वामी आज्ञा दे तो हम यहाँ ठहर सकते हैं।'

गुरुदेव मकान देखकर जैसे ही वापस लौटे तो अनेकों श्रावक घबराये हुए से आये और बोले—"महाराज! आप कहाँ पधार रहे हैं? वह भूतों का मकान है। रात में वहाँ रहना मृत्यु का आलिंगन करना है। वर्षों से सूना पड़ा है। भूत के भय से दिन में भी वहाँ झाड़ू लगाने वाला नहीं घुसता। आप रात में कैसे ठहरेंगे?" लोगों ने कई दिल-दहलाने वाली घटनाएँ सुनाईं और भूत का आतंक-उपद्रव बता कर वहाँ न जाने की सलाह दी।

गुरुदेव ने कहा—"वह मरा भूत है, हम महावीर के जिन्दे दूत है। अगर हम मुर्दा भूतों से भय खायेंगे तो बस हो गयी साधना! महावीर की सन्तान अगर वीर भी नहीं होगी तो फिर यह धर्म चल नहीं सकेगा। फिर जिसके मन में भय होता है उसे ही भूत अपना शिकार बनाते हैं। **"भीतो भूएहिं घिप्पइ"** निर्भीक को भूत कुछ नहीं कहता। यदि भूत कुछ उपद्रव करेगा तो हम साधुओं का क्या बिगाड़ेगा? जीये तो लाख के, मरे तो सवा लाख के।" साधु तो—

मौत सिरहाने लेयकर चले हसंत-हसंत।

"साधु होकर मरने से डरे वह कैसा साधु?" गुरुदेव की इस साहस भरी कथनी का प्रतिरोध कौन करता? सायंकाल अपने वस्त्र-पात्र आदि उपकरण लेकर गुरुदेव उस भूतहा मकान में पधार गये। मकान मालिक श्री अग्रवाल ने भी डरते-डरते आज्ञा दे दी। मकान में जाने तक कुछ श्रावक भी साथ थे पर रात होते-होते वे भी खिसकने लगे। गुरुदेव ने उनको आश्वस्त किया—भोले बंधुओ! हमारे पास मंत्राधिराज महामंत्र नवकार जैसा मंत्र है, जो सब मंगलों में उत्कृष्ट मंगल है, तो किसी अमंगल की कल्पना ही आप क्यों करते हैं? उसके दिव्य प्रभाव से उपद्रव भी शांत हो जाता है। अमंगल भी मंगल बन जाते हैं तो फिर भूत का भय क्यों खा रहे हैं? आप लोग निश्चिंत रहें और दृढ़ता-पूर्वक यह दिखादें कि—

देवा वि तं नमंसंति जस्स धम्मे सया मणो

जिसका मन धर्म में अनुरक्त है, उसके चरणों में देवता भी नतमस्तक होते हैं।

गुरुदेव के साहस भरे वचनों से श्रावकों को कुछ धीरज बंधा। फिर भी सामायिक-प्रतिक्रमण आदि करके अंधेरा गहराते तक वे लोग भी चले गये। अब उस भूतहा-मकान में थे—गुरुदेव, साथी मुनि श्री [illegible] महाराज, वैरागी पृथ्वीराजजी और

पंडित विशम्भरदत्तजी शास्त्री। रात का प्रथम प्रहर बीता। गुरुदेव ने ध्यान स्वाध्याय आदि करके अपना बिछौना लगाया और शांति के साथ शयन किया। आप ही के पास वैरागी एवं पंडितजी ने भी बिस्तर लगा लिए।

रात का दूसरा पहर भी शांति के साथ करीब-करीव बीत गया। लगभग बारह वजने को थे कि एक पत्थर आया और छप्पर के टीन पर धड़ाम से गिरा। उसकी जोरदार आवाज सुनकर सभी जग गये। पास-पड़ोस के मकान वाले भी जाग गये। इतने ही में सनसनाता एक दूसरा पत्थर आया और वैरागी के सिर के पास गिरा। तभी तीसरा पत्थर आया और गुरुदेव के पाट के पास आकर टकराया। अब तो जैसे ओलों की वर्षा होती है, वैसे ही सनसनाते पत्थर बरसने लगे। टीन के चद्दरों पर, आंगन में पत्थरों की धड़ाधड़ आवाज से सभी पड़ोस वाले, मुहल्ले वाले जग गये और अपनी छतों से गुरुदेव को पुकारने लगे—महाराज ! सावधान रहिये ! किसी ने कहा—महाराज ! बाहर आ जाइये नहीं तो अनर्थ हो जाएगा। जितने मुँह उतनी ही बात। पूरा मोहल्ला इस पत्थर वर्षा को कलेजा थामे देख रहा था और गुरुदेव के अति साहस को कोस रहा था।

इस विकट परिस्थिति में वैरागी, पंडितजी और साथी मुनि भी घबराये बिना कैसे रहते ! गुरुदेव ने उन्हें अपने पास में बिठाया और उदात्त स्वर से शास्त्र-पाठ बोलकर पुकारा—हे पत्थर बर्षाने वाले बंधु ! तुम्हारे पत्थरों से हमारा कुछ भी अनिष्ट होने वाला नहीं है, लेकिन याद रखो, इससे तुम्हारा ही बुरा होगा। हमने तुम्हारा कभी बुरा नहीं किया, तुम हमसे क्यों द्वेष करते हो। त्यागी साधुओं पर ये पत्थर वर्षाकर तुम अपने लिए बहुत ही अनिष्ट कर रहे हो ! हम जैन-साधु हैं, महावीर की संतान हैं, कच्चे-पच्चे छोकरे नहीं जो तुमसे डर कर भाग जायें। हम प्राणों का उत्सर्ग करने को भी तैयार हैं लेकिन डरेंगे नहीं, भगेंगे नहीं। तुम अपना हित चाहते हो तो तुरंत यह उत्पात बंद कर दो और द्वेष-भाव दूर कर शांति धारण करो। ॐ शांति ! ॐ शांति ! तुम्हें सद्बुद्धि प्राप्त हो।"

गुरुदेव की यह पुकार पास-पड़ौस के लोगों ने सुनी तो वे सोचने लगे—महाराज डर कर चिल्ला रहे हैं। पर उनकी इस घोषणा का वड़ा ही चमत्कारी असर हुआ। दूसरे क्षण पत्थर आने वन्द हो गये और मुहल्ले भर के लोग चकित रह गए। अभी एक क्षण पहले जहाँ दनादन पत्थर वरस रहे थे। आंगन और छत जहाँ पत्थरों से पट गयी वहाँ एक-ही आवाज पर सव उत्पात बंद ! एक दम शांति !

गुरुदेव श्री की तपस्या, साधना और अमोघवाणी का चमत्कार देखकर सभी लोग मकान के वाहर एकत्र हो गए। गुरुदेव ने उन्हें सांत्वना दी "आप लोग अव निर्भय रहिये। आज से आपका यह कष्ट दूर हो गया। यहाँ का भूत सदा-सदा के लिए भाग गया है।"

प्रातःकाल हुआ। श्रावक-गण अनेक आशंकाएँ और अमंगल कल्पनाएँ लिए भारी हृदय से उस ओर आये। मुहल्ले वालों से जब रात्रि की घटना सुनी तो सब की नसों में जैसे नया खून दौड़ गया। चेहरे पर उल्लास और प्रसन्नता की लहरें उमड़ने लगीं। श्रावक-गण गुरुदेव श्री के तपस्तेज की यशोगाथा गाते हुए सेवा में उपस्थित हुए। मुहल्ले के ही नहीं, किंतु नसीराबाद के सैकड़ों जैन जैनेतर जैसे-जैसे रात्रि की घटना सुनते गये, दौड़-दौड़ कर गुरुदेव के चरणों में उपस्थित होने लगे। उस सुनसान भूतहा मकान में मेला-सा लग गया। भक्ति-भाव के साथ सभी लोग गुरुदेव की स्तुति करने लगे। मकान मालिक ताराचन्दजी अग्रवाल भी दौड़कर आये, उन्होंने विनती की—गुरुदेव ! आपके अपूर्व तपोबल का ही यह चमत्कार है कि हमारा सुनसान मकान आज आबाद हो गया और भूतों का भयंकर उपद्रव भी शांत हो गया। कृपा कर अब आप कुछ दिन यहीं विराजें ताकि हम सबको आपके पावन सत्संग का लाभ प्राप्त हो। श्रावकों ने तथा नगर के सभी वर्णों के सैकड़ों भावुक लोगों ने गुरुदेव से वहाँ विराजने का बड़ा आग्रह किया। यद्यपि गुरुदेव उसी दिन वहाँ से विहार करना चाहते थे किंतु जनता की अत्यधिक भावभीनी भक्ति का आग्रह उन्हें वहीं रोके रहा।

गुरुदेव श्री ने जनता को सम्बोधित करके कहा—बन्धुओ ! यह उपद्रव शांत होने में आप मेरा प्रभाव कुछ भी न समझें, यह तो सब धर्म का प्रभाव है। महामंत्र नवकार का चमत्कार है। हम तो उसी की आराधना करते हैं, उसी शक्ति से हमें साहस और आत्म-बल प्राप्त होता है। यह बात निश्चित है कि भूत-प्रेत कमजोर और कायर मनुष्यों को ही बाधा उपस्थित करते हैं, जो साहसी एवं दृढ़-संकल्पी होते हैं उनके पथ की बाधाएँ भी अनुकूल हो जाती हैं। कवि ने कहा है—

राही, साहस से बढ़ता जा !
पथ की शूल फूल बनेगी
बाधाएँ अनुकूल बनेगी,
उफनाती गहराती नदियाँ
शांत सरित का कूल बनेगी
खड़ी सफलता देख शिखर पर
धीरज धर कर तू चढ़ता जा।
राही ! साहस से बढ़ता जा !

तो जीवन में सफलता के शिखर पर चढ़ने के लिए साहस, अभयवृत्ति और आत्म-विश्वास की आवश्यकता है।

गुरुदेव श्री के उद्बोधक वचनों ने उपस्थित जनता के आत्म-विश्वास को जगा दिया, उसकी धर्म-श्रद्धा को और सुदृढ़ बना दिया।

इस प्रकार 'भय-भैरव' स्थान पर पहुँच कर भी अभय के देवता गुरुवर्य ने सर्वत्र अभय की दुंदुभि बजा दी।

प्रेत बाधा एवं मांगलिक

गुरुदेव श्री के जीवन के साहस, धैर्य और अभय-व्रत की चर्चा करने पर उनके जीवन की ऐसी अनेक चमत्कारी घटनाएँ आँखों के सामने नाचने लग जाती हैं। जहाँ भी उन्होंने जनता को भयत्रस्त देखा वहाँ अपने उद्दाम आत्म-विश्वास के द्वारा उसकी भय-बाधा दूर की। उनका यह विश्वास था कि भूत-प्रेत की बाधाएँ अधिकतर उन्हीं व्यक्तियों को पीड़ित करती है जिनका मनोबल कमजोर होता है और जो धर्म में दृढ़ श्रद्धा-सम्पन्न नहीं होते। सुदृढ़ धर्मश्रद्धा मनुष्य को सभी भयों पर विजय प्रदान करती है। एक उदाहरण और देखिए—

वि० सं० २००५ में गुरुदेव श्री ने मसूदा में चातुर्मास किया। वहाँ पर रिखबचंदजी डोसी को कुछ प्रेत बाधा चल रही थी। शांति के लिए अनेक प्रयत्न किये। यंत्र-मंत्र-तंत्र सभी पापड़ बेले पर सफलता नहीं मिली। प्रेत-बाधा के कारण काफी परेशान रहते थे। स्वयं तथा सम्बन्धी जन भी निराश हो गये कि अब यह उपद्रव जान-लेकर ही मिटेगा। एक दिन उनके किसी सम्बन्धी ने गुरुदेव श्री से निवेदन किया—"महाराज ! आपके श्रावक बिचारे बहुत कष्ट पा रहे हैं, आप जैसे तपोधनी और अभयमूर्ति गुरु यहाँ विराजमान होते हुए भी यदि उनका कष्ट दूर नहीं हुआ तो घर आई गंगा में भी बिना नहाये हम अभागे रह जायेंगे। आप कोई शांति-पाठ या मांगलिक सुनाइए।"

एक दिन प्रातःकाल गुरुदेव डोसीजी से घर पर पधारे। उस समय प्रेत-बाधा का भयंकर उत्पात हो रहा था। जैसे ही आपने द्वार में प्रवेश किया, उपद्रव कुछ शांत हुआ, पर भीतर ही भीतर डोसीजी को भयंकर कष्ट अनुभव हो रहा था। आप श्री ने उसे सम्बोधित कर मांगलिक पाठ सुनाया तो कुछ शांति अनुभव होने लगी ! मांगलिक के साथ आपने कुछ आगम गाथाएँ पढ़ीं। प्रेतबाधा अपने आप शांत हो गई। आपने ललकार के शब्दों में कहा—'बस, अब कभी किसी को कष्ट नहीं पहुँचाना ! ॐ शांति !

आज भी देखने सुनने वाले लोग कहते हैं कि उस दिन के—उस घड़ी के बाद उन्हें कभी प्रेत बाधा नहीं हुई। वे पूर्ण शांति और सुख के साथ जीवन बिताने लगे।

पाठक यह न समझें कि गुरुदेव कोई भूत-बाधा दूर करने वाले वैतालिक या तांत्रिक व्यक्ति थे। उनका कहना था कि उनके पास कोई भी मंत्र नहीं है, मंत्र है तो सिर्फ—'नवकार मंत्र'। जनता जो कुछ चमत्कार देखती है वह और कुछ नहीं सिर्फ-उनकी आत्मशक्ति और दृढ़ संकल्प शक्ति का चमत्कार है। नवकार के प्रति दृढ़ श्रद्धा, अद्भुत साहस और मनोबल में ही वह चमत्कार है कि सिंह आकर शृगाल की भांति चरण स्पर्श कर जाते हैं, भूत-प्रेत अनुचर की भांति उनकी आज्ञा स्वीकार कर जनता का उत्पीड़न बंद कर देते हैं। शताब्दी बाद शायद ये संस्मरण किंवदन्ती भी मान लिये जाय, पर आज प्रत्यक्ष द्रष्टा इस सत्य घटना को कैसे झुठला सकते हैं। निश्चित ही ये अभयमूर्ति गुरुदेव की अजेय इच्छा शक्ति और मानसिक बल की फलश्रुतियाँ थीं।

अहिंसा के अग्रदूत

अहिंसा साधकों की जननी है। वह अपने उपासक पुत्र को निर्भय, प्रभावशाली और वज्रमय वना देती है। अहिंसा के पथ पर चलने वाले साधक की वाणी में ओज पैदा हो जाता है, उसके विचारों में अभूतपूर्व वल आ जाता है, उसके व्यक्तित्व का प्रभाव दूर-दूर तक फैल जाता है। क्रूर से क्रूर व्यक्ति भी अहिंसक के सामने नम्र हो जाता है। अहिंसा के कोमल स्पर्श को पाकर सिंह सर्प, क्रूर व्यक्ति आदि सभी उसके अपने वन जाते हैं। अहिंसा का उपासक कायर नहीं होता तो वह क्रूर भी नहीं होता। वह निर्भय और निःशंक होकर क्रूर और हिंसक व्यक्ति को प्रभावित कर देता है, उस पर इतना दवाव डाल देता है कि उसे वरवस संभावित हिंसा को छोड़ना ही पड़ता है। किन्तु अहिंसा का वह देवता जब देखता है कि किसी हिंसा परायण व्यक्ति पर इतना दवाव पड़ रहा है कि वह और उसके परिवार का जीवन खतरे में पड़ने जा रहा है, तब वह मानवता की सीमा लांघती हुई उस अहिंसा को आन्तरिक हिंसा की ओर जाने से रोक देता है। यानी अहिंसा में कठोरता होती है, पर वह होती है अपने लिये, और कोमलता भी होती है, पर वह होती है दूसरों के लिए।

गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज का सारा जीवन अहिंसा के उदात्त संस्कारों में पला था। वे किसी भी प्राणी के प्राण संकट में पड़े देखकर अहिंसा के महामंत्र से उसकी प्राण रक्षा के लिए तत्पर हो जाते थे, परन्तु साथ ही सरकारी कानूनों के शिकंजों में फंसाकर जव वे यह देखते थे कि उनके अहिंसा के प्रभाव के कारण हिंसा करने वाले व्यक्ति अथवा उसके परिवार को घोर संकट में डाला जा रहा है तो वे इसे सहन नहीं कर सकते थे।

बात संवत् १९८३ के वर्षावास की है। गुरुदेव श्री पन्नालाल जी अपने गुरुदेव श्री धूलचन्द जी महाराज के साथ गुलावपुरा में वर्षावास बिता रहे थे। इस वर्षावास

में समाजहित के अनेक कार्य सम्पन्न हुए थे। प्रतिदिन जनप्रवाह बरसाती नदी की तरह उल्लासपूर्वक धार्मिक क्रियाएँ करने, गुरु दर्शन करने एवं प्रवचन-श्रवण करने के लिए उमड़ता था। ऐसे ही प्रसंग में, एक दिन दोपहर मध्याह्नवेला में जैनस्थानक के द्वार पर आप विराजमान थे। आपके ठीक सामने ही विजयनगर के सुप्रसिद्ध वैद्य महादेवजी उपाध्याय बैठे हुए थे। तत्त्वचर्चा हो रही थी। अकस्मात् वैद्य जी ने गुरुदेव श्री का ध्यान खींचा—"गुरुदेव ! देखिये, नजदीक में ही रेल्वे लाइन से होकर एक व्यक्ति वध करने के लिए एक बकरा लिये जा रहा है।" सुनते ही गुरुदेव सहसा चौंके और करुणार्द्र होकर बोल उठे—"वैद्यजी ! क्या कहा ? बकरा लिये जा रहा है, मारने के लिए और आप ब्राह्मण होकर चुपचाप बैठे हैं ? आपको तो पता लगते ही यथाशीघ्र इसे बचाने का प्रयत्न करना चाहिए था। मनुष्य का जीवन दूसरे प्राणियों की रक्षा, दया और कष्ट-निवारण के लिये है। इसीलिए तो मनुष्य को समस्त प्राणियों में शिरोमणि, सर्वोपरि कहा है। सर्वोपरि होने के नाते उसकी जिम्मेवारी है कि वह प्राणों की वाजी लगाकर भी अपने से हीन या छोटे प्राणियों को बचाए।"

आपकी वाणी का उपस्थित श्रोताओं पर जादू-सा असर हुआ। आपने श्रावकों को भी इस मूक जीव की रक्षा करने की प्रेरणा दी। आपकी प्रभाव शाली प्रेरणा पाकर वैद्यजी और भक्तगण तत्काल उस बकरे को बचाने के प्रयत्न में जुट पड़े। सभी लोग रेल्वे लाइन के पास से जाती हुई सड़क पर घटनास्थल पर पहुँच गए। वहाँ जाने पर मालूम हुआ कि बकरे को ले जाने वाला खारी नदी तट पर स्थित जलप्रदायसंयत्र का संचालक है। और वह इस समय रेल्वे की सीमा में चल रहा है। ऐसी स्थिति में उससे बकरा छुड़ाना आसान नहीं है। अत: उसे रेल्वे की सीमा से मेवाड़राज्य की सीमा में किसी तरह ले आया जाय तो फिर उस पर हमारा वस चल सकता है। फिर भी गुरुदेव के द्वारा प्रोत्साहित भक्तजन हताश नहीं हुए। उन्होंने मेवाड़ राज्य की गोरखा पुलिस की टुकड़ी लाने का प्रयत्न किया। उधर कुछ नागरिक वकरा ले जाने वाले उक्त मुसलमान को समझा-बुझाकर गोरखा पुलिस का दस्ता पहुँचने से पहले ही बकरे सहित मेवाड़ राज्य की सीमा में ले आये। अब क्या था ! नियमानुसार अब वह मेवाड़ राज्य का अपराधी बन चुका था। अत: गोरखा पुलिस की टुकड़ी उक्त मुसलमान का पीछा करती हुई वहाँ आ पहुँची। पुलिस आरक्षी को देखते ही उक्त मुसलमान घबराने लगा। वह कहने लगा—'भाई ! मुझे वचाओ। मेरा अब क्या होगा ? उपस्थित श्रावकवर्ग ने उसे संकट में पड़े देख कर आश्वासन दिया—"मियांजी, घवराओ मत ! तुम अगर इस वकरे को बचाओगे, तो तुम्हें भी संरक्षण मिलेगा। लोगों ने पुलिस-आरक्षी को भी सारी परिस्थिति से अवगत किया। अत: उसने भी उसे सान्त्वना दी। फिर भी उसकी घबराहट कम नहीं हुई। जैन श्रावक लोग उसे गुरुदेव श्री के चरणों में लाए। वस्तुस्थिति यह थी कि वकरे का वध कराने में कई संभ्रान्त व्यक्तियों व मुसलमानों का उसे सहयोग था। वे उक्त मुसलमान भाई के गिरफ्तार किये जाने की आशंका से घबरा उठे और येन-केन-प्रकारेण उसे छुड़ाने

के लिए दौड़-धूप करने लगे। जब उन्हें पता लगा कि उक्त मुसलमान भाई को लोगों ने जैन साधु के सामने पेश कर दिया है तो वे सब एकत्रित होकर गुरुदेव के पास पहुँचे और कहने लगे —"महाराज ! यह बेचारा गरीब आदमी है। अगर इसकी गिरफ्तारी हो गई और इसे सरकार की ओर से सजा मिली तो इसके पीछे इसका सारा परिवार चौपट हो जायगा। घर में कमाने वाला यही अकेला है। घर में बुढ़िया माता है, कई नन्हें-नन्हें बच्चे हैं, इसकी स्त्री है। वे सब संकट में पड़ जायेंगे। इन सबका जीवन-निर्वाह दूभर हो जायगा।"

गुरुदेव श्री को सारी स्थिति समझते देर न लगी ! गुरुदेव विचार-मन्थन में पड़ गये। वे सोचने लगे—एक ओर तो मैं इस मुसलमान भाई से बकरे की रक्षा कराना चाहता हूँ, दूसरी ओर बकरे की हिंसा छोड़ने वाला यह और इसका सारा परिवार प्राण-संकट में पड़ जाएगा। मेरी अहिंसा क्या इतनी कठोर होकर मानवता की सीमा तोड़ सकती है कि वह हिंसक व्यक्ति द्वारा पशुहिंसा छोड़ देने पर भी उस पर इतना दबाव डाले कि परिवार सहित उस पर प्राणों का संकट आ जाय। एक पशु को अभयदान दिलाकर क्या वह एक मनुष्य को प्राणभीति में डाल दे ? मेरा मुख्य ध्येय तो प्राणिमात्र को अभय बनाने का है। एक को भय से छुड़ा कर दूसरे को भय में डालना मेरा अहिंसामंत्र उचित नहीं समझता।"

इस मनोमन्थन के बाद आपने आगन्तुक मुसलमान भाइयों से कहा—"भाइयो ! जैसे आप इस भाई को सपरिवार प्राणसंकट में पड़ने की आशंका से दुःखी हैं, वैसे ही अन्य प्राणियों के प्राण खतरे में डालते हुए भी दुःखी हों; इसी में आप सबका और इन प्राणियों का हित है, सुख भी अपने और अपनों के प्राणों को बचाने की तरह सभी प्राणियों को बचाने में है। अतः आज से आप सब लोग खुदा की साक्षी से जिंदगी भर के लिए यह कसम खाएँ कि आइन्दा आप गुलाबपुरा राज्य की सीमा में किसी भी प्राणी का वध नहीं करेंगे।[1]"

गुरुदेव की युक्तिपूर्ण बातों से आगन्तुक मुसलमान भाई निरुत्तर और हतप्रभ होकर क्षणभर विचार में पड़ गये। फिर उन सबने हाथ जोड़ कर यह मंजूर किया कि भविष्य में हम किसी भी प्रकार से किसी भी प्राणी का वध गुलाबपुरा की सीमा में नहीं करेंगे।"

इससे गुरुदेव के मन में और इस प्राणिवध त्याग के लिए प्रयत्न करने वाले सब लोगों में हर्ष की लहर छा गई। सबके अन्तर्हृदय से यही स्वर फूट पड़ा—"अहिंसक राजाओं के राज्य में सर्वत्र इस प्रकार की हिंसात्याग की प्रतिज्ञा ले लें तो कितना अच्छा हो ! अहिंसा देवी की सर्वत्र जय-जयकार होने लगे और उसके फलस्वरूप सर्वत्र सुखचैन की बांसुरी बजने लगे।"

---

१ जब तक महाराणा साहब का शासन गुलाबपुरा में रहा, तब तक यह जीवहिंसा प्रतिबन्ध सुचारू रूप से जारी रहा।

—सम्पादक

अहिंसा का पूर्णव्रती केवल अपने जीवन में होने वाली हिंसा से ही विरत होने का प्रयत्न नहीं करता, अपितु अपने समक्ष दूसरों के द्वारा होती हुई हिंसा को भी रुकवाने का वह भरसक प्रयत्न करता है। इसी प्रकार जिन प्रवृत्तियों से भविष्य में हिंसा की परम्परा चलती हो, उन्हें भी बन्द करवाने का प्रयत्न करता है। हिंसा का समर्थन भी जिन-जिन प्रवृत्तियों से होता हो, उन्हें भी रोकने-रुकवाने की चेष्टा करता है। इस प्रकार का प्रयत्न केवल शरीर से या वाणी से ही नहीं, मन से भी रोकने-रुकवाने एवं समाज में अहिंसा का वातावरण बनाने का प्रयास करता है।

गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज अहिंसा के अग्रदूत थे। वे सदा-सर्वदा इस बात का ध्यान रखते थे कि हिंसा का जहाँ भी वातावरण हो, उसे मन, वचन, काया से शुद्ध करने-कराने का प्रयत्न किया जाय। एक दूसरा उदाहरण इस प्रकार है—

हिंसा-परिहार

वि. सं, १९७२ का चातुर्मास आपने पूज्य गुरुदेव श्री धूलचन्द जी महाराज के साथ मसूदा में किया। मसूदा से लगभग तीन मील की दूरी पर कोलपुरा (कुशलपुर) एक छोटा-सा ग्राम है। वहाँ के रावत जाति के भाई माता जी के नाम पर भैंसे की वलि चढ़ाया करते थे। कुछ श्रावकों ने आपसे इस बात की चर्चा की तो आपका परम कारुणिक मानस तुरन्त द्रवित हो उठा। अवसर पाकर आप सीधे कोलपुरा उन रावत भाइयों के वीच पहुँचे। रावत बन्धुओं ने जैन साधुओं को अपने बीच खड़ा देखकर आश्चर्य किया। पर आपने वड़ी निर्भीकता और आत्मीयता के साथ लोगों से वातचीत की। दया, करुणा और अहिंसा की महिमा के साथ-साथ माताजी के नाम पर भैंसे की बलि चढ़ाने का प्रश्न उन लोगों के सामने रखा। आपके उपदेश का वह जादुई प्रभाव पड़ा कि कुलपरम्परा से चली आ रही प्रथा को तिलांजलि दे दी। कानून और प्रलोभन से जो हिंसा बन्द नहीं हो पा रही थी, वह आपके उपदेशों से एक ही बार में वन्द हो गई।

एक हजार को जीवनदान

वि. सं. १९७६ की ग्रीष्म ऋतु में आप पूज्य गुरुदेव श्री धूलचन्द जी महाराज के साथ भिणाय में स्थित थे। एक दिन प्रातःकाल शौचनिवृत्ति से लौटते समय मार्ग में वकरों का एक विशाल झुण्ड देखा। आपने निकट आकर उनके रक्षकों से पूछा—यह झुण्ड कहाँ लिये जा रहे हो ?

रक्षक—महाराज ! ये एक हजार वकरे शाहपुरा नरेश के हैं, नसीरावाद छावनी में जा रहे हैं।

किसलिए ?—गुरुदेव ने पूछा।

यह तो आप जानते ही हैं। वहाँ के कसाइयों के हाथ ये विक जायेंगे और अँगरेज सेना की पाकशाला में……

एक हजार मूक प्राणियों का क्रूर वध ! मुनि श्री का करुणाशील हृदय काँप उठा। कहाँ वे एक चींटी की हिंसा से भी बचने का प्रयत्न करने में स्वयं अनेक पीड़ाएँ सह लेते हैं, और कहाँ यह क्रूर हत्याकाण्ड ! जहाँ जिह्वा की लोलुपता और शरीर की पुष्टि के लिए मूक पंचेन्द्रिय प्राणी के गले पर छुरी चलाई जा रही है। उन मूक पशुओं के आर्तनाद ने मुनि श्री के हृदय को उद्वेलित कर दिया। आपने रक्षकों को समझाया। इस महाहिंसा से बचने के लिए उपदेश दिया, पर वे तो बिचारे विवश थे। राजाजी का आदेश है। उन्हें तो कसाइयों को बकरे बेचकर उसकी रकम राजकोष में जमा करानी है। मारने और बचाने का उन्हें क्या अधिकार था।

मुनि श्री उद्विग्न हृदय लेकर सीधे स्थानक पहुँचे। श्रावकों को एकत्र किया और इन एक हजार मूक प्राणियों की रक्षा का प्रश्न सामने रखा। श्रावक समाज ने तुरन्त इस जीवहिंसा को रोकने का प्रयत्न किया। वधशाला की ओर ले जाते हुए उन मूक प्राणियों को जीवनदान देने के लिए श्रावक समाज ने कठोर प्रयत्न किया। पुलिस की सहायता लेकर बकरों को वहीं रुकवाया और मुनि श्री ने श्रावक समाज की ओर से एक उद्‌बोधन पत्र शाहपुरा नरेश को सम्बोधित कर लिखवाया, जिसमें मुख्य बात थी एक हिन्दू नरेश द्वारा एक हजार प्राणियों को कसाइयों के हाथ बेचना क्या शास्त्र सम्मत है ? जिनके पूर्वजों ने एक-एक प्राणी की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व होम दिया, उन यादव एवं रघुकुल के वंशज क्षत्रिय आज इस प्रकार तुच्छ लाभ के लिए दयाविहीन हो जाएँ—यह कैसी विचित्र बात है ?

भिणाय संघ के इस पत्र का शाहपुरा नरेश पर गहरा असर पड़ा। वे कुछ लज्जित से भी हुए। उनकी अन्तर भावना बदल गई। तब भिणाय संघ ने उन एक हजार बकरों को अपनी ओर से अमरशाला में भेज देने का प्रस्ताव रखा और राजाजी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। मृत्यु के मुख में जाते हुए उन मूक पशुओं को जीवनदान देकर जब छोड़ा गया तो उनकी आत्मा कितनी प्रसन्न हुई होगी और उस करुणावतार सत्पुरुष को मन-ही-मन शत-शत वन्दन किये बिना नहीं रही होगी।

एक दिन आप शौचक्रिया के लिए जा रहे थे। प्रातःकाल का समय था। ज्यों ही आप पानी के नाले पर बने हुए पुल (एनीकट) पर से गुजरे, आपने वहाँ के पुलिस के थानेदार को जलजन्तुओं का शिकार करते हुए देखा। आपने फौरन थानेदार के पास जाकर उसे सम्बोधित करते हुए कहा—"थानेदार जी! आप पुलिस थानेदार हैं! पुलिस तो कानूनरक्षा के लिए सरकार द्वारा तैनात की जाती है। उसका कर्तव्य होता है—जनता से कानून पलवाना; उसमें भी आप तो पुलिस-अधिकारी हैं, आपको स्वयं तो कानून का पालन करना ही चाहिए। मगर आप स्वयं कानून तोड़ रहे हैं। इस दृष्टि से भी कि यहाँ किसी भी जीव के वध की जो निषेधाज्ञा जारी है, उसका पालन आपको करना चाहिए। दूसरे, मानव और उसमें भी अधिकारी पुरुष होने के नाते भी आपको अपनी स्वादपूर्ति अथवा प्राणधारण के लिए दूसरे जानवरों का वध करना किसी भी प्रकार योग्य नहीं है। जब खाने-पीने के लिए इतने-इतने शाकाहारी साधन हैं, तब इन निर्दोष मूक पशुओं की गर्दन पर प्रहार करना और इस शिकार से अपनी आजीविका चलाना या अपना पेट भरना बिलकुल नाजायज है, अन्याययुक्त है। आप दूसरों के लिए इन्साफ करते हैं तो अपने लिए भी इन्साफ करिए।"

गुरुदेव की अहिंसागर्भित वाणी का थानेदार पर अचूक असर हुआ। वह अपने सामने एक महात्मा को खड़े देख सहसा सहम गया। अपनी झेंप मिटाने के लिए थानेदार ने पहले तो दूसरे तर्क प्रस्तुत किए, लेकिन गुरुदेव श्री की अकाट्य युक्तियों के आगे तर्क के तरकश छिन्न-भिन्न हो गए। थानेदार जी ने विनम्र होकर अपनी गलती स्वीकार की और जब गुरुदेव ने उसे प्रण लेने को कहा तो उसने सदा के लिए शिकार न खेलने का नियम ले लिया।

हमारे चरितनायकजी इतना ही करके नहीं बैठ गए, अपितु उन्होंने दूरदर्शिता पूर्वक सोचा—आज तो हमारे कहने से थानेदार श्री ने शिकार करने का त्याग कर दिया, लेकिन भविष्य में और कोई उच्च अधिकारी जल जन्तुओं का शिकार करने को ललचा सकता है। बेचारी जनता उस उच्च अधिकारी के सामने भीगी बिल्ली बनकर चुपचाप इस अन्याय को सह लेगी, वह जरा भी विरोध नहीं कर सकेगी। अतः सदा के लिए और सभी के लिए जलाशय आदि सार्वजनिक स्थलों पर हिंसा बंद कराने हेतु तत्कालीन मसूदा राव साहब से कहा—"रावसाहब! मेरी एक तुच्छ मांग है, क्या आप मुझे थोड़ी-सी भिक्षा देंगे?"

मसूदा राव—"गुरुदेव! फरमाइए न क्या आज्ञा है? जो भी यथोचित भिक्षा आप चाहेंगे, वह अवश्य दी जाएगी।"

चरितनायक जी—"मैं यही चाहता हूँ कि जलाशय आदि सार्वजनिक स्थानों पर किसी भी जीव की हिंसा न हो।"

मसूदाराव—"ऐसी निषेधाज्ञा तो मैंने पहले से ही जारी कर रखी है, गुरुदेव! और कोई आज्ञा हो तो फरमाइए।"

चरितनायक—"हिंसानिषेधाज्ञा का आपने कानून तो बना दिया होगा, लेकिन कानून तो कानूनकायदों की पोथियों में लिखा है न ! आम आदमी को क्या पता कि कौन-सा कानून किस अपराध को रोकने के लिए बना हुआ है, उसका भंग करने के अपराध में वह दण्डित किया जा सकता है। अतः आप द्वारा उन-उन जलाशय आदि सार्वजनिक स्थलों पर सरकारी निषेधाज्ञा का पट्टा लगा होना चाहिए ताकि प्रत्येक आदमी उसे पढ़कर या सुनकर उस कानून को और उसके भंग के दण्ड को भी जान-समझ सके।"

मसूदाराव साहब ने आपकी बात को स्वीकार करते हुए कहा—"हाँ, आपकी बात यथार्थ है कि उक्त कानून का पालन अनभिज्ञ जनता से कराने के लिए निषेधाज्ञा पट्ट लगाना अनिवार्य है। मैं आज ही आपके इस उपदेश का पालन करूंगा और जगह-जगह जीव-वध के खिलाफ निषेधाज्ञापट्ट लगवा दूँगा।"

आपके प्रभाव से मसूदाराव साहब ने मसूदा-ठिकाने (रियासत) के सभी जलाशय आदि सार्वजनिक स्थानों पर जीवहिंसा न करने का पट्टा लगवाने की व्यवस्था कर दी।

यह था अहिंसा के पालन करने के साथ कराने का एवं तदनुकूल अहिंसानुमोदक वातावरण बनाने का आप का अद्भुत प्रयत्न !

अहिंसा के सम्बन्ध में सूक्ष्म-भ्रांतियां और उनका निवारण

अक्सर लोग प्रत्यक्ष होने वाली हिंसा को ही हिंसा समझते हैं, परोक्ष में चाहे उससे भी भयंकर हिंसा हुई हो, वे यही मानते हैं कि यह हिंसा हमने नहीं की है, इसलिए इस हिंसा का पाप हमें क्यों लगेगा ? यह भ्रान्ति वर्षों से समाज में घर किये हुए थी। इस मान्यता के फलस्वरूप बहुत से परोक्ष हिंसाकाण्ड फैले। जैसे कई लोग यह मानते हैं कि हमें तो रेशमी कपड़ा सीधा बना बनाया मिलता है। इसके बनाने में शहतूत के कीड़ों को उबाल कर उनकी हिंसा होती है, वह हमने (प्रत्यक्ष) नहीं की है। इसलिए इसके पहनने में हमें हिंसा क्यों लगेगी ? हलवाई के यहाँ अविवेक के कारण अनेक जीव मिठाई बनाने में मर जाते हैं, पर वहाँ बनी हुई मिठाई सीधे लाने में पाप ही क्या है, जबकि घर पर विवेकपूर्वक मिठाई बनाने में प्रत्यक्ष हिंसा है, तज्जन्य पाप है। इस प्रकार की भ्रान्त मान्यताएं हिंसा के बारे में प्रचलित थीं। परन्तु प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी महाराज हमेशा दीर्घदर्शी रहे, उन्होंने इस पर शास्त्रीय दृष्टि से गहराई से विचार किया और निश्चित किया कि रेशमी वस्त्रों में जो असंख्य त्रस जीवों की हिंसा होती है, वह उस वस्त्र के पहनने वाले को भी अवश्य लगती है। वह यों कहकर छूट नहीं सकता कि मैंने तो हिंसा (प्रत्यक्ष में) की ही नहीं है। इस कारण रेशमी वस्त्र, अल्पारम्भी श्रावक के लिए पहिनने योग्य नहीं है। यह बात उन्हें भलीभांति हृदयंगम हो गई।

चरितनायकजी ने संवत् १९९२ के भीलवाड़ा चातुर्मास में अपने प्रवचनों में स्पष्ट उद्घोषणा की—"रेशमी वस्त्र के निर्माण में असंख्य त्रस जीवों का संहार होता

है। और इस भयंकर हिंसा के पाप से रेशमी वस्त्र पहिनने वाला बच नहीं सकता। अत: रेशमी वस्त्र अल्पारम्भी श्रमणोपासक के लिए कतई पहिनने लायक नहीं हैं। जिन्हें मेरे वचनों पर विश्वास है, प्रवचनों पर श्रद्धा है, वे यह नियम लें कि हम आज से रेशमी वस्त्र का कतई उपयोग नहीं करेंगे।"

आपके अन्तर की गहराई से निकली हुई एवं अनुभूति की आंच में तपी हुई वाणी का श्रोताजनों पर अचूक प्रभाव पड़ा। तत्काल ही बहुत-से भाई बहनों ने आपसे रेशमी वस्त्रों का उपयोग न करने की प्रतिज्ञा ली।

यह थी अहिंसा के अग्रदूत मान्यवर प्रवर्तक मुनी श्री पन्नालाल जी महाराज के द्वारा अहिंसा-पालन की दूरदर्शिता-पूर्ण प्रेरणा ! अहिंसा की इस अपूर्व प्रेरणा ने जनता के हृदयों को झकझोर दिया और उसने परोक्षहिंसा के त्याग का ऐसा समा बांध दिया कि आसपास के सारे इलाके में रेशमी वस्त्रों के त्याग की लहर फैल गई।
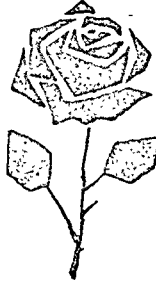
करुणा की पावन धारा

सत्पुरुषों की मन:स्थिति का वर्णन करने वाली एक सूक्ति बहुत प्रसिद्ध है—

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति ।।

लोकोत्तर पुरुषों के हृदय को कौन पहचान सकता है ? उनका अन्तःकरण वज्र से भी अधिक कठोर होता है तो फूलों से अधिक कोमल भी। कोमलता और कठोरता का, मोम और पत्थर का विचित्र संगम महापुरुष के लोकोत्तर स्वरूप की एक अभिव्यक्ति है। वह स्वयं के कष्टों में, स्वयं के जीवन में आने वाली विपत्तियों और वेदनाओं में वज्र-हृदय बनकर मुस्कराता रहता है—**'सहिओ दुक्खमत्ताए पुट्ठो नो झंझाए'**—चारों ओर से दुःखों से घिरा रहकर भी घबराता नहीं है, विचलित नहीं होता है। धैर्य की अग्नि में कष्टों के खर-पतवार को जलाकर भस्म कर देता है। मगर पराया दुःख देखकर शीघ्र ही द्रवित हो जाते हैं।

आगमों में करुणाशील साधक का नाम ही **'दविए'** द्रविक बताया है। दूसरे के दुख: से द्रवित होने वाला, दूसरों का कष्ट देखकर पसीजने वाला करुणावतार सत्पुरुष ही मोम-सा मुलायम होता है। वह चाहता है—

दर्द जिस दिल में हो उस दिल की दवा बन जाऊँ।
दुःख में हिलते हुए लब की दुआ बन जाऊँ ।।

त्याग कर मूक पशुओं की दया के लिए अनब्याहे ही वापस मुड़ गये। करुणा की यह अनन्त धारा भारतीय संत मानस में सदा-सदा से बहती आई है।

गुरुवर्य श्री पन्नालाल जी महाराज करुणा के साक्षात् देवता थे। पिछली घटनाओं में उनकी उत्कट सहिष्णुता और साहसिकता की एक झलक हम देख चुके हैं। किन्तु यह भी एक विचित्र संयोग है कि वे जितने बड़े वीर और कठोर (कष्टसहिष्णु) थे उससे भी अधिक पर-दुख कातर थे। उनकी अनन्त आत्मीय करुणा ने ही उन्हें समाज सुधार की ओर गतिशील बनाया, मृत्युभोज जैसी क्रूर कुप्रथाओं से प्रताडित हजारों अबलाओं के आँसुओं ने, और बलिवेदी पर तड़फड़ाकर प्राण त्यागते मूक-पशुओं की पुकार ने उन्हें अहिंसा और जीव दया के विविध पहलुओं पर सोचने को और कठोर कदम उठाने को विवश किया, जिसका वर्णन भी पाठक पढ़ चुके हैं। यहाँ पर उनकी सहस्रमुखी करुणाधारा का ही एक प्रवाह, एक स्रोत उमड़ता हुआ दिखाई देता है, जो यदुकुल दिवाकर भगवान नेमिनाथ की अनन्त स्रोतवाहिनी करुणा की स्मृति को सजीव करा देती है।

पुजारियों की हिंसावृत्ति में परिवर्तन

वि० सं० १९८४ में गुरुदेव श्री धूलचन्द्र जी महाराज के साथ आपने भीलवाड़ा चातुर्मास सम्पन्न किया। चातुर्मास के पश्चात् बनेड़ा, शाहपुरा आदि क्षेत्रों में विहार करते हुए आप धनोप पधारे। फागुन का महीना था। मीठी-मीठी सर्दी। सुहावना मौसम। खेतों में फसल लहलहा रही थी। कुओं के पानी से सींची जाने वाली भूमि दूर-दूर तक हरी सुनहरी साड़ी पहने हुए मस्ती में झूम रही थी।

धनोप से कुछ ही दूर सघन वृक्ष कुंजों के बीच 'माताजी' का प्रसिद्ध मन्दिर था, जहाँ पर दूर-दूर के हजारों भक्त अपनी मनोतियां पूरी करने आते हैं। वह वृक्ष निकुंज 'माताजी की बनी' के नाम से प्रसिद्ध है।

एक दिन प्रातःकाल के समय गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज शौच निवृत्ति हेतु माताजी की बनी की ओर चले गए। बनी के रेत के छोटे-छोटे टीले सोने की पहाड़ियों जैसे लगते थे। बीच-बीच में छोटी-छोटी पहाड़ी घाटियाँ भी थीं। उनके बीच आम, नीम आदि वृक्षों के कुंज बड़े ही मनभावने लग रहे थे। पक्षियों के चहचहाने के मधुर संगीत से सारी बनी गूंज रही थी। शीतल मंद पवन बह रहा था। टीलों की चोटियों पर चढ़कर देखने से आस-पास दूर-दूर तक छोटे-छोटे खेत, उनमें चलते कुँए; छोटे-छोटे गाँव सागर के बीच हरे-भरे टापुओं की तरह बड़े मनोहर दीख रहे थे। प्रकृति की इस सुरम्य स्थली में साधक के मन में ध्यानस्थ होकर साधना करने की प्रेरणा जगती थी। वातावरण में एक अजीब शान्ति और सुषमा का अनुभव होता था।

वृक्षों के झुर-मुट के बीच भोले-भाले हरिण तथा वन्य पशु पक्षी निर्भय हो मस्ती के साथ क्रीड़ा करते हुए बड़े भले लगते थे। उनकी मस्ती देखकर प्रतीत होता था कि वे इस क्षेत्र में बड़ी स्वतन्त्रता और निर्भयता के साथ विचरण कर रहे हैं। साधकों

पत्थर रक्त-रंजित सा हो रहा है। वे क्षणभर के लिए विचारों में गहरे डूब गये—अभयदात्री माता के मन्दिर में ठीक उसकी मूर्ति के सामने यह रक्त की धारा ! उन्होंने पुजारी से पूछा—"पुजारी जी ! यह पत्थर खून से कैसे सना है ?"

पुजारी—"महाराज ! यह तो भैरव का स्थान है। यहाँ पर भैंसों और बकरों की वलि चढ़ाई जाती है, उनका खून यहाँ गिरता है, इसी कारण पत्थर जरा लाल हो गया है...।"

गुरुदेव ने बड़े दुःख के साथ कहा—यह कैसी विडम्बना है ? कितनी विचित्र बात है ? एक ओर तो माता जी की वनी में पशु-पक्षियों को अभयदान मिला हुआ है, वृक्ष की हरी शाखा तक नहीं काटी जाती और दूसरी ओर उसी माता के मन्दिर में, उसी अभय की अधिष्ठात्री देवी के समक्ष भैंसों और बकरों के सिर काटे जाते हैं। मूक पशुओं की यह निर्मम बलि ! पुजारी जी ! आप इस नृशंस हत्याकाण्ड को बन्द क्यों नहीं करवा देते ?

पुजारी ने लापरवाही के साथ ही कहा—महाराज ! यह तो पीढ़ियों से चला आ रहा है। वलिप्रथा आज की नहीं, वर्षों से चली आ रही है। इसे बन्द करने का अर्थ है माताजी और भैंरोंजी को रुष्ट करना। यह हम से कैसे हो सकता है ?

गुरुदेव—पुजारी जी ! ऐसी तो कोई बात नहीं है कि जिसे मनुष्य चाहे और छोड़ न सके। खैर, यह बताइए कि आप यह बलि कैसे देते हैं ?

पुजारी—वलि चढ़ाने वाला वलि के पशु को मन्दिर के पास ले आता है। फिर पुजारी उस पर माता जी के चरणामृत का छींटा डालता है। और फिर एक झटके से उसका सिर काट कर इस पत्थर पर रखकर भैंरोंजी को चढ़ाता है। चरणामृत का छींटा देने वाले पुजारी को बकरे के दो पैसे और भैंसे के चार पैसे (एक आना) मिलता है।

पुजारी जी ! यदि वलि के पशु पर चरणामृत न छिड़का जाये तो क्या वह बलि वैध (पवित्र) नहीं मानी जाती ?—गुरुदेव ने पूछा।

पुजारी—नहीं !

गुरुदेव—तो आप चरणामृत छिड़कना वन्द क्यों नहीं कर देते ? ताकि बलि अपने आप बंद हो जाये।

पुजारी—हम ऐसा नहीं कर सकते ! माताजी का यही हुक्म है।
गुरुदेव—आप क्या ब्राह्मण हैं ?
पुजारी—हाँ, माताजी के सभी पुजारी ब्राह्मण ही होते हैं।
गुरुदेव—आप स्वयं अपने हाथ से पशु की वलि क्यों नहीं चढ़ाते ?
पुजारी—नहीं ! यह हमारा कर्त्तव्य नहीं है।

गुरुदेव—जिसे आप स्वयं अपना कर्त्तव्य नहीं मानते अर्थात् अकर्त्तव्य समझते हैं बंद करने में आपको क्या हानि है ?

गुरुदेव श्री की पैनी तर्कों से पुजारीजी चिढ़ गए और वोले—आपको हमारी इन वातों से क्या लेना-देना है ? हमें तो अपने पूर्वजों के आदेश पर चलना है, जैसा वे करते आये वैसा ही हमें करना है।

गुरुदेव ने देख लिया, ये लकीर के फकीर कोई भी ऐसा कार्य नहीं कर सकते जिससे इनके स्वार्थों की हानि होती हो। फिर स्वार्थ भी तो कितना तुच्छ ? प्रति वकरे के दो पैसे ? दो पैसे के लिए ये ब्राह्मण इतना क्रूर कर्म भी नहीं छोड़ सकते ? मनुष्य की स्वार्थान्ध-वृत्ति पर उन्हें वड़ी ग्लानि हुई। साथ ही उन्हें यह अनुभव हुआ कि पुरानी गलत परम्पराओं को तोड़ने के लिए साहस चाहिये। संघर्ष करने की हिम्मत और स्वार्थों का वलिदान देने की उमंग ही मनुष्य को क्रांति के पथ पर अग्रसर कर सकती है। कमजोर, स्वार्थी और मूर्ख व्यक्ति सदा लीक पर ही चलते हैं। कहा है—

लीक लीक तीनों चले कायर कुलच्छ कपूत।
लीक छांड़ि तीनों चले सायर सिंह सपूत।

गुरुदेव ने वहीं दृढ़संकल्प कर लिया—इस वलि-प्रथा को वंद करा कर ही चैन की सांस लूंगा। इस प्रकार पशु-हिंसा जन्य-व्यथा एवं उसे वंद कराने के उच्च संकल्प की उमंग एक साथ हृदय को करुण एवं वीर रस से आप्लावित करने लगी।

गुरुदेव वनस्थली से लौट कर वापस वनोप के उपाश्रय में आ पहुँचे। उन्हें प्रवचन करना था—और आज प्रवचन का विषय भी उनके मस्तिष्क में एक नया जोश पैदा कर रहा था। सभा-स्थल पर पहुँच कर उन्होंने सर्वप्रथम आज का ताजा प्रसंग छेड़ा। अहिंसा की महिमा वता कर देवी-देवता के नाम पर होने वाली हिंसा और वलि-प्रथा को वंद करने के लिए उन्होंने जनता को जगाया।

मुनिश्री के ओजस्वी प्रवचन से जनमत जाग उठा। वलि-प्रथा वंद करने के लिए सभी ने संकल्प किया। नगर के प्रमुख प्रभावशाली व्यक्ति एकत्र हुए और सभी ने मुनिश्री के चरणों में वैठकर यह संकल्प दुहराया—"हम माताजी के नाम पर होने वाली पशु-वलि सर्वथा वंद कर देंगे।"

पुजारीजी को वुलाया गया, उन्हें दया और करुणा की वात समझाई, मानवता की वुद्धि भी जगाने का प्रयत्न हुआ, पर जैसे उनका दिल तो पत्थर का था। उनका एक ही स्वर था—"वलि वंद कर देने से जगदम्वा माता रुष्ट हो जायेगी और आप सवका अनिष्ट कर देगी।"

समझदार जनता ने पुजारी की धमकी का वड़ा शालीन उत्तर दिया—"सच्ची माता कभी अपने पुत्रों पर रुष्ट नहीं होती और न अपनी संतान का ही अनिष्ट करती है, माताजी की दृष्टि में समस्त पशु-पक्षी उनकी संतान है, और माँ अपनी संतान का भोग कभी नहीं चाहती ! जगदम्वा अर्थात् समस्त जगत की अम्वा—माता—क्या कभी अपने पुत्रों का भक्ष लेगी ! नहीं ! नहीं ! यह सब तुम्हारा ढोंग है। पाखण्ड है। जगदम्वा के नाम पर तुम्हारा स्वार्थ है। इसे वन्द करो।"

जनता की भावना में रोष भी था और जोश भी तथा बलि बंद करने का तीव्र आग्रह ! किन्तु पुजारी फिर भी टस से मस नहीं हुआ। उसने अपनी हठ नहीं छोड़ी। इस कारण जनता ने रुष्ट होकर उसके हाथ लेन-देन आदि व्यवहार बंद करने की घोषणा की। गुरुदेव श्री को पुजारी के प्रति कुछ करुणा आई इसलिए उन्होंने ऐसा कठोर कदम न उठाने की सलाह दी। जनता ने बताया—हमने इनका बहिष्कार नहीं, किन्तु असहयोग किया है, जो कि शुद्ध अहिंसा का मार्ग है। पुजारी ने जादू-टोने और मूठ (मारक मंत्र) आदि का प्रयोग कर जनता को आतंकित करने का भय बताया, किन्तु गुरुदेव श्री ने इन अंध-विश्वास मूलक भयों से जनता को सर्वथा अभय बना दिया। वास्तव में जनमत तो धर्म के पक्ष में था और **"धर्मो रक्षति रक्षित:'** के अनुसार धर्म की रक्षा करने वाले स्वयं सुरक्षित थे।

जनता और पुजारियों के बीच कुछ तनाव का वातावरण चलता रहा। आखिर इस बात पर चिन्तन किया गया कि पुजारी, जो जन्मना अहिंसा-प्रेमी ब्राह्मण है, इस हिंसा-मूलक-प्रथा को क्यों पकड़े बैठा है ? वहाँ के एक प्रमुख श्रावक श्री भूरालालजी लोढा ने जो अधिकांश पुजारियों के बोहरा थे इस बात की खोजबीन शुरू की। वे एक दिन गुरुदेव के पास आये। बातचीत के प्रसंग में बताया—पुजारियों के मन में दो बातें हैं। प्रथम प्रत्येक बकरे की बलि के दो पैसे और भैंसे की बलि के एक आना पुजारियों को मिलता है, उन्हें प्रति दिन दो-चार आने मिल जाते हैं जिसका मूल्य पांच सेर गेहूँ के बराबर होता है। बलि बंद होने से यह हानि उन्हें उठानी पड़ेगी। दूसरी बात—बलिदान करने वाले राजा-महाराजा आदि नाराज भी होंगे और उनकी ओर से चढ़ावा जो मिलता है वह भी बंद हो जायेगा।

मानव-मन की दुर्बलता को पहचानने वाले गुरुदेव तत्काल इस चीज को जान-गए कि लोभ ही पाप का बाप है। पुजारी अपने लोभ के कारण ही इस प्रथा को चालू रखना चाहते हैं। उन्होंने पहले शाहपुरा के राजाजी से इस विषय में बात की। वे भी बलि बंद करने के लिए सहमत हो गए और इस बात के लिए भी तैयार हो गए कि पुजारी यदि बलि का पैसा लेना बंद कर देंगे तो उन्हें राज्य की ओर से प्रतिमास एक निश्चित रकम का मनीआर्डर नियमित मिलता रहेगा।

इस भूमिका के बाद गुरुदेव श्री ने पुजारियों को बुलाया। "बलि का पैसा हिंसा का—प्राणिवध का पैसा है। यह महा अनर्थ का कारण है" आदि विषयों पर गंभीरता के साथ उन्हें समझाया गया। पुजारियों ने जब प्रतिदिन होने वाली आय-हानि का जिक्र किया तो गुरुदेव ने शाहपुरा राजाजी का प्रस्ताव उनके समक्ष रख दिया। बस, 'नेकी और पूछ-पूछ' वाली बात हुई। पुजारी वर्ग स्वयं भी मन में इस क्रूर कर्म से खिन्न था और इस कसाई के पैसे से भी प्रसन्न नहीं था। किन्तु 'मुंह लगा खून छूटता नहीं' जैसी बात थी। अब गुरुदेव श्री का प्रस्ताव आने पर वे प्रसन्नतापूर्वक बलि बंद करने को प्रस्तुत हो गये। पुजारियों के सहर्ष निर्णय से नगर की जनता में तो खुशी की

पर चूंकि क्षत्रिय शासक जाति थी, और वह इसे धार्मिक कृत्य मानती थी। इसलिए इस प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाना भी एक गुनाह था और बलि का विरोध करने वाले को स्वयं की भी बलि देनी पड़ती, इसीलिए सामान्य रूप में अहिंसा के अनुयायी जैन-वैष्णव भी मूक भाव से आँख बंद कर यह हत्याकांड देख लेते। कोई तेजस्वी श्रमण इस प्रथा के विरुद्ध में गर्जना करता तो बहुमत का बल, तथा शस्त्रबल उसे भी दबाने की कोशिश करता फिर भी आचार्य हेमचन्द्र जैसे महान आत्मबली श्रमणों ने मध्ययुग में बलिप्रथा के विरुद्ध एक वातावरण अवश्य तैयार किया था, उनके उपदेश से प्रतिबुद्ध सम्राट कुमारपाल ने अपनी कुलदेवी के मंदिर में बलिप्रथा को सर्वथा बंद भी कर दिया था। मुसलमान बादशाहों के जमाने में कुछ प्रभावक आचार्यों ने पुनः बलि-प्रथा तथा जीव-हिंसा के विरुद्ध प्रभावशाली आवाज उठाई थी, परिणामस्वरूप अनेक मुगलशासकों ने समय-समय पर पशुहिंसा रोकने के फरमान निकाले थे। इनका तात्कालिक प्रभाव भी हुआ; पर स्थायीरूप से शासकीय आदेश कामयाब कम होते हैं। जनता ने जागृत होकर अपनी तरफ से पशुहिंसा त्याग दी हो ऐसे प्रसंग कुछ विरले ही होते हैं। गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज के जीवन में ऐसे भी प्रसंग आये जब जनता ने प्रेरित होकर हिंसा का त्याग किया।

मुनिश्री पन्नालालजी जिस समय में राजस्थान के अंचलों में घूमते थे उस समय तो अनेक जन-जातियों, क्षत्रियों एवं अन्य जातियों में पशुहिंसा, बलिप्रथा का बोल-बाला था। मुनिश्री समाज सुधार की अन्य प्रवृत्तियों में जब क्रियाशील थे तब अचानक ही बलिप्रथा की ओर उनका ध्यान आकृष्ट हुआ। उनका ध्यान इस ओर खींचने वाला एक प्रसंग इस प्रकार बना।

घटना वि. सं. १९८२ की है। फाल्गुन मास में विहार करते हुए मुनिश्री हिन्दुओं के प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र पुष्कर पधारे। पुष्कर में जैन समाज बहुत कम है, किन्तु आपके प्रवचन प्रायः सार्वजनिक होते थे, जैन-अजैन सभी उसमें समान रूप से रस लेते। वहां के पण्डे भी अच्छी संख्या में आते थे। प्रतिदिन प्रवचन में उपस्थिति बढ़ती गई, तब जनता ने निवेदन किया—पुष्कर के 'गऊघाट' जैसे सार्वजनिक स्थान पर अपना प्रवचन फरमाइए।"

यह तो स्पष्ट ही हो चुका है कि मुनि श्री पन्नालाल जी महाराज एक स्पष्ट वक्ता, निर्भीक श्रमण थे। उनका स्वभाव उस वैद्य के समान था, जो रोगी को रुचिकर दवा देकर केवल उसके मन को प्रसन्न करने के बजाय, कटु परन्तु हितकारी दवा देकर स्वस्थ बनाने का प्रयत्न करते थे, फिर भले ही अरुचिकर क्यों न लगे! अपनी इसी वृत्ति के अनुसार यहाँ भी मुनिश्री जी ने धर्म एवं गुरु का शास्त्र-सम्मत विवेचन प्रस्तुत किया जिसमें धर्म की अहिंसा प्रधानता का वर्णन कर गुरु की निस्पृहता एवं सदाचार-परायणता का वर्णन किया। " 'गुरु' नामधारी व्यक्ति का जीवन दर्पण की भाँति स्वच्छ व निर्मल होना चाहिए। उसमें दुराचार दुर्व्यसन का प्रवेश संपूर्ण समाज के लिए दूषण व चेपी रोग का कारण बन सकता है।"

मुनिश्री की यह स्पष्ट और सटीक उक्ति पण्डों को अखर गई। उन्हें लगा—मुनि जी हम पर ही सीधी चोट कर रहे हैं। सभा के बीच में ही एक पण्डा उठा, जो भंग के नशे में धुत था, बोला—महाराज। हम पंडे पीते हैं तो भँग ही, भैंसे तो नहीं मारते, फिर हम में क्या बुराई हैं। आप में कुछ शक्ति है, चमत्कार है तो जहाँ भैंसे मारे जाते हैं वहाँ जाकर वह हत्याकांड रुकवाइए।"

पंडे ने भंग के नशे में भी बात कुछ इस ढंग से कही कि वह मुनिजी के मन को लग गई। उन्होंने तुरन्त जानकारी चाही कि भैंसे कहाँ मारे जाते हैं? लोगों ने बताया—"यहाँ से एक मील दूर पर ही गनाहेड़ा नाम का गाँव है, वहाँ बहलोल जाति के रावतों का परिवार है। उनमें यह रिवाज है कि भैंसों के जितने पाड़े (भैंसे) होते हैं उन सबको माता जी की बलि चढ़ा देते हैं।

बलि की यह बात सुनकर गुरुदेव श्री का करुणा-स्निग्ध मानस द्रवित हो उठा। उनका हृदय वज्र-सा कठोर था तो फूलों से भी अधिक कोमल था। मनुष्य क्या, पशु और पक्षी की आँखों में भी आंसू देखना उनसे बर्दाश्त नहीं होता—

किसी का रंज देखूँ यह नहीं होगा मेरे दिल से।
नजर सैय्याद[1] की झपके तो कुछ कहदूं अनादिल[2] से।

वे इसी प्रकृति के थे। सभा मंडप में ही मुनिश्री ने हृदय में वज्र-संकल्प कर लिया—इस निर्मम हिंसा को रोकना चाहिए। आपने पण्डे से कहा—"बंधु! तुमने पाड़े बचाने की बात कही वह ठीक है, मैं गनाहेड़ा पहुँचकर भैंसों की बलि बंद कराने का पूरा प्रयत्न करूँगा।"

मुनिश्री के अदम्य आत्मबल का परिचय पाकर सभा ने एक स्वर से जयध्वनि की। अनेक पंडों ने भंग आदि दुर्व्यसनों का त्याग किया।

मुनि श्री के मन में अब एक बेचैनी अनुभव होने लगी। जब तक वे गनाहेड़ा में भैंसों की बलिप्रथा बंद न कराएं, मन को शांति कैसे मिले? दूसरे ही दिन अपने साथी संतों को पुष्कर में ही रखकर आप श्री अकेले ही गनाहेड़ा की तरफ प्रस्थान करने लगे। आपके साथ पुष्कर के कुछ प्रमुख उत्साही श्रावक भी चल पड़े। गनाहेड़ा पहुँचकर गुरुदेव श्री माता जी के मन्दिर में ही ठहरे। श्रावकों ने रावत भाइयों को मुनिश्री के प्रवचन सुनने की प्रेरणा दी। मुनिश्री ने अपने प्रवचन में माता के करुणामय स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा—

माता तो वह है जो अपनी सन्तान का पालन-पोषण-संवर्धन करे। उसकी रक्षा करे। वह अपनी संतान को अपने सामने मरते देखकर दुखी होती है। मनुष्य की तरह पशु भी माता जी की संतान है, भैंसे की माता जी के सामने बलि चढ़ाने से माता जी

---

१ शिकारी २ बुलबुल

प्रसन्न नहीं होतीं, अपितु उसे दुःख ही होता है। अतः माता जी के भक्तों का कर्तव्य है कि वे इस क्रूर वलि-प्रथा को वंद करें।"

मुनिश्री ने इस प्रकार अहिंसा करुणा आदि का महत्व वताकर वलि-प्रथा को वंद करने की हृदयग्राही शिक्षा दी। गुरुदेव श्री के उपदेश से अनेक रावत भाइयों का हृदय वदल गया और वे इसके लिए सहमत हो गये।

गनाहेड़ा में एक भगवां वेशधारी महात्मा भी रहते थे जो स्वयं को रावतों का कुलगुरु वताते थे। उन्हें जव मुनिश्री के आगमन का और उनके उपदेश का पता चला तो वे भी अपने भक्तों में विरोधी प्रचार करने लगे। भोले भक्तों को एकत्र कर उन्होंने कहा—देवी को वलि चढ़ाना रावतों का परम्परागत कुलाचार है, यदि तुम लोग किसी के वहकावे में आकर इस प्रथा को वंद कर दोगे तो माता जी कुपित हो जायेंगी, तुम्हारा सर्वनाश कर देंगी।।"

कुलगुरु की कुयुक्ति से भोले ग्राम्य लोगों में भय व आतंक का वातावरण छा गया। मुनिश्री जी के करुणा-प्रधान, उपदेश का जो असर हुआ था, वह उनकी कुयुक्तियों से दव गया। इधर मुनिश्री ने अपनी प्रेरणा चालू रखी और उधर कुलगुरु अपना आतंक वरावर फैलाता रहा। जव रावत भाइयों की असमंजस दशा का मुनिश्री का पता चला और कुलगुरु की चालवाजी का भंडाफोड़ हुआ तो उन्होंने संकल्प किया—अव तो इस कुप्रथा को वंद कराके ही यहाँ से विहार करूँगा। माता जी के मन्दिर में पद्मासन लगाकर मुनिश्री दृढ़संकल्प के साथ वैठ गये—"वलि वंद होने पर ही यहाँ से उठना है।"

एक दिन वीत गया, दूसरा दिन भी वीता, तीसरा दिन भी आया, मध्याह्न होगया। मुनिश्री पद्मासन लगाये निराहार वैठे थे। पर समस्या ज्यों की त्यों उलझी हुई थी। रावत भाइयों का दिल मुनिश्री के उपदेश से प्रभावित हो चुका था, वे वलि-प्रथा को वंद करना चाहते थे, पर कुलगुरु के भय से हिचकिचा रहे थे। तीसरे दिन मध्याह्न में मुनिश्री ने वावाजी को अपने पास वुलाया। गाँव में उसका काफी आतंक था। लोगों ने कहा—"वावा से आप मत अड़िए। वह कई प्रकार के मंत्र-तंत्र जानता है। जादू टोना करता है मूठ[1] भी चलाना जानता है।"

गुरुदेव श्री तो सर्वथा अभय थे। उन्होंने गंभीर होकर कहा—"वीर की संतान कभी कायर नहीं होती। जिसका देव अरिहन्त है, उसका 'अरि' कौन हैं? फिर ऐसी मलिन और क्षुद्र-विद्याओं से साधुओ को क्या भय है?

मुनि श्री ने स्वयं ही उस वावा को आवाज दी। उनके सम्बोधन में एक प्रकार की दहाड़-सी थी। वावा भीगी बिल्ली की तरह चुपचाप वहाँ आया और सामने खड़ा होकर कहने लगा—"क्या कहते हो?"

---

१ शत्रु को मारने के लिए मंत्रित धान्य फैंकने की एक मलिन विद्या-शक्ति।

गुरुदेव ने मधुर शब्दों में कहा—"मैं तुम्हारे यहाँ अतिथि आया हूँ। अतिथि-सत्कार भारतीय संस्कृति का मुख्य रूप है। तुम्हें मालूम है?"

बाबा—"जी हां! फरमाइये! मैं आपका क्या आतिथ्य करूँ?"

गुरुदेव—मैं जिस कार्य को सम्पन्न करने आया हूँ, उसमें सहयोग देना ही आपका आतिथ्य मानूंगा।"

बाबा—"आप किस कार्य के लिए यहाँ आये हैं?"

गुरुदेव—माताजी के यहाँ पर जो पशु-बलि दी जाती है, मैं उसे बंद करवाना चाहता हूँ, क्योंकि कोई भी धर्म हिंसा को उचित नहीं मानता। जीव-दया ही परम-धर्म है। जीव-दया के प्रसार में और पशु-हिंसा को रोकने में मैं आपका सहयोग चाहता हूँ। रावत-बंधुओं पर आपका प्रभाव है। आप अपने प्रभाव का उपयोग कर इस कार्य को पूर्ण करवाइए।"

बाबा—"मैं भी इन्हें यही समझा रहा हूँ?"

गुरुदेव—"यह बात आप हृदय से कह रहे हैं, या केवल मुँह से?"

बाबा—"केवल मुँह से! हृदय से तो मैं यह चाहता हूँ कि बलि-प्रथा सदा चालू रहनी चाहिए। मेरा वश चले तो मैं इसे कदापि बंद नहीं होने दूँ?"

गुरुदेव—"क्या तुम बलि देना अच्छा मानते हो?"

बाबा—"हाँ।"

गुरुदेव—"क्यों?"

बाबा—"बलि-प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही है। इससे देवता प्रसन्न होते हैं। इसलिए बहुत प्राचीन काल में लोग भैंसों की बलि देते थे। जब भैंसे मँहगे मिलने लगे तो लोग देवता को नारियल चढ़ाने लगे। यह भैंसे का ही प्रतीक है—उसके दो आँखें, उनके बीच नाक और मुंह होता है। नारियल भैंसों की बलि का ही प्रतीक है। यदि आप बलि-प्रथा बंद करवाना चाहते हैं तो नारियल चढ़ाना भी बंद करवाइए, अन्यथा यह प्रथा बंद नहीं हो सकती।"

गुरुदेव—"बाबा ! तुम भ्रांति में हो। नारियल के साथ भैंसे की तुलना करना और उसे भैंसे की आकृति का मानना सर्वथा अज्ञान है, यह गलत है। भोले-भाले लोगों को इस प्रकार गुमराह करना ठीक नहीं है। इसमें तुम्हारा कुछ भी स्वार्थ हो, किन्तु मूक पशुओं की हत्या माताजी के नाम पर कभी नहीं होनी चाहिए…"

बाबा भी जरा तैश में आकर बोला—"होनी चाहिए ! होगी ! बलि बंद नहीं हो सकती !"

बाबा की इस गलत हठधर्मी पर मुनिश्री की आंखों में एक अपूर्व तेज चमक आया। उनकी वाणी में गर्जना-सी ध्वनि होने लगी और उच्च स्वर से कहा—"बाबा ! मैं एक जैन साधु के नाते तुम्हें कहता हूँ कि तुम्हारा हित इसी में है कि तुम बलि का प्रचार बंद कर दो ! अन्यथा तुम्हारा बड़ा अहित हो जाएगा।"

बाबा—"तो क्या तुम जादू-टोना करते हो ? मंत्र, मूठ आदि जानते हो ? ऐसी कौन-सी शक्ति है, अहित करने की तुम में ?"

गुरुदेव—"शक्ति ! मेरे में बहुत बड़ी शक्ति है ! जानता है मुझे, मैं एक मिनट में तुम्हें फना करने की शक्ति रखता हूँ। और तुझे चेलेंज के साथ कहता हूँ कि ५ मिनट के अंदर-अंदर इस गनाहेड़ा की सरहद को छोड़ दे। वरना यहीं पर फना कर दूंगा।"

यों जोश में गर्जते हुए मुनिश्री ने फरमा दिया। मुनिश्री की ओजस्वी वाणी और आँखों की अद्भुत दीप्ति का बाबा के मन पर विचित्र प्रभाव पड़ा। वह भयभीत-सा हो गया। पैरों तले से धरती खिसकती दिखाई दी। वह वहाँ से उसी क्षण अपना बोरिया-बिस्तर बांधकर गनाहेड़ा छोड़कर चला गया।

बाबा के गाँव छोड़ने की खबर चारों ओर बिजली की तरह फैल गई। लोगों के मुँह पर सर्वत्र एक ही प्रश्न था—यदि बाबा सच्चा होता तो इन महात्मा के सामने टिका क्यों नहीं ? जरूर उसकी बातें गलत थीं, वह झूठा था। गाँव के सभी रावत-बंधु मुनिश्री के चरणों में उपस्थित हुए और नम्रता पूर्वक बोले—आपकी आज्ञा हमें शिरोधार्य है। हम गनाहेड़ा में सर्वथा बलि बंद करने को तैयार है।

गुरुदेव श्री ने हर्ष-विस्मित होकर कहा—आप लोगों ने बड़ा सही निर्णय किया है, धन्यवाद ! मेरा संकल्प सफल हुआ। अब आप अपनी सभा करके सर्व-सम्मति से यह निर्णय कर लें, और उसे लिखकर एक शिलालेख के रूप में माताजी के मन्दिर पर लगा दें।

रावत-बंधुओं ने इस प्रस्ताव को लिखकर सर्व सम्मति से बलि बंदी की घोषणा कर दी और शिलालेख राज्य-सरकार से रजिस्टर्ड कराकर माताजी के मंदिर पर लगाने का निर्णय भी कर लिया।

अपना उद्देश्य व संकल्प सिद्ध होने पर गुरुदेव ने पद्मासन खोला। गनाहेड़ा के बन्धुओं ने मुनिश्री से दो दिन के उपवास का पारणा वहीं करने का आग्रह किया।

भक्तों की भक्ति कभी ठुकराई नहीं जाती। मुनिश्री ने कुम्भकारों के यहाँ से मक्के की घाट एवं छाछ लाकर पारणा किया और फिर पुष्कर वापस पधारे।

बलि-प्रथा बंद करने का यह करुणा प्रेरित अभियान अब एक आन्दोलन का रूप बन गया। गुरुदेव ने चावंडिया और तिलोरा गाँव में भी जनता को उद्‌बोधित कर माताजी के नाम पर होने वाली बलि बंद करवाई। वहाँ पर भी मंदिरों पर शिला-लेख लगवा दिये गये, जो आज भी गुरुदेव श्री की अगाध संकल्प बल की गरिमा के साथ-साथ करुणा की महिमा का जयघोष कर रहे हैं।

करुणा का कार्य भी आत्म-शुद्धि के साथ

प्रसंगवश यहाँ यह भी बता देना चाहते हैं कि गुरुदेव श्री भक्ति के साथ कभी-कभी शक्ति में भी अपना संकल्प निविष्ट कर देते थे। यद्यपि हृदय-परिवर्तन का मार्ग बड़ा कोमल, प्रेमपूर्ण और स्थायी प्रभाव वाला है, किन्तु वह सिर्फ उपदेशात्मक है, चिरकालसाध्य है, उसमें आदेश की तथा मारक धमकियों की संभावना कम है।

उत्तराध्ययन सूत्र में गर्दभिल्लमुनि और संयती राजा से सम्बन्धित अभयदान का एक वर्णन आता है। संयती राजा के हाथ से शिकार करते समय एक मृग के तीर लग जाता है। वह मृग घायल होकर मुनिवर के पास जाकर लहुलुहान अवस्था में बैठ जाता है। संयती राजा मुनिराज के पास उस मृग को देखकर मन-ही-मन घबराते हैं कि हो न हो, यह मृग मुनिराज का है, इसी से यह इनके पास आकर बैठा है। मुनि के मृग पर मैंने प्रहार किया, यह बहुत बुरा हुआ। अब न जाने यह मुझे श्राप देकर भस्म करदें। इस विचार से संयती राजा ध्यानस्थ मुनि गर्दभिल्ल के सामने हाथ जोड़ कर भयभीत मुद्रा में बैठ गया। ज्योंही मुनिवर का ध्यान खुला, त्यों ही उसने हाथ जोड़ कर अपने लिए अभयदान देने की प्रार्थना की। तब मुनिवर ने राजा संयती को आश्वासन देते हुए कहा—

'अभओ पत्थिवा ! तुज्झ, अभयदाया भवाहि य !'

हे राजन् ! मेरी ओर से तुम्हें मैं अभयदान देता हूँ, किन्तु तू आज से अभयदाता बने !" इस प्रकार के उपदेश से तथा मुनिराज के प्रभाव से संयती राजा के हृदय ने पलटा खाया और वह सदा के लिए समस्त प्राणियों का अभयदाता स्वपरकल्याण-पथिक मुनि बन गया।

हाँ, तो यहाँ भी बाबा को अनुकूल बनाने एवं जनता को अहिंसा के अनुकूल प्रभावित करने के लिए गुरुदेव श्री ने आत्म-तेज दिखाकर धमकी से भी कभी-कभी काम लिया। उस धमकी से बाबा प्रभावित हुआ। बाबा का शीघ्र ग्राम परित्याग कर देना भी धमकी का ही परिणाम था। यद्यपि वह उपदेशात्मक ही था, परन्तु उसमें सावद्यभाषा का पुट आजाने से वह मुनि मर्यादा के लिए एक विचारणीय प्रश्न बन गया। स्वयं मुनिश्री को भी यह खटकने लगा। पूज्य गुरुदेव श्री धूलचन्दजी महाराज को

भी मुनि श्री के इस साहस-पूर्ण कदम के समाचार मिले ! वे सुन कर गहरे मनोमंथन में पड़ गए।

महावीर से गुरु : गौतम से शिष्य :

जब आप वलिदान (हिंसा) निरोध के अभियान में विजयी बन कर पूज्य गुरुदेव श्री धूलचन्दजी महाराज साहब की सेवा में अजमेर स्थानक में पधारे। साथ में पुष्कर के कुछ प्रतिष्ठित प्रमुख श्रावक भी आपको पहुँचाने आए हुए थे। रास्ते में आपके मानस में हर्ष की लहरें उछल रही थीं, कि जाते ही गुरुदेव मेरे मस्तक पर हाथ धर कर पीठ थपथपाते हुए शावाशी देंगे। किन्तु वहाँ पहुँचते ही आपने आशा के विपरीत स्थिति देखी। आपके द्वारा वन्दना करने पर भी न तो गुरुदेव श्री बोले और न ही दीक्षालघु साधुओं ने आपको वन्दन किया। आपने गुरुदेव के चरणों में शीश झुकाकर पूछा—"गुरुदेव ! यह क्या ! ऐसा मुझसे कौन-सा अपराध हो गया ? इतनी नाराजगी क्यों है, इस शिष्य पर ?"

गुरुदेव—"पन्ना ! तूने गनाहेड़ा में उस वावाजी से क्या कहा था ? तूने उसे फना कर देने का चेलेंज दिया था न ! मान लो, यदि वह गाँव छोड़कर नहीं भागता, तो तू क्या करता ? क्या तू उसे मार देता ?"

मुनि श्री ने कहा—"गुरुदेव ! यह तो उस पर प्रभाव डालने के लिए कहा था। वह तो मेरे साहसपूर्ण कथन से प्रभावित होकर भाग गया, गुरुदेव ! उसी समय उसने गाँव छोड़ दिया।"

गुरुदेव—"वह तो भाग गया, पर न भागता तो तू क्या करता ? क्या तू उसे फना कर देता ? क्या किसी को मारना या मारने का वचन कहना साधु के लिए कल्पनीय है ? तेरी धमकी भरी भाषा से वावा भयभीत तो हुआ, लेकिन भयोत्पादक वचन भी अहिंसक एवं सत्यवादी साधक के लिए वांछनीय नहीं है। ऐसी कठोर और भूतोपघाती भाषा वोलना क्या तेरा धर्म है ? **'अणवज्जमकक्कसं'** निरवद्य और मृदु-भाषा बोलने की प्रतिज्ञा धारण करने वाला तू **'भूओवघाईणी भासं'** प्राणियों का उपघात करने वाली भाषा का उपयोग करे, यह अहिंसा एवं सत्य की मर्यादा के प्रतिकूल है। किसी के हृदय को आघात पहुँचाने वाला वचन भी साधु को कदापि नहीं कहना चाहिए। यह तेरे जीवन की बहुत गम्भीर भूल है। पहले इसका प्रायश्चित लेकर आत्म-शुद्धि कर लेने के वाद ही तुम्हारे साथ सभी व्यवहार पूर्ववत् रखे जा सकेंगे।"

पास में खड़े हुए पुष्कर तथा अजमेर के प्रमुख श्रावकों ने गुरुदेव से निवेदन किया—"गुरुदेव ! मुनिश्री ने तो बहुत उपकार का काम किया है, फिर इसके लिए प्रायश्चित क्यों ?"

गुरुदेव—"श्रावको ! यह प्रायश्चित पशु-वलि वंद करवाने का नहीं है। वह तो महान् उपकार का कार्य इसने किया है। उसे सुनकर तो मेरा हृदय भी खुशी से बांसों

उछल रहा है, पर इसने वहाँ जो सावद्यभाषा का प्रयोग किया, उसका प्रायश्चित्त तो इसे लेना ही चाहिए।"

यह सुनते ही मुनिश्री ने तुरंत हाथ जोड़ कर सविनय निवेदन किया—"गुरुदेव आपकी बात न्याय-संगत है। मुझे अपनी आत्मा पर लगी हुई भाषा-सम्बन्धी अशुद्धि के लिए खटक है। आपने मुझ पर वड़ी कृपा की है, मुझे सावधान करके संयम-साधना में लगे हुए दोषों का परिमार्जन, भूलों का शुद्धिकरण, आपसे प्रायश्चित्त ग्रहण करके मुझे करना ही चाहिए। धन्य है, आप जैसे गुरुदेव को! गौतम को महावीर की भाँति मुझे भी आप सरीखे सच्चे गुरु मिल गए। फिर मेरे जीवन में स्खलना कैसे रह सकती है? इस स्खलना के लिए मेरे मन में पश्चाताप है। आप मुझे प्रायश्चित्त देकर शुद्ध कीजिए। फरमाइए प्रायश्चित्त!

गुरुदेव—"इसका प्रायश्चित्त है—एक तेले (तीन उपवास) की तपस्या!"

श्रावकगण—गुरुदेव! तेले का प्रायश्चित्त!! अभी-अभी तो मुनिश्री ढाई दिन की तपस्या का पारणा करके पधारे हैं। योग्य एवं संघ-प्रभावक शिष्य पर जरा अनुग्रह कीजिए।"

गुरुदेव—"भाइयो! अनुशासन में कोई रियायत नहीं दी जाती, अगर यह आत्म-शुद्धि अभी नहीं करेगा, तो इसके जीवन में अशुद्धि (भूलें व त्रुटियाँ) वढ़ती ही जाएंगी और आगे चलकर यह कुछ भी स्थायी प्रभावक कार्य नहीं कर सकेगा। चारित्रिक दोषों की शुद्धि से ही साधक का तप, तेज, आत्म-वल और प्रभाव वढ़ता है।"

उसी समय आपने गुरुदेव से सविनय अर्ज किया—"पूज्यवर! महोपकारिन्! इसमें उधार की क्या आवश्यकता है? आप श्री मुझे अभी तेले (तीन उपवास) का प्रत्याख्यान (पच्चक्खाण) देने की कृपा कीजिए। आपका शिष्य कभी तपस्या से डर सकता है, ? विलम्ब न कीजिए। वस, **'शुभस्य शीघ्रम्'** के अनुसार मुझे तपस्या करवा दीजिए।"

मुनिश्री ने सरल हृदय से अपनी भूल स्वीकार की और उसके लिए मन में जो खटक थी, उसे निवेदन करके गुरुदेव के समक्ष अपनी आलोचना की और प्रायश्चित्त लेकर संयम-शुद्धि की।

गुरुदेव ने भी शिष्य की आत्म-शुद्धि के लिए जरा कठोर वनकर उपस्थित श्रावकों के समक्ष उसी समय मुनिश्री को तेले की तपस्या का पच्चक्खाण (प्रत्याख्यान) करवा दिया।

आज के अनुशासनहीन शिष्यों के लिए मुनि श्री का यह आदर्श उदाहरण प्रेरणादायक है!

गोरक्षा का पुनीत कार्य

गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज का हृदय करुणा रस से ओतप्रोत रहता था। जब वे कहीं भी किसी प्राणी की हिंसा का समाचार सुन लेते या अपने सामने हिंसा

होती देख लेते तो उनका करुणार्द्र हृदय पसीज उठता था। पिछली कई घटनाओं में पाठक उनके करुणापूर्ण हृदय का परिचय पा चुके हैं। नीचे हम उनके निमित्त से सम्पन्न गोरक्षा का एक ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

विक्रम संवत् २००२ का आपका वर्षावास विजयनगर गुलाबपुरा में ठा० ५ से हुआ था। आश्विन मास था, लगभग ५ बजे का सुहावना प्रभात का समय था। गुरुदेव, अन्य सन्त तथा कुछ धर्मशील श्रावक बोल-थोकड़े सीखने में एवं परमात्म गुण कीर्तन में संलग्न थे। प्रातःकाल का समय वैसे ही धर्म-जागरण का होता है। अतः आप उस समय स्वाध्याय में थे। तभी आपको समाचार मिले कि 'नसीराबाद के कसाई लोग लगभग १२५ गायें मेवाड़ से ले जा रहे हैं। वे लोग कतलखाने ले जाकर उन्हें बेच देंगे। इस प्रकार ये सब गायें कटेंगी और बड़ा अनर्थ होगा।' गुरुदेव ने ज्यों ही सुना त्यों ही उनका हृदय करुणा से विह्वल हो उठा। आपने स्थानीय नवयुवक मण्डल के प्रमुख युवकों को प्रेरणा दी—"आप लोगों के होते हुए इस प्रकार से गायें काटने के लिए कत्ल-खाने ले जाई जायँ, यह शोभास्पद बात नहीं है।"

युवक बोले—"गुरुदेव ! हमें तो पता ही नहीं चला था, अब जब पता चला, तभी हम आपके पास दौड़े हुए आए हैं। आप बताइए, हम क्या करें ? जब तक सरकारी संरक्षण उनको प्राप्त है, तब तक हमारा क्या बस चलेगा ? हमारी बात वे कब मानेंगे ? यहाँ तो आप श्री के तप-तेज से युक्त वाणी का ही असर हो सकता है।"

गुरुदेव ने कहा—"देखो, तुम लोग युवक होकर इस तरह से कायरता की बातें मत करो। चाहे सरकार ने उन्हें संरक्षण दे रखा हो, परन्तु जनमत के आगे सरकार को भी झुकना पड़ता है। जनता का अगर विरोध हो, और वह महात्मा गाँधीजी की पद्धति के अनुसार अहिंसक ढंग से और सामूहिक रूप से हो तो सरकार को भी उसे मानना पड़ेगा। आखिरकार सरकार भी जनता के रुख को देखकर चलती है। मेरा विश्वास है कि तुम लोगों से ही यह कार्य हो जायगा ! मेरा पृष्ठबल एवं मंगल भावना तो तुम्हारे साथ है ही। तुम्हें कोई उपद्रव, मारपीट या गाली-गलौज नहीं करना है। सिर्फ निःशस्त्र, निर्भय और साहसी होकर वे कसाई लोग जिस मार्ग से गायें ले जा रहे हों, उस मार्ग को रोक कर खड़े हो जाना है। वे पूछें तो जरा भी क्रोध किये बिना शान्ति से जवाब दे देना है। 'या तो वे स्वयं ही गायों को मुक्त करके तुम्हारे हवाले कर देंगे, या फिर कोई कानून ही ऐसा निकल आएगा, जिसके दबाव से उन्हें गायों को छोड़ना ही पड़ेगा। युवको ! तुम सामूहिक रूप से संगठित होकर गोरक्षा का यह बीड़ा उठाओ, सफलता अवश्य ही तुम्हारे चरण चूमेगी।"

चरितनायक श्री की जोशीली, किन्तु शुद्ध मार्गदर्शन से युक्त वाणी सुन कर युवकों की भुजाएँ फड़क उठीं। युवक हृदय श्री कपूरचन्द जी कांस्टिया के नेतृत्व में तुरन्त ही बीस युवक तैयार हो गए। सभी युवकों ने पवित्र खादी का श्वेत वेष धारण किया और गुरुदेव श्री से मंगलपाठ सुन कर मार्चिंग सोंग (प्रयाण गीत) गाते हुए वहाँ

से प्रस्थान किया। सभी युवक ऐसे मालूम हो रहे थे, मानो सत्याग्रही साधक अभिनिष्क्रमण करके सोये हुए समाज को उद्‌बुद्ध करने जा रहे हों। वे सब उस मार्ग पर पहुँच गये, जहाँ से होकर गायें जा रही थीं। सब मिल कर उस मार्ग को रोक कर खड़े हो गये। गायें भी चुपचाप वहीं खड़ी हो गईं, मानो इन सत्याग्रही युवकों को अपनी रक्षा के लिए आये हुए देख हृदय से मूक आशीर्वाद दे रही हों। कसाई लोग भी इस प्रकार के सौम्य सत्याग्रही युवकों के झुंड को देखकर एकदम सकपका गए। अगर उन्हें गालीगलौज करते या उनसे वे कोई झगड़ा अथवा मारपीट करते तो शायद कसाई लोग भी गाली-गलौज, मारपीट या लड़ाई-झगड़ा करने पर उतारू हो जाते; लेकिन यहाँ तो अहिंसा के देवता, शान्ति दूत गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज की अहिंसक ढंग से ही कार्य सिद्ध करने की प्रेरणा थी। इसलिए अहिंसक वातावरण के कारण कसाइयों के दिलों में भी प्रेम-भाव से युवकों को गाय सौंप कर चले जाने की स्फुरणा हुई।

सच है, जहाँ अहिंसा अपने पैर मजबूती से जमा लेती है, वहाँ उसके आसपास हिंसा, वैर विरोध, कत्ल आदि पलायन कर जाते हैं। दूसरी ओर गुलाबपुरा के कुछ लोगों ने मेवाड़ राज्य के सीमाधिकारी को सूचित कर दिया कि 'मेवाड़ राज्य से वाहर गायों का ले जाना निषिद्ध है। फिर भी कुछ लोग चोरी-छिपे से गैर रास्ते से राज्य के वाहर गायें ले जा रहे हैं। इन्हें रोका जाना चाहिए।" अत: सूचना मिलते ही कस्टम (चुंगी) अधिकारियों ने इसकी जांच के लिये भाग-दौड़ की और दलबल सहित वे घटनास्थल पर पहुँच गए। मेवाड़ राज्य से वाहर गायें ले जाने के अपराध में वे सभी कसाई राज्य के अपराधी सिद्ध हो चुके थे। यद्यपि वे कसाई काफी संख्या में थे, किन्तु इधर जनता की भीड़ भी काफी थी, कई कस्टम अधिकारी थे, कुछ युवक भी थे। अपराध एवं राज्य शक्ति की गिरफ्त में आने तथा जनता का प्रवल विरोध होने के कारण विकट परिस्थितियों से जूझना कसाइयों के वश की वात नहीं रही; अत: वे सव घबराकर तमाम गायों को वहीं छोड़ गए और नौ दो ग्यारह हो गए। अनायास ही कार्य सिद्ध हुआ देख कर कस्टम अधिकारियों ने उन युवकों से कहा—"कसाई ये तमाम (१२५) गायें यहाँ छोड़ गए हैं, अत: आप लोग हमें सहयोग दो, ताकि इन गायों को हम गुलावपुरा ले चलें।" नवयुवकों ने सहायता देने का वचन दिया। फलस्वरूप गुलावपुरा के उक्त युवकों के सहयोग से वे सब गायें राज्याधिकारियों ने गुलाबपुरा के बाजार में जैन स्थानक के वाहर लाकर खड़ी की।

चरितनायकजी को जव यह पता चला कि गायें कसाइयों के हाथ से छूट कर आ गई हैं और युवकों के अहिंसक ढंग से सामाजिक दवाब तथा राज्य शक्ति के राजकीय दवाव के कारण कसाई लोग स्वत: गायों को छोड़कर चले गए हैं, तब आपको अतीव प्रसन्नता हुई। आपने उसी समय नगर के व्यापारी वर्ग को जीव दया की जबर्दस्त प्रेरणा दी—"धर्म प्रेमीजनो ! आप अहिंसक हैं। अहिंसक वीर शरणागत में आए हुए की रक्षा करता है। इतिहास प्रसिद्ध शिवी और मेघरथ राजा शरण में आए हुए कबूतर की रक्षा के लिए अपने प्राण देने को तैयार हो गए थे। वे वाज को कबूतर के वरावर

अपने शरीर का मांस देने को तैयार हो गये थे। शरणागत रक्षा की परीक्षा में वे पूर्णतया उत्तीर्ण हुए थे।

उसी प्रकार आप सबको भी शरणागत रक्षा की परीक्षा में उत्तीर्ण होना है। ये गायें जैन स्थानक के सामने खड़ी हैं, इसका मतलब है—ये गायें आप सभी अहिंसा प्रेमी लोगों की शरण में आई हैं। इन शरणागत गायों की रक्षा करना आप लोगों का कर्तव्य है। आप लोग जैसे किसी शरण में आए हुए व्यक्ति के खाने-पीने, रहने आदि का सब प्रबन्ध करते हैं, वैसे ही आपको इन गायों के रहने, 'खाने-पीने आदि का समुचित प्रबन्ध करना चाहिए। अगर आप इस कर्तव्य से मुख मोड़ते हैं तो एक तो आप धर्म-पालन के लिए अनायास प्राप्त अवसर को खोते हैं, दूसरे अपने अहिंसक पूर्वजों के नाम को लज्जित करते हैं। इस उपदेश का उपस्थित भाई-बहनों पर अचूक असर हुआ। तत्काल वहाँ के व्यापारी वर्ग ने एक गौशाला की स्थापना का निश्चय किया और इन गायों को इसी गौशाला में लेने का निर्णय लिया।

अब उन गायों को बाकायदा सरकार के कब्जे से अपने कब्जे में लेने का काम बाकी था। राज्य के नियमानुसार वे तमाम गायें जब्त की गई थीं। अत: जब व्यापारी वर्ग ने सरकार से अपील की कि ये गायें हमें दी जायें, तब राज्य के द्वारा वे गायें नीलाम की गईं। व्यापारी वर्ग ने नीलाम में उचित मूल्य पर वे तमाम गायें गौशाला के लिए खरीद लीं। इस प्रकार करुणाकर गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज की प्रेरणा से गुलाबपुरा में गायों की रक्षा हुई और गौशाला का श्रीगणेश हुआ। आपकी प्रेरणा से स्थापित की गई गुलाबपुरा की गौशाला तब से अभी तक सुचार रूप से गायों की सुरक्षा कर रही है। इस प्रकार करुणा की पावन-धाराओं में आपका जीवन अवगाहन करता रहता था।

१२

धीरज, धर्म, विवेक

किसी अनुभवी कवि ने कहा है—

विपदा ही महापुरुष को करती है सरनाम।
सिया-हरण बिन राम का, कौन जानता नाम॥

राम के जीवन में यदि सीता-हरण का प्रसंग न बनता तो शायद भूमण्डल में राम की उतनी ख्याति नहीं फैलती, जितनी आज तक फैली है। महावीर के जीवन में गोपालक, गोशालक, चण्डकौशिक और संगम जैसों के प्रसंग नहीं बनते तो महावीर की महावीरता प्रकट नहीं हो पाती और उनका अद्वितीय आत्मबल जन-जन के समक्ष आदर्श बनकर नहीं चमकता। महापुरुषों के जीवन में आने वाली बाधाएँ विकट प्रसंग उनके जीवन की कसौटियाँ बनती हैं, और उन पर घिसा जाकर उनका पौरुष-स्वर्ण अपनी सत्यता व श्रेष्ठता सिद्ध करता है।

विपत्ति, संकट और बाधाएँ वह अग्नि है जिसमें कायर व अविवेकी व्यक्ति घास-फूस की भाँति जलकर भस्मसात हो जाता है, और साहसी तथा विवेकवान् व्यक्ति कुन्दन बनकर चमक उठता है। इसलिये धीर-गम्भीर विवेकयुक्त संतपुरुष विपदा से कभी घबराते नहीं, बल्कि डटकर उसका मुकाबला करते हैं और धीरज एवं सद्विवेक द्वारा उन पर विजय प्राप्त कर विपदा को सम्पदा में बदल देते हैं। कष्ट के क्षण उनकी परीक्षा के क्षण होते हैं, पर उन तूफानों और झंझावातों में भी उनका साहस, धैर्य एवं विवेक दीपक सदा प्रज्वलित रहकर आलोक रश्मियां बिखेरता रहता है।

हमारे चरितनायक गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज साहस व विवेक के एक ज्योति पुरुष थे। अपने साहस, अभयवृत्ति व धैर्यबल के द्वारा जहाँ उन्होंने समाज की कुप्रथाओं के विरुद्ध संघर्ष किये, भूत-प्रेत बाधा से पीड़ित-आतंकित जनता को अभय किया, वहाँ धार्मिक-विवाद, द्वन्द्व एवं संघर्षों के ज्वालामुखी-विस्फोट पर जलधार बनकर शान्ति की तीव्र वृष्टि भी की। समय-समय पर उनके जीवन में ऐसे विकट संघर्ष प्रसंग

आये, कुटिल धर्मान्ध व्यक्तियों द्वारा ऐसे द्वन्द्व रचे गये जिन्हें यदि वे धीरज और गंभीर विवेक के साथ हल नहीं करते तो शायद धर्म के नाम पर रक्त की होलियां खेली जाती और मनुष्य के धर्मोन्माद का राक्षसी रूप इतिहास पट पर काले अक्षरों में लिख दिया जाता। किन्तु उनकी दूरदर्शिता, समयज्ञता, जागृत विवेकशीलता और गहरी सहिष्णुता ने कटुता को भी मधुरता में बदल दिया। अग्नि को भी पानी बना दिया। ऐसे एक-दो प्रसंग यहाँ चर्चणीय हैं।

ज्येष्ठ मास बड़े दिनों के कारण ही ज्येष्ठ नहीं, किन्तु उष्णता में भी वहसबसे ज्येष्ठ (बड़ा) ही होता है शरीर को झुलसा देने वाली गर्म लू और दीवारों को तवे की भांति तपा देने वाली प्रचण्ड धूप। वि० सं० १९८५ के इस ज्येष्ठ मास में गुरुदेव श्री सरवाड पधारे। गुरुदेव श्री के प्रवचन प्राय: सरल-सुबोध और उपदेशात्मक होते थे। उनकी शैली रोचक व आकर्षक थी। वाणी में एक जादू था। जो भी एक बार प्रवचन सुन लेता वह स्वयं खिंचा आता। सरवाड़ में प्रवचन सभा में इतनी भीड़ होने लगी कि व्याख्यान मंडप में जनता को खड़े रहने का भी स्थान नहीं मिलता। अत: जनता ने आप श्री से अनुरोध किया कि बाजार में सार्वजनिक स्थान पर यदि आपका प्रवचन हो तो जनता को अधिक लाभ मिले। जन-आग्रह स्वीकार कर आपने वैसा ही कार्यक्रम किया।

सरवाड़ में हिन्दुओं की भाँति मुसलमानों की जनसंख्या भी अच्छी है, दोनों में परस्पर प्रेम व सद्भाव भी है। आपके व्याख्यानों में मुसलमान जनता की अच्छी उपस्थिति होती थी।

मुनिश्री ने एक दिन 'अहिंसा' पर व्यापक विश्लेषण किया। जैन आगम, हिन्दू पुराण व मुसलमानों के कुरान के अनेक उद्धरण देते हुए अहिंसा का भाववाही उपदेश दिया। आपने अपनी स्वरचित गीतिका भी गाई—

हिन्दु और मुसलमां सबको हम समझायें।
दयाधर्म है सबसे आला इसमें फर्क नहीं है।
वेद-पुरान-कुरान के अन्दर जाहिर दर्ज सही है।
देखलो, खोल किताब ॥

चार सिफ्ते कही दीन के सात इमान ही जान।
इसको तुम अमल में लावो, देखो खास कलाम।
मुसलमां बने दिल जान ॥

शराब पीना रवा नहीं है, देखो कुरान के मांही।
जीना कारी का करना बुरा है सुनो मुसलमां भाई।
मालिक का पढ़ो कलाम ॥

पन्नालाल यों कहे अजीजों, राखो अपना दिल पाक।
सभी खलक के अन्दर प्यारे पड़े अजल की धाक।
एक दिन होगा चलान ॥

इस्लामी-धर्म ग्रन्थों के अनुसार आपने अहिंसा व जीवदया का प्रतिपादन करते हुए अनेक उद्धरण दिये और कुरान-शरीफ की निम्न चार आयतें भी सुनाईं—

जाबिहुल बकर—गो आदि पशुओं की हत्या करनेवाला

दायमुल खुमर—शराब आदि का नशा करने वाला

बाये-उल बशर—मनुष्य को बेचने वाला

कातिे-उल शजर—हरे पेड़-पौधों को काटने वाला

उक्त चारों गुनाह करने वाला दोज़ख (नरक) में दुख भोगता है—ऐसा मुहम्मद साहब ने कहा है।

आपके इस सर्वधर्म समन्वय प्रधान तथा तटस्थ विवेचन को सुनकर जनता अत्यधिक प्रभावित हुई। किन्तु अयोध्या में मंथरा भी मिलती है। कुछ कुटिल व धर्मान्ध व्यक्ति जैन संतों की इस प्रशंसा और प्रभावशीलता से जल-भुन गये। उन्हें तो कलह कराने में ही मज़ा आता है। परिणामस्वरूप उन्होंने मुसलमान भाइयों को भड़काना शुरू किया—देखो, जैनियों ने तुम्हारे कुरान की कितनी बड़ी तौहीन कर दी, जिस कुरान-शरीफ को तुम पाक मानते हो, उसी के आधार पर वे तुम लोगों पर व्यंग्य व आक्षेप करते हैं, और तुम्हें दोज़ख में जाने वाला बताते हैं।

कहते हैं "धर्म में अंधा हुआ व्यक्ति आँखों के अंधे से भी बुरा होता है।" बस, ईमान खतरे में, का नारा लगा और मुसलमान भाई आ गये जोश में। दरगाह में एकत्र हुए और लगे एक स्वर से पुकारने—"हम बदला लेंगे : हमारी कौम मुर्दा नहीं है, जैनी साधुओं ने सदर बाजार में हमारे पवित्र धर्म ग्रन्थ का अपमान किया है, हम हींजड़े बने रहकर इसे बर्दाश्त नहीं कर सकते। कुरान के अपमान का बदला जरूर लेंगे। काफिर को जिन्दा नहीं छोड़ेंगे।"

बस, इस नारे पर सैकड़ों मुसलमान होशोहवास भूलकर जोश में आ गये और हाथों में लट्ठ लेकर हमला करने को तैयार हो गये। तभी एक बूढ़े मौलवी, जो काफी समझदार थे, बोले—"देखो बिना विचारे काम करने का अंजाम बुरा होता है। जोश में होश नहीं खोना चाहिए। अतः 'उतावला सो बावला' इस बात को ध्यान में रखकर पहले असलियत का पता लगाना चाहिए। हमला तो हम जब चाहें तभी कर सकते हैं, लेकिन पहले हम दो मौलवी और दो नवयुवक उनके पास जाते हैं, पता लगाते हैं कि वास्तव में ही उन्होंने कुरान शरीफ की तोहीन की है क्या ? यदि वे गुनहगार पाये गये तो हम तुम्हें इशारा भेज देंगे, फिर तो उन्हें सजा देनी ही है।"

दरगाह में एकत्र हुए मुसलमान बन्धु जब हमला करने की योजना बना रहे थे तभी किसी एक हितैषी मुसलमान भाई ने एक जैन श्रावक को सावधान कर दिया कि आज यह काण्ड होने वाला है। उस श्रावक ने जनता को यह समाचार सुनाया तो सभी के होश उड़ गये। संभावित भयंकर दुर्घटना की आशंका से जनता में खलबली मच गई।

कुछ प्रमुख व्यक्ति दौड़े-दौड़े गुरुदेव के पास आये। उनकी सांस फूल रही थी और हाथ-पैर थर-थर काँप रहे थे। उनकी दयनीय स्थिति देखकर गुरुदेव भी आशंकित हो गये। श्रावकों ने लड़खड़ाती आवाज में कहा—गुरुदेव ! गजब होने वाला है। आज के व्याख्यान से मुसलमान भाई बहुत नाराज हो गये हैं और वे सैकड़ों की संख्या में एकत्र होकर हमला करने के लिए यहाँ आ रहे हैं।

गुरुदेव ने स्थिति की विकटता को भांप लिया, किन्तु उनका आत्मबल भीतर-ही-भीतर प्रदीप्त हो उठा। विकट से विकट वेला में भी वे धीरज और विवेक से काम लेना जानते थे। श्रावकों को धैर्य बँधाते हुए उन्होंने कहा—घबराने की कोई बात नहीं है। देव-गुरु और धर्म की कृपा से सब आनन्द मंगल होगा। आप लोग साहस मत खोइए और न ही जल्दबाजी में कोई गलत कदम उठाएं। हमने प्रातः जो कुछ कहा वह सत्य था, सत्य के लिए उत्सर्ग होना, जहर का प्याला पीना, और शूली पर चढ़ जाना हमारा पुश्तैनी गुण है। हम संसार त्यागी साधु है, सत्य कहना हमारा धर्म है। वह साधु ही क्या जो सत्य कहने से डरे। कहा गया है—

मनुष्य क्या, अदृष्ट की जो ठोकरें न सह सके।
मनुष्य क्या जो संकटों के बीच खुश न रह सके॥
मनुष्य क्या, जो चम-चमाते खंजरों की छाह में—
हां, मुस्कराके, गर्ज के न सत्य बात कह सके।

आप निश्चित रहें, सत्य पर डटे रहने वाला कभी भी मर नहीं सकता। भगवान महावीर ने कहा है—

सच्चस्स आणाए उवट्ठिए मेहावी मारं तरइ।

—सत्य की आराधना करने वाला मृत्यु को भी जीत लेता है, फिर हमें मृत्यु का भय क्यों ? आप घबराइए नहीं !

स्थानक में इस प्रकार का वार्तालाप चल ही रहा था कि दोनों मौलवी साहब और दो छात्र वहाँ आ पहुँचे। मुनिश्री ने उनके हाव-भाव से सब स्थिति समझ ली। फिर भी स्थिति का जायजा लेते हुए पूछा—"मौलवी साहब ! आज कैसे तशरीफ लाये ?"

मौलवी—"आपने आज जो कुरान शरीफ का हवाला देकर अहिंसा की बात कही वह ठीक नहीं है !"

मुनिश्री—"सो कैसे ? क्या कुरान शरीफ हिंसा करने की मनाही नहीं करता ?"

मौलवी—"यह तो ठीक है, लेकिन कुरान में तो हिंसा करने का भी विधान है इसका आपके पास क्या जवाब है।"

मुनिश्री—यह सवाल तो आपको खुदा से ही पूछना चाहिए, क्योंकि कुरान तो उन्हीं का फरमान माना जाता है। हाँ, हम भी इस पर विचार करेंगे। मैं आपसे ही पूछता हूँ, आपका एक रिश्तेदार विदेश गया, और वहाँ से पत्र में आपको दूसरें समाचारों के साथ लिखता है कि 'यह पत्र पढ़ते ही तुम मेरे छोटे लड़के को खत्म कर देना' और उसी

खत में आगे लिखता है कि—'तुम मेरे छोटे लड़के को खूब-खूब प्यार करना।' बताइये जब ये एक-दूसरे को विरोधी दो बातें लिखी हों तो आप उसे मारेंगे या प्यार करेंगे ?

मौलवी—हम उसे प्यार करेंगे, क्योंकि अगर मार डालेंगे तो प्यार किससे करेंगे जब उसने प्यार करने का लिखा है।"

मुनिश्री—छोटे लड़के को मारने का भी लिखा है, उसकी यह बात आप नहीं मानेंगे ?

मौलवी—"यदि यह बात मानेंगे तो फिर अगली बात पूरी कैसे होगी ? उसने मारने के साथ-साथ प्यार करने का भी लिखा है, और यह तभी संभव है जब हम उसे न मारें।"

मुनिश्री—तो, इसका मतलब यह जाहिर हुआ कि जब मारना और प्यार करना दो बातें लिखी हों तो मारने की बजाय प्यार करने की बात ही माननी चाहिए।

मौलवी—सो तो है ही।

मुनिश्री—तो जब कुरान शरीफ में प्राणी की हिंसा करने वाले को दोजख (नरक) में जाना लिखा है, हिंसा का अंजाम बुरा बताया है, और पशुओं का मारना एवं वृक्षों को काटना गुनाह बताया है तो आपको खुदा का यह फरमान मानकर उन प्राणियों से प्यार नहीं करना चाहिए ?

मौलवी—वो तो करना ही चाहिए।

मुनिश्री—तो, मौलवी साहब ! हमने तो यही बात आज कही थी, बतलाइए इसमें क्या बुरा कहा, और कुरान शरीफ की तोहीन की या तारीफ की ?

मुनिश्री की प्रेमपूर्ण वाणी ने मौलवी साहब के मन को झकझोर दिया। वे बहुत प्रभावित हुए और बोले—आपने कुछ भी बेजा नहीं कहा। लोगों की समझ की भूल है। आप बड़े सच्चे आलिम (ज्ञानी) और बेडर फकीर हैं। हमने आपका कीमती वक्त जाया किया, मुआफ कीजिए, हमें जाने की इजाजत बख्शिए।

मुनिश्री ने जरा गंभीर होकर कहा—मौलवी साहब ! आपने हमारा दो घंटे का समय लिया है, क्या उसकी कुछ कीमत भी नहीं चुकायेंगे ?

मौलवी साहब चौंककर बोले—क्या बातचीत करने व समय लेने की भी फीस लगती है ?

मुनिश्री—बेशक ! आप ही सोचिए, हमारी साधना का यह बहुमूल्य समय क्या फालतू है ? किसी का भी अमूल्य समय लेकर उसकी कीमत तो चुकानी ही चाहिए।

मौलवी—अच्छा, तो कितनी फीस है !

मुनिश्री मुस्करा कर बोले—मौलवी साहब ! हर बात को धन से नहीं तोला जाता। त्यागी साधुओं के समय की कीमत तो त्याग से ही होती है। जैन साधु धन की एक कौड़ी भी नहीं रखते। इसलिए आप कुछ न कुछ त्याग (निजम) लीजिए !

मुनिश्री की सूफियाना ढंग की बातें सुनकर मौलवी साहब जरा सकपका गये। फिर बोले, फरमाइए क्या त्याग करूं ?

मुनिश्री ने स्नेह-पूरित शब्दों में कहा—आपकी जैसी इच्छा हो वही त्याग कर दीजिए। यदि मुझसे पूछते हो तो आप जीवनभर के लिए 'मांस-भक्षण' का त्याग कर दीजिए।

मौलवी—इतना त्याग तो कर पाना मुश्किल है, लेकिन मैंने आपका दो घंटा का समय लिया, इसलिए दो महीने के लिए मांस खाने का त्याग कर देता हूँ।

मुनिश्री श्री ने हँसकर कहा—ऐसे नहीं चलेगा, आपको इस्लाम धर्म की विधि के अनुसार तोबा करना चाहिए।

मौलवी (सकुचाते हुए) वह तो······

मुनिश्री—तो क्या आप इस स्थानक को मस्जिद नहीं मानते ? देखिए, सब जगह मस्जिद मौजूद है। मस्जिद में पांच गुम्बज होते हैं। इस शरीर में भी एक मस्तक, दो कंधे और दो पैर—ये पाँचों अंग गुम्बज ही तो हैं। इन्हीं के आधार पर तो मस्जिद का आकार अंकित हुआ है।

मौलवी—जी हाँ, हम भी ऐसा ही मानते हैं।

मुनिश्री—तब कहिए यहाँ 'तोबा' करने में आपको संकोच क्यों हो रहा है ?

मुनिश्री की बात मौलवी साहब की समझ में आगई। वे मुस्करा कर बोले—आपका फरमाना ठीक है। और उसी समय पश्चिम में मुँह करके दोनों कान दोनों हाथों से पकड़कर तीन बार घुटने भूमि पर टेक कर दो महीने के लिए मांस आदि दुर्व्यसनों का 'तोबा' (त्याग) किया।

चारों सज्जन आये थे कुछ और ही भाव लिये, लेकिन गुरुदेव श्री के जादुई व्यक्तित्व, स्नेहिल स्वभाव और गंभीर ज्ञान-गरिमा से इतने प्रभावित हुये कि श्रावक की भांति त्याग-प्रत्याख्यान लेकर स्तुति करते-करते गये।

दरगाह में एकत्र सैकड़ों लट्ठधारी मौलवी साहब के इशारे की इंतजार में बेताब हो रहे थे। लगभग ढाई घंटे बाद जब वे लौटे तो पूछने लगे—कहिए। चलें ! क्या हाल है ?

मौलवी साहब ने उनको डांटते हुए कहा—भाइयो ! तुम क्या करने जा रहे हो ? वे तो बड़े आलिम (ज्ञानी) हैं। दरअसल उन्होंने कुरान शरीफ की तोहीन नहीं, तारीफ की। ऐसे औलिया फकीर से तो हमारा भला होगा।

मौलवी साहब के समझाने पर सभी का जोश ठंडा हो गया और कुटिल धर्मान्ध व्यक्तियों की चाल नाकामयाब हो गई।

वास्तव में गुरुदेव के जीवन का यह एक स्वर्णिम-प्रसंग है कि हमले के लिए उमड़ती हुई मुसलमान बिरादरी को उन्होंने अपने सत्यपक्ष, साहस और विवेक बल से स्तब्ध ही नहीं किन्तु अपना भक्त भी बना लिया। बहस करने आने वाले मौलवी साहब मांस आदि दुर्व्यसनों की कान पकड़ कर घुटने टेक कर तोबा करके गये।

इसीलिए तो कहा गया है—

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा,
सदसि वाक् पटुता युधिविक्रमः ।
यशसि नाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ।

—संकट के समय में धैर्य, उत्कर्ष के समय मैं क्षमा-गांभीर्य, सभा में वचन की चतुरता, युद्ध व संघर्ष के समय पराक्रम, यश के प्रति निस्पृह, शास्त्र-श्रवण में रुचि (लगन)—ये गुण महापुरुषों की प्रकृति में जन्मजात ही होते हैं ।

१३
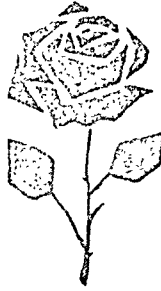
जैनों की क्षमा : वैष्णवों की भक्ति

□

स्वर्ण को कुन्दन बनने के लिए एक बार अग्नि-परीक्षा में से गुजरना पड़ता है। हीरे को निखार पाने के लिए एक दो बार शाण पर चढ़ना पड़ता है, पर पता नहीं, संतों को कितनी बार ऐसी अग्नि-परीक्षाएँ देनी पड़ती हैं, जिनमें उनका आत्मबल, धीरज, धर्म-श्रद्धा, सूक्ष्म-विवेक एवं सहिष्णुता को बार-बार निखरना पड़ता है। गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज का जीवन तो इस प्रकार की अग्नि परीक्षाओं की एक लम्बी कहानी ही बन गई। गाँधीजी की तरह बार-बार उनके जीवन में ऐसे विकट प्रसंग आये जिन पर सामान्य व्यक्ति धीरज खोकर कुछ ही कर बैठता। पर उन्होंने हर ऐसे प्रसंग पर बड़ी समयज्ञता, सहिष्णुता, उदारता और विवेकशीलता का परिचय दिया जिससे न केवल उनके निर्मल व्यक्तित्व में चार चाँद लगे अपितु जैन धर्म की गरिमा भी असाधारण रूप से बढ़ी। सरवाड़ का एक प्रसंग पिछले पृष्ठों पर अंकित है ही। उसके दो वर्ष बाद मसूदा में उससे भी विकट प्रसंग उपस्थित हुआ जिसमें गुरुदेव श्री की अद्भुत समयज्ञता ने चमत्कार दिखाया, और जैनधर्म के समन्वय-प्रधान जीवन दर्शन का साक्षात् अनुभव कराया।

गुरुदेव श्री धूलचन्द जी महाराज के साथ आपका वि० सं० १९८६ का चातुर्मास थाँवला में निश्चित हुआ था, लेकिन जब गुरुदेव श्री आषाढ़ महीने में पुष्कर पधारे तो श्री धूलचन्द जी महाराज साहब के पैर में अत्यधिक दर्द बढ़ गया। बाध्य होकर चातुर्मास पुष्कर में करना पड़ा। चातुर्मास में आपको श्वास का प्रकोप हो गया जिसके कारण भाद्रपद शुक्ला १४ को आपका स्वर्गवास हो गया। हमारे चरितनायक जी श्री पन्नालाल जी महाराज ने गुरुदेव को अन्तिम समय में हर प्रकार का आध्यात्मिक सहयोग दिया, जिस कारण संलेखना-संथारा युक्त समाधिमरण की कृतार्थता उन्हें प्राप्त हुई। श्री धूलचन्द जी महाराज के स्वर्गवास के पश्चात् सम्प्रदाय में आपसे बड़े

अन्य कोई सन्त नहीं रहे, अतः विधि रूप में भी शासन सूत्र आप श्री को ही संभालना पड़ा।

आप श्री ने वि० सं० १९८७ का स्वतन्त्र चातुर्मास मसूदा में स्वीकार किया। मसूदा के राव साहब श्री विजयसिंह जी आपके परम भक्त नरेश थे। आपकी प्रेरणा से उन्होंने मसूदा ठिकाने में सभी जलाशयों व सार्वजनिक स्थानों पर जीव-हिंसा न करने के पट्टे लगवा दिये थे। जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

गुरुदेव श्री के प्रवचन प्रायः सार्वजनिक होते थे। उनमें धार्मिकता के साथ सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना का स्वर भी मुखरित रहता था। वे मनुष्य को सम्प्रदाय के दायरे में नहीं बाँधकर विशुद्ध धर्माचरण की प्रेरणा देते जिस कारण जैन-अजैन—अग्रवाल, माहेश्वरी, राजपूत, जाट (किसान) और अन्य सभी वर्गों के लोग विशाल संख्या में प्रवचन सभा में उपस्थित होते थे।

तुलसा-बिन्दौली

चातुर्मास में आश्विन-कार्तिक मास में आप रात्रि में प्रवचन करते थे। दिन में अपने-अपने कार्यों में व्यस्त रहने वाले भावुक लोग रात्रि को निवृत्त होकर शान्तिपूर्वक प्रवचन श्रवण का लाभ लेते थे। आपका प्रवचन जैन मन्दिर के नीचे होता था। सभास्थल में हजारों नर-नारी खचाखच भरे रहते थे। पीछे भी अनेक श्रोता खड़े-खड़े प्रवचन सुना करते थे। रात्रि-प्रवचन में आपका मुख्य विषय 'रामायण' था। मर्यादा पुरषोत्तम राम के आदर्श जीवन को प्रतीक बनाकर आप जनता को कर्तव्य की प्रेरणा दिया करते थे।

चातुर्मास के आनन्द और प्रवचन के सरस प्रवाह में जनता आकण्ठ निमग्न थी। साढ़े तीन महीने क्षण जैसे व्यतीत हो गये। कार्तिक मास का शुक्लपक्ष चल रहा था। वैष्णव समाज में इन दिनों 'तुलसा-विवाह' का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। विवाह में जिस प्रकार बिंदौली निकलती है, उसी प्रकार तुलसा जी की भी बिंदोली रात को बड़ी धूम-धाम से निकलने लगी।

कार्तिक शुक्ला अष्टमी की रात्रि को गुरुदेव का रामायण के 'आदर्श चरित्र' पर भावपूर्ण प्रवचन हो रहा था। उपस्थित हजारों की जन मेदिनी भाव-विभोर होकर सुन रही थी। उसी समय तुलसा जी की बिन्दौली भी वहाँ होकर निकली। बाजे बज रहे थे और भक्तजन नाच रहे थे। बिन्दौली जैसे ही सभास्थल के पास आई तो वहीं रुक गई और खूब जोर से बाजे बजने लगे। फलस्वरूप ही श्रोताओं को प्रवचन सुनने में व्यवधान हुआ। पर, कुछ लोग शान्त रहे। कुछ लोगों को यह व्यवधान अखरा। एक बन्धु ने उन सज्जनों से कहा—"इससे हमें व्याख्यान सुनने में बाधा होती है, आप यहाँ पर बाजे न बजायें, बिन्दौली को जल्दी आगे ले जायें तो ठीक हो।" परिणामस्वरूप उस समय बाजे बन्द कर दिये गये।

जिस समाज में विश्वामित्र और वशिष्ठ होते हैं, उसमें 'नारद' भी मिल ही जाते हैं। कलहप्रिय व्यक्ति हमेशा ऐसे अवसरों की ताक में ही रहते हैं कि दो दलों, दो संप्रदायों में कुछ झगड़ा हो तो उन्हें मजा आये। शांति और प्रेम उनके लिए शोक का प्रसंग होता है, झगड़े-फिसाद का प्रसंग ही उनके लिए पर्व और आनन्द का अवसर होता है। वैष्णव समाज के कुछ नारद व्यक्तियों ने अब यह मौका देखा। वे जनता में यह भ्रामक प्रचार करने लगे "जैनों को हमारे धार्मिक रीति-रिवाज पसन्द नहीं है, उनके मन में ईर्ष्या है, जलन है, और वे हमारी धार्मिक गरिमा को नीचा करना चाहते हैं। इसीलिए तो तुलसा-बिन्दौली बन्द करने को कहा और अब जुलूस निकालने पर भी आपत्ति करते हैं।"

इस प्रचार का धर्म-प्रेमी जनता पर असर होना ही था, उनका धर्मोन्माद जाग उठा, वे जोश में आकर बोले—"हम अपने धर्म पर यह अन्याय नहीं सहन कर सकेंगे, भले ही हमारा रक्त बहे, सर फूटे या कुछ भी हो, किन्तु जैनों का यह अत्याचार बर्दाश्त नहीं करेंगे।" बस, बात का बतंगड़ बन गया। तिल का ताड़ बनाने वाले लोगों ने नगर का वातावरण क्षुब्ध व उत्तेजनापूर्ण बना दिया।

गुरुदेव श्री के कानों तक नगर की यह हलचल पहुँची। धर्मान्ध और कलह-प्रिय लोगों की मूर्खता-भरी इन बातों से गुरुदेव का हृदय भी कुछ खिन्न हुआ, पर साथ ही इन अज्ञान लोगों की स्थिति पर उनके कोमल हृदय में करुणा भी उमड़ आई। कुछ क्षण तक पूरी परिस्थिति पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया और फिर नगर के उन वैष्णव बन्धुओं को बुलाया, जिनके अत्याग्रह पर ही बाजार में रामचरित्र का व्याख्यान प्रारम्भ किया था। गुरुदेव ने उनसे कहा—आप लोग अपने समाज के प्रतिनिधि हैं। आपके चाहने पर हमने रामचरित्र पर सार्वजनिक व्याख्यान देना आरम्भ किया। रामायण में राम के आदर्श जीवन का ही प्रकरण है। हम वास्तव में राम की यशोगाथा का गान करते हैं, और इधर तुलसा जी की बिन्दौली भी उसी से सम्बन्धित है। अतः मेरे विचार में दो-चार दिन जब तक तुलसा जी की बिन्दौली चल रही है, व्याख्यान बन्द रखा जाये तो ठीक रहेगा। यह कार्यक्रम पूर्ण होने के पश्चात् पुनः व्याख्यान प्रारम्भ किया जा सकता है।'

नगर के प्रमुख वैष्णव बन्धुओं ने गुरुदेव से प्रार्थना की—"ऐसी कोई बात नहीं है। फिर आपका मधुर और प्रेरणादायी प्रवचन सुनने को दूर-दूर से सैकड़ों ग्रामीण बन्धु भी आते हैं। सभी को प्रवचन रुचिकर लगता है, इसे बन्द नहीं करायेंगे।"

गुरुदेव—प्रवचन प्ररणाप्रद है, यह तो ठीक है किन्तु समाज में उसे कारण बनाकर मनमुटाव व सांप्रदायिक भेदभाव पैदा करने की कुचेष्टा की जा रही है, यह मुझे कतई पसन्द नहीं है। मैं ऐसा नहीं चाहता कि एक शांतिप्रिय समन्वय धर्मी संत को लेकर जैन-वैष्णव का भेदभाव खड़ा करने की कोशिशें हों…

सभी बन्धुओं ने गुरुदेव को विश्वास दिलाया कि हम वातावरण को बिगड़ने नहीं देंगे। दोनों ही संप्रदायों में परस्पर प्रेम-भाव का जो वातावरण बना है उसे स्थिर रखेंगे;

रहा, तुलसा जी की बिन्दौली का प्रश्न, तो व्याख्यान समाप्त होने के पश्चात् बिन्दौली निकल जायेगी।"

मसूदा के राव साहब भी गुरुदेव के भक्त थे, वे उन दिनों बाहर थे, और राज-काज तहसीलदार भूरालाल जी पुरोहित ही चला रहे थे। नगर के गर्म वातावरण की उनको भी सूचना मिली। गुरुदेव के कार्यक्रम में किसी भी प्रकार की बाधा उपस्थित हो यह उन्हें कतई बर्दाश्त नहीं था। कुटिल लोगों की चाल वे समझ रहे थे, अतः उन्हें अपने कार्यालय में बुलाकर जरा डांटा-डपटा और बिन्दौली बन्द रखने का सरकारी आदेश दे दिया।

म्याऊँ के सामने कौन चूं करे! वहाँ तो सभी भीगी बिल्ली बन गये, और बिंदौली बन्द रखने पर सहमति देकर आ गये। किन्तु इस आदेश से उनके मन में विद्वेष की आग और अधिक भड़क उठी। साधारण जनता को भी बरगलाना शुरू किया—"देखो, जैनों ने हमारा धार्मिक उत्सव भी बन्द करवा दिया है।" बस, धर्म खतरे में, का नारा लगा और जनता भड़क उठी। फल यह हुआ कि सरकारी आदेश की अवज्ञा कर बिंदौली निकालने का निर्णय हुआ, और सैकड़ों लोगों को धर्म की रक्षा के लिए लाठी आदि शस्त्रों से सज्ज कर दिया गया। ईंट का जबाव पत्थर से देना भी कुछ बात होती है, किन्तु बिना कंकर उठाये ही गोली चलाने की बात कितनी मूर्खतापूर्ण है? सामान्य जनता को इसी मूर्खता की राह पर चलने को विवश किया जा रहा था।

नगर की इस विषम परिस्थिति से जैन समाज भी बेखबर नहीं था। कुछ लोग घबराये हुए से गुरुदेव के पास आये और बोले—महाराज! अब क्या होगा?

गुरुदेव ने उनको आश्वस्त करते हुए कहा—आप लोग घबराते क्यों हैं? समस्या उलझने पर उसका कोई-न-कोई हल भी निकलेगा ही। सबसे पहली बात यह है कि यह हमारी नहीं, किन्तु आप लोगों के धीरज और विवेक की परीक्षा का समय है। आप सब शाँत रहे, विचलित न हों और सब कुछ तटस्थ भाव से देखते रहें। हम द्वेष और विरोध फैलाना नहीं चाहते तो कोई दूसरा चाहे जितना प्रयत्न करे, हमें उसमें घसीट नहीं सकता। मुझे मालूम है, वातावरण काफी दूषित हो गया है, स्थिति काफी विस्फोटक बन रही है लेकिन हमें पानी बनकर रहना है।

गुरुदेव श्री ने स्थानीय जैन समाज को पूर्ण अनुशासित रहकर संयम से काम लेने की शिक्षा दी। फिर वे एकान्त में बैठकर स्थिति पर चिन्तन करने लगे। उन्हें बड़ा आश्चर्य हो रहा था, जिस जनता के प्रति उनके मन में सदा ही स्नेह, प्रेम और उपकार की पावन धारा बहती रही, वह अकारण-द्वेषी बनकर हिंसा और तोड़-फोड़ पर उतारू हो रही है, यह कितनी विचित्र बात है। किन्तु यह सच है कि सत्य हमेशा कड़वा होता है। दूसरों के रुष्ट-तुष्ट होने की परवाह किये बिना जो संत, भलाई और सुधार की बात करता है उसे इस प्रकार के संघर्षों और तूफानों का सामना करना पड़ता ही है। भगवान महावीर ने जिन लोगों के कल्याण के लिए प्रयत्न किया है उनमें से किसी ने

उन पर पत्थर फेंके, किसी ने उनके पीछे शिकारी कुत्ते लगाये तो किसी ने उन पर क्रूर प्रहार किये। इतिहास का यह कटु सत्य है कि साधु जीवन में, और विशेषकर उन साधुओं के जीवन में, जिन्होंने समाज-सुधार का बीड़ा उठाया, जो मानवता के नव-जागरण का झंडा लेकर चले उन्हें इस प्रकार के संत्रास और अपमान भोगने ही पड़े, वास्तव में ये कठोर प्रसंग उनके धीरज, धर्म और विवेक की परीक्षा की कसौटी सिद्ध हुए हैं। आज भी एक सुधारक संत की अग्नि-परीक्षा का समय है फिर घबराने की तो बात ही क्या थी!

कहा गया है—

घृष्टं घृष्टं पुनरपि पुनश्चन्दनं चारुगन्धं,
छिन्नं छिन्नं पुनरपि पुनः स्वादु चैवाक्षुदण्डम्।
तप्तं तप्तं पुनरपि पुनः काञ्चनं कान्तवर्णं,
व्याघातेऽप्युज्ज्वलति हि महा मानवानां महत्त्वम्।

बार-बार घिसा जाने पर भी चन्दन सुगन्ध देता है, टुकड़े-टुकड़े किये जाने पर भी इक्षुखंड मधुरता ही देता है। सोना बार-बार अग्नि में डालने पर भी और अधिक निखरता है। महामानव बार-बार विघ्नों से लड़कर ही जीवन में अत्यधिक गौरवास्पद होते हैं।

इस प्रकार दिन हलचल और क्षोभ भरे वातावरण में गुजर गया। संध्या हुई। रात का गहन अन्धकार काली चादर की भाँति पृथ्वी पर छा गया। व्याख्यान के समय पर मुनि श्री प्रवचन सभा में पहुँचे। अन्य दिनों से आज उपस्थिति कुछ अधिक थी और श्रोताओं में उत्सुकता व अकुलाहट भी। गुरुदेव ने सदा की भांति शांत एवं स्थिर चित्त के साथ व्याख्यान प्रारम्भ किया। उनकी वाणी में वही गर्जना और वही स्थिरता थी। रामचरित के प्रसंग को लेकर उन्होंने राम की सहिष्णुता और धैर्य की अभ्यर्थना करते हुए श्रोताओं को उस आदर्श पर चलने की सबल प्रेरणा देना प्रारम्भ किया।

लगभग आधा घन्टा हुआ होगा कि तुलसा जी की बिंदौली के बाजे धूम धमाका करने लगे। आज की बिन्दौली भी आम दिनों की भाँति निकलने वाली साधारण बिन्दौली नहीं थी, उसकी सजावट कसावट कुछ विशेष थी और उसके साथ लगभग पाँच सौ लट्ठधारी युवक चल रहे थे किसी विशेष तैयारी के साथ…

बिन्दोली व्याख्यान स्थल पर आ पहुँची, बड़ी धूमधाम से बाजे बज रहे थे। उत्तेजना और तनाव की स्थिति अपनी चरम बिन्दु पर पहुँच चुकी थी, यही क्षण घटना का निर्णायक क्षण था, और अहिंसा व शांति-प्रेमियों के धैर्य व धर्म की परीक्षा का काल था। ऐसी उत्तेजनापूर्ण स्थिति में मस्तिष्क का सन्तुलन खो देने से व जोश में आ जाने से हजारों व्यक्तियों के सिर फूटने व कितने ही निरपराधों के धराशायी हो जाने की संभावना थी। सांप्रदायिक द्वेष की आग प्रचण्ड होकर धधकने की पूरी संभावना बन रही थी, प्रतीक्षा थी—इस सूखी घास को कोई चिनगारी दिखा दे या पानी बनकर वर्ष पड़े।

गुरुदेव श्री ने स्थिति का जायजा ले लिया। उनके चेहरों पर हिंसा, द्वेष और प्रतिशोध के भाव उभर रहे थे। हाथों में लाठियाँ चमक रही थीं। शस्त्रों से शस्त्र भिड़ने में कोई देर नहीं थी, किन्तु देर थी शस्त्र से अशस्त्र की लड़ाई में, आग से जूझने के लिए पानी बरसने में। हिंसा की लपलपाती चंडालिनी को विजय करने गुरुदेव ने अहिंसा का मंत्र पाठ प्रारम्भ कर दिया। सबसे पहले आपने श्रोताओं से कहा—

"आप सब लोग शांत रहेंगे, कोई भी कुछ न बोलेगा। बिंदोली निकालने वाले भी आपके भाई-बंद हैं, भाई-भाई के साथ झगड़ना शोभा नहीं देता। आप महाभारत नहीं, रामायण सुन रहे हैं, भाई-भाई के प्रेम की कहानी आपको सुनाई जा रही है। भाई यदि अपने भाई के साथ अभद्र, अशिष्ट और अप्रिय व्यवहार भी करे तो भी उत्तेजित नहीं होना, उसका अहित न सोचना, यह भाई का कर्तव्य है। मुझे पूरा विश्वास है आप लोग भाई के इस आदर्श को आज सजीव करेंगे।"

तब तक पाँच सौ शस्त्रधारियों के साथ उत्तेजित भीड़ बिंदोली के रूप में गुरुदेव श्री के प्रवचन मंच के बहुत नजदीक आ गई थी। बाजों का कर्णभेदी कोलाहल गगन को भेद रहा था। उत्तेजित लोग नाच-नाच कर गा रहे थे, और गाना गाने में तानाकशी भी करते जा रहे थे। गुरुदेव मौन थे, सभा शाँत थी। भले ही श्रोताओं के हृदय सागर में तूफान उठ रहा हो, पर ऊपर से सब शाँत थे सिनेमा घर में बैठे मूक दर्शकों की भाँति।

लगभग ३० मिनट तक उस भीड़ ने खूब शोरगुल मचाया, बाजे बजे, नाच-गाने होते रहे, पर उस नाच-गान में भक्ति की बजाय, उन्माद और पर-पीड़न की भावना ही अधिक थी; किन्तु वह सफल कैसे हो पाती? एक हाथ से ताली नहीं बजती। समुद्र में फेंका हुआ कंकर-पत्थर आवाज नहीं करता। उसी प्रकार गुरुदेव एवं सभागत श्रोताओं की ओर से उस प्रदर्शन एवं उत्तेजनापूर्ण नृत्य का कोई भी प्रत्युत्तर नहीं दिया गया। उनकी लाठियाँ झुकी ही रहीं और भुजाओं की खुजली भी नहीं मिटी। कुटिल जनों की सिर फुटौवल करने की चाल असफल हो गई। उनके बुरे इरादों पर पानी फिर गया। उदास, बेबस और मन-ही-मन बुदबुदाते वे लोग थके-हारे आखिर आगे चले गये। क्रोध पर क्षमा की विजय दुंदुभि बज उठी। अविवेक का राक्षस विवेक देवता के समक्ष टिक नहीं पाया।

मुँह पर गुरुदेव की दीर्घदृष्टि, विवेकशीलता और अद्‌भुत सहिष्णुता की महिमा मुखर हो रही थी।

गुरुदेव ने जनता को सम्बोधित कर कहा—क्षमा ही मनुष्य को महान बनाती है, कायर और मूर्ख व्यक्ति क्षमा नहीं कर सकता। **'क्षमा वीरस्य भूषणं'**–के अनुसार यह स्पष्ट ही है कि वीर ही क्षमा कर सकता है, वही प्रतिकूल परिस्थितियों में आत्म-संयम रख सकता है, विकट से विकट परिस्थिति में भी अपना ज्ञान दीपक, विवेक की ज्योति प्रज्वलित रखकर वह ज्योति-पथ पर अविरल चलता रहता है। जैनों ने क्षमा के आदर्श को जीवन में उतारा है इसका प्रमाण आप परसों देख ही चुके होंगे, मैं अपने सभी बन्धुओं से इस वीर-धर्म को अपनाने की प्रेरणा देता हूँ।

क्षमा के बाद जीवन में भक्ति का स्थान है। प्रतिकूल स्थितियों में मनका संतुलन बनाये रखने में क्षमा जितनी सहायक है भक्ति भी उतनी ही बलप्रदा है, भक्ति हमें आत्म-रमण की ओर खींचती है, इष्टदेव के प्रति सर्व समपर्ण करने की शक्ति प्रदान करती है। भक्त अपना अस्तित्व प्रभु में विलीन कर देता है। मैं अपने वैष्णव बन्धुओं से कहना चाहता हूँ कि उन्होंने दो दिन पूर्व इस सभास्थल पर जिस प्रकार की उदग्र भक्ति का प्रदर्शन किया, भजन में जिस तल्लीनता और मस्ती का परिचय दिया—यदि वैसी भक्ति उनके जीवन में, अन्तर मन में समा जाये तो आत्म-कल्याण का द्वार ही खुल जाय।"

गुरुदेव श्री के इस मधुर भाषण से श्रोता दंग रह गये। जिस अवांछनीय घटना पर सबको रोष-क्षोभ आया था और वे गुरुदेव से भी यही सुनने की प्रतीक्षा कर रहे थे, वहाँ उसी घटना को लेकर रोष के स्थान पर तोष, क्षोभ के स्थान पर प्रशंसा करते हुए गुरुदेव को देखकर वे भाव-विभोर हो उठे। यही तो संत का स्वभाव है—**'विषादप्यमृतं ग्राह्यं अमेध्यादपि कांचनं'**—विष में से भी अमृत खींचना और गन्दगी से भी सोना ग्रहण करना यही तो है संत जीवन का चमत्कारी स्वभाव!

गुरुदेव के भाषण ने चमत्कार दिखाया। प्रदर्शन का आयोजन करने वाले और उसमें भाग लेने वाले लोग मन-ही-मन लज्जित हो उठे। पश्चात्ताप की प्रबल हुँकार ने उनकी मानवता को जागृत कर दिया। वे उसी सभा के बीच उपस्थित होकर गुरुदेव से क्षमा मांगने लगे–महाराज! हमारी नादानी ने एक भयंकर वातावरण का निर्माण कर दिया था, मगर आपने अपूर्व सहिष्णुता शांति और विवेकशीलता का परिचय देकर हमें एक अक्षम्य अपराध से बचा लिया, अन्यथा कितने मनुष्यों के सिर फूट जाते, कितना नर रक्त बहता…!

आपकी शाँति ने हमारे अन्तर हृदय को बदल दिया है, हमारे हिंसा दैत्य को अहिंसा की देवी के चरणों में झुका दिया है–हम आप से क्षमा मांगते हैं, हमारा अपराध अक्षम्य है, आप जो चाहें हमें दण्ड दें…!

गुरुदेव श्री ने वैष्णव बंधुओं को सम्बोधित कर इतना ही कहा—खैर, आप लोगों ने जो किया मैं उसके मूल में भी आपकी भक्ति-प्रेरणा ही मानता हूँ, फिर भी आप दण्ड

की बात करते हैं तो दण्ड भी देना ही चाहिए पर यह दण्ड व्यक्ति को न देकर उस अहंकार और द्वेष के दैत्य को मिलना चाहिए जिसने आप लोगों को भटका दिया था, इसके लिए मैं यही चाहता हूँ कि आपके नगर में जैन-वैष्णव साथ-साथ रहते हैं, दोनों ही भाई-भाई हैं, पर कुछ कारणों से मनों में मालिन्य और विचारों में तनाव आ गया है, उसे मिटा कर प्रेम का वातावरण निर्माण करें, एकता और बंधुता की भावना जगायें—यही दण्ड आपके लिए उपयुक्त होगा…!

गुरुदेव की प्रेरणा से दोनों समाज का वर्षों पुराना मनोमालिन्य धुल गया, द्वेष और अहंकार की गाँठें खुल गईं। तेरा-मेरा का जहर समाप्त हो गया और पुनः नगर में प्रेम, एकता और बंधुता की मधुर शीतल पवन ने जन-जीवन को आनन्दित बना दिया।

यही तो है संतों की महिमा। जहाँ आग बरसने वाली है वहाँ शीतल जलधारा बहा देते हैं, जहाँ नर-रक्त की होली जलने वाली हो, वहां प्रेम की वृष्टि कर देते हैं। गुरुदेव श्री ने ऐसे अनेक अलौकिक कार्य किए जिनमें उक्त घटना का ऐतिहासिक महत्व सम्पूर्ण मानवता के लिए वरदान रूप में स्मरण किया जाता रहेगा।

१४
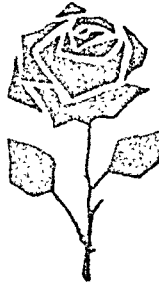
धर्माधिकारी का दायित्व

□

विश्व में प्रत्येक धर्म मानव-समाज में आई हुई विकृतियों- बुराइयों और अनिष्टों को मिटाने के लिए आता है। गांधीवादी तत्त्व-चिन्तक श्री किशोरलाल मश्रुवाला के शब्दों में, धर्म का लक्षण ही यह है, 'जो समाज का धारण, पोषण और सत्त्व-संशोधन करता हो।' इस परिभाषा के अनुसार यह स्वाभाविक है कि धर्म आपस में होती हुई सिरफुटौव्वल को रोके, कलह-संघर्ष और विवादों का अन्त करे और मनुष्यों के टूटे हुए या टूटते हुए दिलों को जोड़े। जहाँ कहीं भी, किसी भी कारण से अशान्ति पैदा हो रही हो, आपस में मनमुटाव होने से लोग अदालतों में हजारों रुपये फूंक कर, वकीलों के चक्कर में पड़कर, सत्य-असत्य की मर्यादा को लांघ कर वर्षों तक आपस में मुकद्मा लड़ रहे हों, वहाँ धर्म का यह दायित्व हो जाता है कि उस अशांति की आग को बुझाये, मुकद्मेबाजी से जनता को बचाकर आपस में सुलह कराए, विवाद आपस में निपटाकर दिल में हुए घावों पर सान्त्वना की मरहमपट्टी करे।

धर्म का काम यह नहीं है कि जनता को परस्पर लड़ाए-भिड़ाए और तमाशा देखता रहे। वह धर्म, धर्म नहीं है, जो बढ़ती हुई संघर्ष की आग को खड़ा-खड़ा देखता रहे, समाज में बढ़ते हुए पारस्परिक झगड़े को देखकर उपेक्षा करदे या उदासीन बन कर चुपचाप रहे। जो धर्म बहन-बेटियों पर अत्याचार होते देख कर या गरीबों पर अन्याय होते देखकर अथवा परस्पर संघर्ष होते देख कर हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहने की आज्ञा देता है, वह धर्म कायरों और स्वार्थियों का धर्म है। ऐसा धर्म देवलोक के देवों या नरक के निवासियों के लिए कदाचित् उपयोगी हो सकता है, परन्तु मानवलोक के निवासियों के लिए वह किसी भी काम का नहीं है। इसीलिए ऐसे धर्म को कार्लमार्क्स ने 'अफीम' की संज्ञा दी थी, जो मनुष्यों को साम्प्रदायिकता का नशा चढ़ा कर या जाति, कौम या सम्प्रदाय की उत्कृष्टता की शराब पिलाकर आपस में लड़ा-भिड़ादे, मगर लड़ते हुए लोगों को शान्त न कर सके।

सचमुच धर्म अमृत की तरह मानवजाति को संजीवित करने वाला, लड़-भिड़ कर नष्ट होने से बचाने वाला, आपस में भ्रातृत्व और बन्धुत्व से रहना सिखाने वाला है। इसकी आवश्यकता मनुष्य जाति को सदा-सदा के लिए रही है, और रहेगी।

परन्तु धर्म अपने-आप कोई सचेतन व्यक्ति न होने से धर्म का जो भी दायित्व है, वह आता है—धर्म के पालन करने वाले धर्म-धुरंधरों पर, धर्म के सर्वोच्च आचरण करने वाले धर्मात्माओं व धर्म-गुरुओं के कंधों पर।

'न धर्मो धार्मिकैर्विना' अर्थात् धर्मात्माओं के बिना धर्म रहता नहीं, टिकता नहीं। युग-युग में ऐसे धर्मधुरीणों ने धर्म के पूर्वोक्त दायित्वों का बखूबी निर्वाह किया है, उन्होंने समय-समय पर परस्पर संघर्षरत मानवों को एकसूत्र में जोड़ा है और कलहपरायण एवं क्रुद्ध इन्सानों को लड़ते हुए रोक कर शान्ति का पाठ पढ़ाया है, टूटे हुए दिलों को प्रेम के सूत्र से जोड़ा है और धर्म की महिमा बढ़ाई है। उन्होंने इस प्रकार के महत्त्वपूर्ण शान्ति के कार्य करके भी उसका श्रेय स्वयं न लेकर धर्म को ही दिया है। स्वयं निरभिमानी, नम्र, निःस्पृही और निर्मोही रहे हैं।

धर्म के इन सब दायित्वों को निभाने वालों में से एक थे—हमारे चरितनायक श्री पन्नालालजी महाराज। आप जब भी यह सुन लेते कि अमुक जगह दो पार्टियाँ बन गई हैं, अमुक जगह लोगों में परस्पर मनमुटाव, खींचातानी, संघर्ष और मुकद्दमेबाजी है, उसके कारण अशान्ति बढ़ रही है तो आप शीघ्र ही वहाँ पहुँच जाते और अपने त्याग, तप, वचन और व्यक्तित्व के प्रभाव से दोनों पक्षों का समाधान करके आपस में सुलह और शान्ति स्थापित करा देते। इतना सब कराने के बावजूद भी आप उसका श्रेय स्वयं न लेकर धर्म को ही देते। आपके साधु-जीवनकाल में ऐसी अनेकों घटनाएँ घटित हुई हैं, जिनमें आपने धर्मधुरंधर बन कर धर्माधिकारी का दायित्व निभाया है, पारस्परिक झगड़ों को मिटा कर।

दो धड़े मिट कर एक हुए

इसका एक ज्वलन्त उदाहरण वि० संवत् १९८७ के मसूदा चातुर्मास में जैनों और वैष्णवों के बीच तुलसा-विवाह के निमित्त निकाली जाने वाली बिंदोली को लेकर होने जा रहे उग्र कलह को गुरुदेव श्री द्वारा सहिष्णुता और शान्ति से निपटाने का था। इसी चातुर्मास में गुरुदेव श्री के निमित्त से एक और झगड़ा शान्त हुआ।

बात यह थी कि मसूदा में माहेश्वरी समाज में किसी छोटी-सी बात को लेकर वर्षों से परस्पर वैमनस्य चला आ रहा था। असल में वैमनस्य का बीज बहुत ही सूक्ष्म होता है, परन्तु समाज के कुछ पदलोलुप या निहित स्वार्थी लोग उसे बढ़ावा देते रहते हैं। यही बात इस मामले में थी। कुछ निहित स्वार्थी एवं पदप्रतिष्ठालोलुप लोगों ने अपने-अपने पक्ष के लोगों को उभारना शुरू किया। इस कारण बाजी सुधरने के बजाय, बिगड़ती ही चली गई। और अन्त में माहेश्वरी समाज में दो धड़े (गुट) हो गये। दोनों धड़ों में यदा-कदा विवाह-शादी या अन्य पर्वों, या उत्सवों पर ठन जाती थी।

दोनों पक्षों—के अगुआ लोग स्वार्थलिप्त होकर उस फूट को और ज्यादा प्रोत्साहन देते रहते थे। दोनों पक्षों के दिलों में वैमनस्य की आग घर कर चुकी थी। जो भी शान्त करने जाता, उसे दोनों पक्ष के नेता उलटी-सीधी सुनाकर हतोत्साहित कर देते थे।

गुरुदेव श्री के कानों में दोनों पक्ष के कुछ सरल-हृदय लोगों ने आकर इस झगड़े को शांत करा देने के लिए प्रार्थना की। गुरुदेव ने दोनों पक्ष के अगुआओं को अलग-अलग बुलाकर सारी बातें उनसे सुनी। दोनों पक्षों की एक-दूसरे के प्रति शिकायत केवल अपने अहं की थी। गुरुदेव ने दोनों की नब्ज टटोल ली। और दोनों पक्षों के नेताओं से कहा—"भाइयो! बात मामूली-सी है। तुम दोनों मेरे समक्ष पहले यह प्रतिज्ञा कर लो कि मैं जो फैसला दूंगा, उसे हम मान्य करेंगे।"

दोनों पक्ष के अग्रगण्यों को गुरुदेव पर पूरा विश्वास था। वे इस चातुर्मास में गुरुदेव की धीरता, गंभीरता सहनशीलता, शान्तिपरायणता एवं प्रवचनपटुता से प्रभावित हो चुके थे। अतः दोनों पक्ष के अगुआओं ने खड़े होकर हाथ जोड़ कर स्वीकार किया कि आप जो भी फैसला देंगे हम उसे सहर्ष स्वीकार करेंगे और उसका पालन अरेंगे।" बस, अब क्या था! संवत् १९८७ के चातुर्मास की समाप्ति पर आपने निष्पक्ष न्याययुक्त फैसला दे दिया। फैसला सुनकर दोनों पक्षों में हर्ष की लहर फैल गई। दोनों धड़े के लोग एक-दूसरे को गले लगा कर मिले। एक-दूसरे के यहाँ भोजन किया। और इस तरह यहाँ के माहेश्वरी समाज में वर्षों से चल रहे वैमनस्य को आपने अपने प्रभाव से मिटा दिया। कषायों की भड़की आग को कुशलता-पूर्वक शान्त किया।

यह था आपका धर्माधिकारी के रूप में दायित्व निर्वाह का नमूना!

वास्तव में इस प्रकार की पारस्परिक शान्ति स्थापित करने का कार्य बड़ा कठिन है। इसे वही साधक सफलतापूर्वक सम्पन्न कर सकता है, जिसमें युक्ति, लगन वाणी और तप का प्रभाव हो। गुरुदेवश्री पन्नालालजी महाराज इस कार्य में सिद्धहस्त थे। उन्होंने अपने जीवन-काल में कई जगह बड़े-बड़े पेचीदा झगड़े बात-की-वात में मिटा दिये थे।

ऐसी ही एक घटना कंवलियास गाँव की है। संवत् १९९२ का चातुर्मास भीलवाड़ा में बिता कर आप श्री विचरण करते-करते कंवलियास पधारे। आप जहां भी पधारते, लोगों में नवचेतना जागृत हो जाती। आपकी धाक और वाणी की तेजस्विता चुम्बक की तरह इतनी अद्भुत थी कि लोग वरबस खिंचे चले आते थे। कंवलियास की भावुक जैन-जैनेतर जनता ने आपका भावभीना स्वागत किया। परन्तु जैन लोगों के चेहरों पर मायूसी छाई हुई थी। वे अन्यमनस्क-से होकर आपश्री के प्रवचन सुनने आते थे। गुरुदेव श्री मानवमन के पारखी थे। उन्होंने लोगों के चेहरों पर से भांप लिया कि यहाँ कुछ-न-कुछ दाल में काला है। अतः दूसरे ही दिन गुरुदेव श्री ने प्रवचन के बाद कुछ अगुआ लोगों को एकान्त में बुलाकर पूछा—"भाइयो! गुरुओं के सामने झूठ

बोलना और उनसे कोई बात छिपाना महापाप है। मैं आपसे जो कुछ भी पूछूं उसके बारे में सच-सच बताओगे न ?"

वे बोले—"हां, गुरुदेव ! जो भी बात होगी, हम आपसे सत्य कहेंगे। आप गुरु हैं, आपके सामने हम झूठ नहीं बोलेंगे।"

गुरुदेव—"तुम्हारे चेहरों पर से ऐसा लगता है कि तुम्हारा उत्साह बहुत ही मंद पड़ गया है। तुम्हारे चेहरों पर कोई रौनक, कोई प्रसन्नता या कोई उमंग नहीं दिखाई देती। व्याख्यान में भी तुम लोग बहुत थोड़े-से आते हो। व्याख्यान सुनते भी हो तो सूने मन से। ऐसी क्या बात हो गई, जिससे तुम लोग इतने उत्साह-हीन हो रहे हो ?"

श्रावक लोग—गुरुदेव ! आपका अनुमान सही है। हम लोग कई वर्षों से इस प्रकार अनमने से और बुझेदिल के हो रहे हैं। इसका कारण यह है कि हमारे यहां वर्षों से समाज में आपसी मनमुटाव के कारण दो धड़े (गुट) पड़े हुए हैं। हमने बहुत प्रयत्न कर लिये, लेकिन यह झगड़ा किसी तरह नहीं मिटता है। इसी कारण न तो हमारा धर्म-कार्य में उत्साह है, न किसी साधु-साध्वी का चौमासा कराने की कोई पहल करता है और न ही व्याख्यानादि-श्रवण में ही हमारा चित्त लगता है। यहाँ तक कि विवाह, मृत्यु-भोज या अन्य किसी उत्सव प्रसंग पर एक-दूसरे पक्ष के व्यक्तियों का एक-दूसरे के यहाँ जाना-आना तक भी बन्द है, परस्पर बोलना भी प्रायः कम है। क्या करें, हमारा दुर्भाग्य है !"

गुरुदेव—भाइयो ! अपने दुर्भाग्य का रोना क्यों रोते हो ? तुम्हें वीतरागदेव मिले हैं, निर्ग्रन्थ निःस्पृह धर्मगुरु मिले हैं, और उत्तम जैन-धर्म मिला है। प्रयत्न करने से सभी समस्याओं का हल निकल आता है। तुम लोग हतोत्साहित मत बनो। और इस वैमनस्य को आपस में बैठ कर निपटा लो।"

श्रावक लोग—"गुरुदेव ! जाति-बिरादरी के पंचों से यह झगड़ा निपट जाता, तब तो बात ही क्या थी ! हमारे साधारण आदमियों के परस्पर मिलकर बैठने से तो यह समस्या कतई हल नहीं होती। उलटे, पास में बैठते ही व्यर्थ का वितंडावाद बढ़ा कर लोग झगड़े को उग्र रूप दे देते हैं। आप ही इस झगड़े को शान्त कराने की कृपा करें। हमने सुना है कि आपने कई जगह जटिल से जटिल विवादों का सर्व स्वीकार्य समाधान कराया है। बड़ी कृपा होगी, यदि आप इस मामले को सुलझा दें। हम आपके बहुत ही एहसानमन्द होंगे।"

गुरुदेव—"देखो भाइयो ! प्रयत्न करना मेरा धर्म है। मैं शान्ति का उपासक हूँ और भरसक प्रयत्न करूँगा, जिससे तुम्हारे दोनों धड़ों (पक्षों) में चल रहा आपसी मन-मुटाव समाप्त हो जाय और तुम दोनों महावीर के पुत्र प्रेमभाव से मिल कर रहो।"

गुरुदेव श्री ने पहले तो दोनों पक्ष के लोगों से अलग-अलग बातचीत करके झगड़ा मिटाने के लिए समझाया। परन्तु यहाँ तो भेद (फूट) का पक्का रंग लगा हुआ था, अभेद (प्रेम) होता कैसे ? कोई भी अपनी पकड़ी हुई बात छोड़ने को तैयार न था।

दोनों पक्ष के अगुआओं का प्रायः यही उत्तर होता—अगर वे हमारी अमुक बात मान लें तो हम अपनी बात छोड़ने को तैयार हैं।" दोनों ही पक्ष के लोग अपनी जिद्द पर अड़े हुए थे। कोई भी अपनी पकड़ी हुई बात को बिना शर्त छोड़ने को तैयार न था। आखिर गुरुदेवश्री ने सोचा कि इनके लिए रामबाण उपाय यही है कि ये लोग कुछ दिन लगातार व्याख्यान सुनें। तब कहीं जाकर इनके दिल-दिमाग में एकता की बात जम सकती है। अतः उन्होंने दोनों पक्ष के अगुआओं तथा कुछ खास खटपटियों से कहा—"मेरी एक बात मानोगे ?"

वे बोले—"क्यों नहीं मानेंगे ? अवश्य मानेंगे ! कहिए क्या बात है महाराज ?"

गुरुदेव—"यह नियम लो कि जब तक मैं यहाँ रहूँ, तब तक किसी अनिवार्य कारण के बिना प्रतिदिन व्याख्यान सुनना।"

सब लोग—"गुरुदेव ! हम गृहस्थ हैं, कई इधर-उधर के काम आ जाया करते हैं, फिर भी हम आपको विश्वास दिलाते हैं, हम प्रतिदिन आपका व्याख्यान सुनने का प्रयत्न करेंगे।"

दूसरे ही दिन से गुरुदेव श्री के व्याख्यान में प्रतिदिन अधिकाधिक संख्या में दोनों पक्ष के भाई-बहन आने लगे। गुरुदेव अपनी ओजस्वी वाणी से संगठन पर प्रवचन देने लगे। दोनों ही पक्ष के लोगों पर आपके प्रवचन का सीधा असर होता था। एक दिन तो गुरुदेव ने प्रवचन में यहाँ तक कह दिया कि जो अपने साधर्मी भाइयों के साथ छोटी-छोटी बातों को लेकर कलह करता है, वैमनस्य बढ़ाता है और संघ में फूट बनाये रखता है, एकता के लिए किये गये प्रयत्नों में रोड़े अटकाता है, उसके सम्यक्त्व में सन्देह है, वह एक प्रकार से संघ का द्रोही बनता है, और महापाप का भागी होता है। कई दफा अपनी-अपनी झूठी बात की पकड़ एवं खींचातानी से महामोहनीय-कर्म बंध जाता है। भाइयो ! अब तुम ही सोच लो कि तुम्हें अपने सम्यक्त्वरत्न को खोना है या रखना है ? जानबूझ कर पापकर्म में पड़ना है या धर्म-कार्य में उत्साहपूर्वक जुटना है ? अगर तुम्हें महादुर्लभ सम्यक्त्वरत्न को सुरक्षित रखना है और आपसी मनमुटाव एवं अनैक्य के कारण ठप्प हुए धर्मकार्यों को उत्साहपूर्वक आगे बढ़ाना है तो आज ही दोनों पक्षों (धड़ों) के अगुआ लोग मुझसे मिल कर परस्पर प्रेमभाव और शान्तिभाव स्थापित कर लो।"

गुरुदेव के ओजस्वी प्रवचन ने सबका हृदय झकझोर दिया। दोनों पक्षों के लोगों ने खड़े होकर व्याख्यान के बाद गुरुदेव की सेवा में एकत्र होना एकस्वर से स्वीकार किया। फलतः व्याख्यान के बाद जैनस्थानक में ही दोनों धड़ों के अगुआ लोग गुरुदेव की सेवा में उपस्थित हुए।

गुरुदेव ने दोनों पक्ष के अग्रगण्यों को सम्बोधित करते हुए कहा—"भाइयो ! तुम सब भाई-भाई हो, एक गाँव के होने के नाते भी और एक धर्म होने के नाते भी परस्पर भाई हो। तुम्हें पारस्परिक कलह या मनोमालिन्य चिरकाल तक रखना शोभा नहीं

देता। एक भाई की कदाचित् गलती हो जाय, तो उसे उस गलती को स्वीकार कर लेना चाहिए और दूसरे भाइयों को शीघ्र ही उसे क्षमा देनी चाहिए। किसी भी बात को गांठ बाँध कर लम्बे समय तक रखना या किसी क्रोध या मान को लम्बे समय तक टिकाये रखना अपने सम्यक्त्व-जीवन का या चारित्रिक-जीवन का अपने हाथों से गला घोंटना है। इसलिए आज ही यहीं और अभी इस झगड़े को शान्त कर लो। क्यों तुम्हें मेरी बात यथार्थ लगती है न ?"

दोनों पक्षों के लोग—"जी गुरुदेव ! आपकी बात हमें सोलहों आने सच्ची लगती है, हमें जँचती भी है, पर हमारे अकेले के करने से क्या होगा ?"

गुरुदेव—"सभी, यों कहने लगेंगे तब तो कोई भी अपनी बुराई को छोड़ कर अच्छाई को पकड़ने से रहा।"

कुछ लोग—"गुरुदेव ! तब फिर बताइए, हम क्या करें ? हमारी आत्मा को आपके उपदेश ने झकझोर दिया है। अब हमें समाज में वर्षों से चली आ रही यह फूट खटकती है। अब तो एक दिन भी इसे टिकाये रखना हमें असह्य लगता है। हमारे गाँव पर और हमारे धर्म पर यह कलंक का टीका है कि आप सरीखे निःस्पृह त्यागी मुनिराज पधारें और हम एकता न करें।"

गुरुदेव—"भाइयो ! मेरी एक बात मानो। अगर आप सब लोगों के दिलों में मेरी बात बस गई है तो खड़े होकर यहाँ उपस्थित सभी लोग परस्पर एक-दूसरे के पक्ष के लोगों से क्षमा मांग लें, पिछली गलती, चाहे वह इस पक्ष से हुई हो या उस पक्ष से, रफा-दफा कर दें। पिछली सब बातों को भूल जाएँ और परस्पर एक-दूसरे से प्रेमभाव से मिलें। हृदय में किसी प्रकार गांठ न रखें। और यह नियम लें कि आयंदा हम कभी पिछली बातों को नहीं कुरेदेंगे और न ही शान्ति और सुलह के किसी काम में रोड़ा अटकायेंगे।"

उपस्थित सभी लोगों ने गुरुदेव की बात मान ली और खड़े होकर उपर्युक्त नियम ले लिया; और परस्पर क्षमायाचना करली, अब क्या था ! गुरुदेव ने शीघ्र ही दोनों पक्षों में सुलह करा दिया, जिससे दोनों पक्षों के लोगों को संतोष हुआ, वे परस्पर वात्सल्य भाव से एक दूसरे से गले लगा कर मिले।

संयोगवश एकता का यह मधुर-मिलन एवं प्रसंग जब सम्पन्न हो रहा था, तब एक भाई अनुपस्थित था। वही ज्यादा खटपटिया था। वह उस समय ब्यावर गया हुआ था। जब वह ब्यावर से लौट कर आया तब उसने लोगों से इस आपसी एकता की घटना सुनी तो मन ही मन बहुत तिलमिलाया। वह लोगों से कहने लगा—"मैं इस सुलह को नहीं मानता; क्योंकि इसमें एक पक्षीय न्याय हुआ है। हमारे पक्ष के प्रति न्याय नहीं हुआ है।"

जिन लोगों ने उदार हृदय से इस सुलह को मान्य किया था, उनके दिलों को बहुत ही धक्का लगा। वे उसे समझाने लगे—"इसमें तुम्हारा क्या बिगड़ गया ? इस एकता से तो समाज को फायदा ही है। फूट से समाज को बहुत हानि उठानी पड़ी है !"

वह बोला—"क्या फायदा है इससे हमारे पक्ष को ! अब तो आए दिन दूसरे पक्ष के लोग हम पर चढ़ बैठेंगे और पहले की तरह नाकों चने चबवायेंगे। क्योंकि उसी पक्ष के लोगों में से ही अधिकतर पदाधिकारी चुने जाने की सम्भावना है, और तब उन्हीं का ही बोलबाला होगा। हमें उनके आगे भीगी बिल्ली की तरह दुम दबा कर चुपचाप रहना होगा। हमारी बात तो कहीं भी नहीं चलेगी। इसलिए मेरी गैरहाजरी में हुए इस सुलह को मैं और मेरे धड़े के लोग मान्य नहीं करेंगे।" उसके धड़े के कुछ लोगों ने समझाया—"ऐसी बात नहीं होगी। अब तो दोनों धड़े एक हो गये हैं। जो जिस पद के योग्य होगा, वही चुना जायगा, फिर वह चाहे किसी भी धड़े का हो। दरअसल अब तो धड़े का सवाल ही नहीं रहा। जब धड़ा ही हमने तोड़ दिया है, तब अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक का भी सवाल खत्म हो गया। और गुरुदेव के सामने नियम ले लेने पर अब न तो किसी के दिलदिमाग में रंजिश की बू रह गई है और न ही कोई पिछली बातों को दोहरा कर बदला लेने की भावना से कोई जघन्य कृत्य करेगा।"

इस पर वह तुनक कर बोला—"तुम भले ही इस सुलह को मान लो ! मैं खुद नहीं मानूँगा। भले ही सब लोग मुझे बुरा कहें। मुझे अभी तक लोगों के दिल साफ नहीं लग रहे हैं।"

लोगों ने सोचा—"अगर यह अकेला भी अलग रह गया तो फिर लोगों को उकसा कर संघ में तोड़-फोड़ करने की कोशिश करेगा। यह खटपटिया कम नहीं है। अगर ऐसा हुआ तो गुरुदेव की की-कराई मेहनत पर पानी फिर जाएगा।" अतः कुछ लोग गुरुदेव की सेवा में पहुँचे और उनको सारी स्थिति से अवगत किया। गुरुदेव इसे सुन कर क्षणभर के लिए गम्भीरता में डूब गये। फिर सहसा उन्हें ध्यान आया कि आज एक श्रावक के यहाँ मृतकभोज होने वाला है। इसमें शामिल होने-न-होने की बात को लेकर ही इसे समझाना है।"

गुरुदेव ने आगन्तुक लोगों को आश्वासन देते हुए कहा—"तुम लोग अपनी बात पर डटे रहो और सभी लोगों को यह हिदायत कर दो कि कोई इसके बहकावे में न आए। मैं इसे ऐसी युक्ति से समझाऊँगा कि इसे वह बात माननी ही पड़ेगी। मेरा दृढ़ विश्वास है कि उसे मेरी बात माननी ही होगी। हम भी कच्चे गुरु के चेले नहीं हैं। पूरी कोशिश करेंगे। फिर भी अगर न माना तो और कोई उपाय अजमायेंगे, जिससे वह इस समझौते को मानने के लिए कायल हो जाय।"

सब लोग गुरुदेव के वचन पर विश्वास रख कर वापिस लौटे।

थोड़ी ही देर बाद वह भाई गुरुदेव के दर्शन के लिए आया। गुरुदेव ने उससे कहा—"धर्मप्रेमी बन्धु ! तुम्हें यह तो पता चल ही गया होगा कि भगवान् महावीर की

कृपा से वर्षों से जैन समाज में चल रही फूट का आज अन्त हो गया है। सब लोगों ने एक दिल होकर पिछली बातें रफा-दफा कर दी हैं, परस्पर माफी मांग ली है, अब तुम्हें भी इसी सूत्र पर चलना है।"

वह बोला—"मैं तो यहाँ था ही नहीं। मेरी अनुपस्थिति में ही इन लोगों ने सुलह कर ली; परन्तु मुझे अब भी दाल में काला लगता है। इन लोगों के दिल अभी तक साफ नहीं मालूम होते मुझे !"

गुरुदेव ने प्रभावशाली ढंग से कहा—"नहीं, ऐसा कदापि नहीं हो सकता। जिन लोगों ने एकता की बात मानी है, वे कदापि अपनी बात से पीछे नहीं हटेंगे। वे अपनी बात पर मजबूत रहेंगे। तुम्हें अपने दिल में शंका को कोई स्थान नहीं देना चाहिए। रही बात तुम्हारी अनुपस्थिति की। उसमें क्या फरक पड़ गया ? भाइयों ने मिलकर बहुत सोच-विचार के बाद किसी हितकर बात को और वह भी धर्मगुरु की आज्ञा समझ कर मानली है तो तुम्हें भी उसे स्वीकार कर लेना चाहिए, उसी रूप में। अन्यथा, सारे कलंक का टीका तुम्हीं पर आएगा और तुम ही संघ में पुनः फूट डालने के लिए जिम्मेदार होओगे। पता है तुम्हें, इस फूट से जैन समाज का कितना नुकसान हुआ है ? दूर-दूर तक इसके छींटे उछले हैं। बहन-बेटियों का आना-जाना तक भी बन्द हो गया था। तुम तो इसे शुभ शकुन समझो कि यह पाप खतम हो गया।"

परन्तु इतना कहने पर भी वह नहीं माना और अनमने भाव से कहने लगा—"हाँ हाँ, आपने जो कुछ भी कर दिया है, अच्छा है। मेरी आत्मा इसे मानने से इन्कार कर रही है।"

गुरुदेव ने प्रेम से, किन्तु जरा सख्त शब्दों में उससे कहा—"देख, भाई ! ज्यादा अकड़ना ठीक नहीं होता। पाँच भाई जो बात अच्छी समझ कर करलें, उससे आनाकानी करने का नतीजा बहुत ही भयंकर होता है। अगर इतनी अच्छी और समाज के हित की बात को भी तुम नहीं मानते हो तो समाज से तुम अलग पड़ जाओगे। क्या तुम समाज में अकेले अलग-थलग रह कर टिक सकोगे ? 'अकेला चना क्या भाड़ फोड़ सकता है ?' इस कहावत के अनुसार तुम क्या कर सकोगे अकेले रह कर ? फिर तुम्हारे लड़के-लड़कियों के रिश्ते भी तुम्हें करने हैं, समाज से किनाराकसी करके या सम्बन्ध तोड़ कर कैसे कर सकोगे इन्हें ?"

वह जरा अकड़ कर बोला—"गुरुदेव ! माफ करें। मैं इन सबकी परवाह नहीं करता। अब भी क्या मुझे समाज वाले रोटी-रोजी देते हैं ? मैं अपने पुरुषार्थ के बल पर ही जी रहा हूँ। और तब भी अकेला अपने ही बलबूते पर मैं जिन्दा रह सकूँगा।"

गुरुदेव—"मुझे तुम्हारी हिम्मत का पता है ! मैं यह दावे के साथ कह सकता हूँ कि तुम समाज से विरोध मोल लेकर अकेले कभी नहीं टिक सकोगे। आज ही एक श्रावक के यहाँ मृतकभोज का प्रसंग है। अगर तुम समाज से तोड़ कर अकेले रहोगे तो उसमें भी तुम्हें अपने परिवार सहित कहीं सम्मिलित नहीं होना होगा। ऐसी स्थिति में भविष्य

में जिन्दगी भर तक तुम्हें समाज के सहयोग से वंचित रहना पड़ेगा। यह तो झूठी शेखी बघारना है कि समाज से मुझे क्या वास्ता है, मैं अपने पुरुषार्थ पर जीता हूँ ? मनुष्य को कब, कैसी परिस्थिति में पता नहीं किसी भी व्यक्ति या वर्ग से सहयोग लेना पड़ जाय, इसके लिए कुछ नहीं कहा जा सकता ! क्योंकि समाज के साथ व्यक्ति का हिताहित जुड़ा हुआ है; इससे कतई इन्कार नहीं किया जा सकता। समाज से ही व्यक्ति को जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक सुसंस्कारों, अच्छे विचारों व धर्मपालन में सहयोग, संकट में साहस और परस्पर सहयोग का लेन-देन करना पड़ता है। अत: अगर तुम समाज का बहिष्कार करते हो तो फिर इस मृतकभोज में भी तुम्हें और तुम्हारे परिवार के लोग सम्मिलित होने से रोकेंगे और तुम भी अपने मिथ्याभिमानवश यदि ऐक्य विरोधी बनने के नाते इसमें शरीक नहीं होओगे तो सोच लो, क्या नतीजा आएगा ? यदि तुम इस मृतकभोज में शरीक नहीं होओगे तो समाज से आजीवन तुम्हारा सम्बन्ध टूट जायगा, सहयोग की आशा सदा के लिए समाप्त हो जाएगी। और यदि तुम समाज से अपने को अलग मानकर इस मृतकभोज में सपरिवार शामिल भी होने जाओगे तो लोग तुम्हें टोके बिना और तुम्हारा अपमान किये बिना नहीं रहेंगे। इसलिए अच्छा तो यही होगा कि समाज में हुए इस ऐक्य पर अपनी स्वीकृति की मुहर छाप लगाने के लिए तुम इस सुलह को मान्य करने के बहाने आज ही इस अवसर में शामिल हो जाओ। आज का निर्णय सारी जिन्दगी का निर्णय होगा। आज अगर इस शुभ अवसर को चूक गये तो सारी जिन्दगी पछताना पड़ेगा।"

गुरुदेव की अचूक प्रभावशाली वाणी का उस भाई पर सीधा असर हुआ। पहले जहाँ वह अकड़ के साथ बोल रहा था, वहाँ अब उसकी वाणी में नम्रता आ गई। वह सहसा बोल उठा—"गुरुदेव ! अब मेरी समझ में आपकी बात आ गई। मैं अपने कुविचारों के कारण इधर-उधर भटक रहा था। आपने मुझे सँभाल लिया और युक्तियों से समझाकर सही राह पर आने को प्रेरित कर दिया। मैं आपके इन विचारों से सहमत हूँ और आपकी प्रेम भरी आज्ञा को शिरोधार्य करके इस सुलह को मान्य करता हूँ। भविष्य में मैं कभी संघ से अलग होने या समाज में फूट डालने की बात नहीं करूँगा और न किसी को समाज़ से सम्बन्ध तोड़ने के लिए उकसाऊँगा।"

संयोगवश यह चर्चा चल रही थी, तभी समाज के बहुत से अगुआ वहाँ एकत्रित हो गए थे। गुरुदेव ने उन्हें इस भाई को प्रेम से गले लगाने का संकेत किया। तुरन्त ही ४-५ भाई उक्त विरोधी भाई से गले मिले और अपनी गलतियों के लिए दोनों ओर के लोगों ने परस्पर हृदय से क्षमा का आदान-प्रदान किया। उस भाई ने भी गुरुदेव के सामने सबको आश्वासन दिया कि मैं भविष्य में समाज में फूट डालने का कदापि प्रयत्न नहीं करूँगा।"

इतने में जिनके यहाँ मृतकभोज का प्रसंग था, वे लोग भी वहाँ आ पहुँचे और उस भाई को सप्रेम न्यौता देकर ले जाने लगे। उसने गुरुदेव से अपने अविनय के लिए क्षमा माँगी और उन्हें वन्दना करके मंगल पाठ सुनकर उन भाइयों के साथ चला गया।

यह था धर्माधिकारी के रूप में गुरुदेव का अद्भुत कार्य !

वास्तव में धर्माधिकारी का दायित्व निभाने से दोहरा लाभ होता है। एक तो समाज में धर्म-जागृति, धर्माचरण का उत्साह एवं पारस्परिक प्रेम, सहयोगभाव और सद्भाव बढ़ता है, जोकि अनैक्य, मनोमालिन्य या फूट के रहते कदापि सम्भव नहीं होता। दूसरे, समाज में प्रेम भाव स्थापित हो जाने से व्यक्ति को सुरक्षा की गारण्टी मिल जाती है, तन-मन स्वस्थ रहते हैं और फूट के कारण ठप्प पड़े हुए समाज हित के कार्य प्रगति के पथ पर अपनी दौड़ प्रारम्भ कर देते हैं। यह पुण्य लाभ कोई मामूली नहीं होता ! इस प्रकार के मनमुटाव को मिटाने से गुरुदेव का प्रभाव भी दूर-सुदूर अपने कदम बढ़ा रहा था। ऐसी ही एक घटना आगूँचा गाँव में हुई।

बात संवत् १९९४ के विजयनगर-गुलाबपुरा चातुर्मास के बाद की है। गुरुदेव हुरड़ा आदि आस-पास के क्षेत्रों को अपने चरणों और वचनों से पावन करते हुए आगूंचा गाँव में पधारे। गाँव के सभी धर्म-सम्प्रदायों के लोग आपके व्याख्यान सुनने आते थे। परन्तु व्याख्यान में उनके बैठने के ढंग से ऐसा मालूम होता था कि जैनों और वैष्णवों में अलगाव है।

गुरुदेव श्री पन्नालालजी महाराज मनोविज्ञान शास्त्र पढ़े तो नहीं थे, परन्तु भिन्न-भिन्न वर्गों के लोगों के सम्पर्क में आने से तथा उनके जीवन व्यवहारों का बार-बार सूक्ष्म अध्ययन करने से उन्हें सहज स्वाभाविक रूप से स्वतः ही मनोविज्ञान का अनुभव हो गया था। उन्होंने भिक्षाचरी के मौके पर भी जैनों और वैष्णवों के व्यवहारों तथा बातों पर से भांप लिया कि इनके पारस्परिक मतभेद हैं। जैन लोग तो व्याख्यान के अतिरिक्त समय में भी गुरुदेव के पास आया करते थे। इसलिए एक दिन प्रसंगवश गुरुदेव ने कुछ जैन श्रावकों से पूछ लिया—"क्या वैष्णवों के साथ तुम्हारी कोई तकरार है ?"

वे बोले—"उनके साथ तो हमारी तकरार आज से नहीं, वर्षों से चली आ रही है। हमारी उनसे पटती ही नहीं।"

गुरुदेव—"तुम्हें जैन होने के नाते तकरार रखनी नहीं चाहिए। उनसे मिल-बैठ कर आपस में समाधान कर लेना चाहिए।"

वे—"गुरुदेव ! समाधान की कोई आशा हमें नहीं दिखाई देती। आप कहते हैं, तकरार नहीं रखनी चाहिये; पर वे तो तकरार रखना चाहते हैं न ! एक हाथ से तो ताली वज नहीं सकती। दोनों हाथ मिलें तभी तो ताली वज सकती है।"

गुरुदेव—"वैष्णव लोग तकरार न मिटाना चाहें तो भी तुम्हें तो अपनी ओर से इस तकरार को मिटाने में पहल करनी चाहिए।"

वे—"वे हमारी वात कतई नहीं सुनते, न मानते हैं और न ही हमें आदर देते हैं। ऐसी स्थिति में हम इस तकरार को कैसे मिटा सकते हैं ? अगर हम चला कर उनके पास जायेंगे और उन्हें तकरार मिटाने का कहेंगे तो वे हमारे सिर चढ़ जायेंगे; हमें उनसे हमेशा दब कर रहना पड़ेगा।"

गुरुदेव—नहीं, ऐसी बात नहीं है। अभिमानी का सिर हमेशा नीचा होता है। जो व्यक्ति शान्तिप्रिय हैं, जैन धर्मोक्त क्षमा के आराधक हैं, जिन्हें वीतराग देव के वचन प्रिय हैं, वह अपने मानापमान की परवाह नहीं करते। जैन शास्त्र में बताया है कि दो व्यक्तियों या पक्षों में किसी बात पर कोई तकरार हो गई हो, उनमें से एक व्यक्ति या पक्ष, भले ही उसकी बात सचाई के नजदीक हो, दूसरे व्यक्ति या पक्ष से शान्ति, समाधान विवाद समाप्ति या सुलह करना चाहता है, और इसके लिए नम्र बन कर क्षमा-याचना करने जाता है, मगर सामने वाला व्यक्ति या पक्ष उससे बात ही नहीं करना चाहता, न आँखें उठा कर ही उसकी ओर देखता है और न ही उस व्यक्ति या पक्ष को आदर-सत्कार देता है, न उसकी बात सुनता है, ऐसी स्थिति में शान्ति के उपासक, आत्म-साधक एवं वीतराग मार्गगामी को चाहिए कि वह पहल करे। उस व्यक्ति या पक्ष (वालों) के पास चला कर जाए। वे उसकी बात सुने या न सुने, वह उसे आदर-सत्कार दे या न दे; उसे अपनी ओर से नम्रता-पूर्वक क्षमायाचना कर लेनी चाहिये, अपनी बात प्रेम से कह देनी चाहिए। जो इस प्रकार पहल करता है, वह शान्ति का आराधक है, वीतराग प्रभु की आज्ञा का पालक है, अपने सम्यक्त्व का रक्षक है। जो इस बात को जानते हुए भी कषायों को आग को अन्तर में दबाये रखता है, वह भूल करता है, भगवान की आज्ञा की अवहेलना करता है, सुन्दर अवसर को हाथ से खो देता है। और परिणाम-स्वरूप एक दिन वह कषायों की आग इतनी तेजी से भड़कती है कि उसकी लपलपाती हुई भयंकर लपटों से सारा समाज झुलस जाता है, धर्म-कर्म की ऐसी विनाश-लीला से समाज निःसत्व हो जाता है। अतः मेरी बात मानो; तुम्हें ही आगे होकर इस तकरार को मिटाने में पहल करनी चाहिए; तुम्हें ही आगे होकर उनसे क्षमायाचना कर लेनी चाहिए। वे चाहे तुमसे बोलें या न बोलें, तुम्हारी बात मानें या न मानें; तुम्हें अपनी ओर से मन में प्रविष्ट पूर्वाग्रह को निकाल देना चाहिए। तुम्हारे इस व्यवहार का उन पर अवश्य ही प्रभाव पड़ेगा।"

वे बोले—"गुरुदेव ! यह अन्याय तो हमसे सहा नहीं जाता कि गलती करें वे, और माफी माँगें हम ! हम इतने वीतराग तो हो नहीं गए कि वे हमारी बात पर जरा भी गौर न करें या हम पर हावी हो जायँ तो भी हम उनसे दबे रहें उनके सामने नाक रगड़ते रहें या उनके सामने अपनी सच्ची बात भी न रख सकें। क्षमा की पहल करने से उनके अन्याय को ही बढ़ावा मिलेगा गुरुवर ! अतः हमारी नम्र प्रार्थना है कि आप इस पर गम्भीरता से सोचें और कोई अन्य रास्ता निकालें। हम भी चाहते हैं कि यह विवाद समाप्त हो जाय; पर उसका उपाय ऐसा न हो कि एक पक्ष अन्याय के सामने घुटने टेक दे और दूसरे पक्ष को अधिकाधिक अन्याय करने का प्रोत्साहन मिले।"

गुरुदेव—"तुम्हारी बात तो किसी हद तक ठीक है। मैं भी यह नहीं चाहता कि अन्याय को बढ़ने का बल मिले। मैं भी यही चाहता हूँ कि दोनों पक्षों को न्याय मिले। मैं ऐसा प्रयत्न भी करूँगा, जिससे विपक्ष वाले लोग अपनी भूल समझें और इस तकरार

भगवान् महावीर वीतराग साधक थे, अपने आप में कृतकृत्य थे और केवलज्ञानी भी थे, फिर भी श्रेणिक को चेलणा रानी पर पर-पुरुषासक्त होने का सन्देह होने से सारे अन्तःपुर को फूंक देने पर उतारू होते देख कर उन्होंने श्रेणिक राजा का वह निराधार सन्देह दूर करके उसका मनःसमाधान किया था। और इस गृहकलह से होने वाले अनर्थ को मिटाया था। इसी प्रकार क्रूर और जहरीले चंडकौशिक सर्प के कारण होती हुई अपार जनहानि और पशुपक्षी संहार को रोकने हेतु उन्होंने स्वयं की जान जोखिम में डाल कर भी चंडकौशिक की बांबी पर जाकर उसे प्रतिबोध दिया और सुधारा। कौशाम्बी पर घेरा डाले चंड प्रद्योत को भी रणभूमि में जाकर प्रतिबोध दिया और सती मृगावती का उद्धार किया। और भी अनेक घटनाएँ भगवान महावीर के जीवन में हुई हैं, जिनसे यह प्रमाणित होता है कि अहिंसा के अवतार श्रमण भगवान महावीर पारस्परिक अशान्ति, फूट, अन्याय, संहार आदि को दूर करके शान्ति, न्याय और धर्म को संस्थापित करने के लिए कटिबद्ध रहते थे।

हमारे चरितनायक श्री पन्नालालजी महाराज भी भगवान महावीर के ही तेजस्वी वीरपुत्र थे। वे ऐसी अशान्ति को देखकर उदासीन और मौन कैसे बैठे रह सकते थे।? उन्होंने जैनों को टटोलने के बाद वैष्णव भाइयों को भी टटोला। वैष्णव भाइयों ने आपश्री के मुख से जैनों के साथ परस्पर वैमनस्य की बात सुनकर पहले तो इस प्रश्न को साफ ही उड़ाने की कोशिश की। कहने लगे—"महाराज ! आप साधु हो गए हैं। आपको इन संसारी झगड़ों से क्या लेना-देना है ? यह तो हम सांसारिक लोगों की आपसी बातें हैं। आप इनसे दूर रहिये।"

इस पर आपने मुस्कराते हुए कहा—"अगर हम समाज से आहार-पानी, कपड़े, दवा, मकान तथा जीने के अन्य आवश्यक साधन आदि की अपेक्षा कतई न रखें तब तो हमें आप लोगों के झगड़ों में पड़ने की जरूरत नहीं। परन्तु अभी तो हमें जीवन के लिए सभी आवश्यक साधन आप लोगों से लेने पड़ते हैं। और हम अपनी साधना भी समाज के बीच में रह कर करते हैं, तब हम समाज से निरपेक्ष और उदासीन कैसे रह सकते हैं ? हमें अपनी साधना और संयम यात्रा निराबाध रखने के लिए गृहस्थ समाज को शुद्ध और स्वधर्म में स्थिर रखना जरूरी होता है। और यह मत समझो कि हम जैन-साधु हैं तो हमें वैष्णव या अन्य समाज से क्या लेना-देना है ? जैन साधु भले ही किसी एक सम्प्रदाय-परम्परा में दीक्षित हुआ हो, परन्तु होता है वह सारे संसार का। वह प्राणिमात्र का मित्र, बन्धु और वत्सल होता है, उसे शास्त्र में षड्जीवनिकाय (संसार के सभी प्राणियों) का माता-पिता और रक्षक कहा है। इसलिए यह हर्गिज नहीं हो सकता कि समाज में अशान्ति तथा तकरार हो, और वह उसे मिटाने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न न करे। तुम्हारे वैष्णव अवतार जितने भी हुए हैं, वे परोपकार के लिए ही दुनिया में आए थे। भगवान् कृष्ण ने कौरव-पाण्डवों का गृह-कलह देख कर उदासीनता धारण नहीं की, बल्कि वे शान्ति दूत बन कर दुर्योधन की राजसभा में पहुंचे थे, शान्ति के

ही नहीं—प्राणिमात्र का हूँ। क्या मुझे अपनी आत्मा का खटका नहीं है कि मैं जैनों का पक्षपात करूंगा। मैंने पाँच महाव्रत लिये हैं। जीवनभर के लिए सामायिक व्रत (समता का व्रत) लिया है। मेरे लिए जैन-वैष्णव का कोई अन्तर नहीं है।"

वैष्णव लोग—"आपके व्याख्यान में तो हम उदारता की बातें प्रतिदिन सुनते हैं, आप समभावी साधु हैं, यह भी सुनते आए हैं। परन्तु हमारे मामले को आप कैसे सुलझाएँगे ?"

गुरुदेव—"आप लोग मुझ पर विश्वास रखो ! मैं किसी के साथ अन्याय नहीं करूँगा और न किसी का पक्ष लूंगा। मेरा काम किसी भी अहिंसक उपाय से तुम दोनों पक्षों में आपस में वात्सल्यभाव स्थापित करना है।"

इस तरह गुरुदेव के द्वारा सारे दिन विभिन्न युक्तियों और तर्कों से वैष्णव भाइयों को समझाये जाने पर भी वे न माने। कहने लगे—"हमारे अमुक-अमुक भाइयों को आने दीजिए। वे मान जायेंगे तो हम भी विचार करेंगे।"

गुरुदेव ने कहा—"देखो, आप लोग तो अपने हृदय से यह नियम ले लो कि हम इस शान्ति के काम में रोड़ा नहीं अटकाएँगे और मुझ पर विश्वास रख कर चलेंगे।"

इस पर वहाँ उपस्थित वैष्णव लोग काफी रस्साकसी के बाद यों कहकर जाने लगे—"अच्छा, आप हमें अपने बुजुर्गों से सलाह लेने और सोचने का मौका दीजिए। वैसे हम आपके साथ हैं। पर हम अकेले ही कोई बात मान बैठें और हमारे बुजुर्ग उसे न मानें तो ठीक नहीं रहेगा।"

यों उलटी-सीधी चर्चाएँ काफी रात तक चलतीं रहीं। जब गुरुदेव ने देखा कि कहीं शान्ति का ओर-छोर ही नहीं दिखाई दे रहा है अभी तो पैसे दो पैसे भर ही काम हुआ है। मेरे इतने कहने-सुनने से ये नरम तो पड़े हैं परन्तु जैसे तपे हुए लोहे पर घन की चोट तुरन्त न मारी जाय तो बाद में ठंडा हो जाने पर उससे यथेष्ट काम नहीं लिया जा सकता। इसलिए इन्हें भी अभी ही बार-बार कहने पर सम्भव है, इन्हें यथेष्ट रूप से मोड़ा जा सके। मगर अपनी साधुचर्या का भी ध्यान था। आज सुबह से कुछ भी खाया न था, और सूरज डूबने से फिर कल सुबह तक नियमानुसार कुछ भी लिया नहीं जा सकेगा। इस प्रकार उपवास भी हो गया था। रात काफी बीत चुकी थी। आपको अपनी साधुचर्यानुसार स्वाध्याय, ध्यान करके शयन भी करना था, ताकि प्रातः तरोताजा होकर फिर से साधुचर्या में लग सकें। अतः अपने वैष्णव भाइयों से कहा—"जितनी बातें मैंने आपको समझाई हैं, और जितनी बातें आप लोग मान गए हो, उतनी हद तक तो उस पर दृढ़ रहना, किसी के बहकावे में आकर उन्हें मत छोड़ना। उससे आगे की बातों पर कल सुबह हम फिर विचार करेंगे।" वैष्णव भाइयों ने हाथ जोड़कर कहा—"जितनी बातें हमारे गले उतर गई हैं, उन बातों में हम पीछे नहीं हटेंगे। जो बातें आगे की हैं, वे कल करेंगे। अभी तो हम आपसे मंगल-पाठ सुनकर विदा होते हैं। हमें आपके समझाने का तरीका पसंद है।" यों कहते हुए मंगलपाठ सुनकर एक आशा की किरण लिये हुए विदा हुए।

गुरुदेव ने कहा—"मैंने आप लोगों को समझाने से पहले काफी लम्बे टाइम तक समझाया है वे और मेरी बात मान गये हैं। इसलिए वे समस्त लोग तो तैयार बैठे हैं, माफी मांगने के लिए। पर तुम उनको आदर-सत्कार तो दोगे न ? उनकी क्षमायाचना पर ठूंठ की तरह अकड़ कर या मुंह मोड़कर एक ओर चुपचाप बैठ जाओ, तब तो काम नहीं बनेगा। मेरा इतना किया-कराया सब प्रयत्न काता-पींजा कपास हो जायगा। कल पूरे दिन भर और रात को भी बहुत ज्यादा रात बीतने तक हमारी चर्चा चली। आज दूसरा दिन है, अब सूरज डूबने जा रहा है, इसलिए मेरी बात मान कर सूर्य की साक्षी में ही आप दोनों ओर के लोग पिछली बातों को भुला दो, परस्पर शान्ति और समाधान कर लो।"

"और उसके बाद क्या करना होगा ?" सभी वैष्णव गुरुदेव की बातों को उत्सुकतापूर्वक मंत्रमुग्ध होकर सुन रहे थे। अत: उन्होंने उपर्युक्त सवाल पूछा। गुरुदेव ने उन्हें कहा—"अगर वे आपसे मधुरता-पूर्वक संलाप करते हैं तो आपको भी उतनी ही मधुरता के साथ उनके साथ बात करनी चाहिए। नम्रता से आप लोगों का कुछ घट नहीं जाएगा, बल्कि आपका सम्मान बढ़ेगा। आपका बड़प्पन भी इसी में है। आप लोग बुरा मत मानना, मैंने दोनों ओर की बातें सुनी हैं, कुछ तटस्थ लोगों से भी पूछताछ की है और अपने अनुभव के आधार पर इस प्रश्न पर मनोमन्थन करके कुछ निष्कर्ष भी निकाला है। मुझे तुम्हारी गलती कुछ अधिक लगती है। क्योंकि इस तकरार में पहल तुम्हारे लोगों की ओर से हुई है, खैर, अब उस पर कोई विचार न करो, जो हो चुका सो हो चुका। अब तो तुम दोनों पक्ष के लोग गले से गला लगाकर प्रेमपूर्वक मिलो और उदारतापूर्वक अपनी भूलों को मंजूर कर लो। यह तुम्हारी आत्मा की शुद्धि ही तुम्हें आत्म-विकास और परमात्मा के निकट ले जाने में सहायक होगी।"

गुरुदेव के वचनों को प्यासे चातक की तरह सभी वैष्णव लोग सुन रहे थे। वे एकदम खड़े हुए और वहाँ समागत जैनों से परस्पर गले लगा कर मिलने लगे और अपनी पिछली भूलों के लिए क्षमा मांगने लगे। अब क्या कसर थी, तकरार का मुंह काला होने में। देखते ही देखते जैन लोगों ने भी उदारतापूर्वक गले लगकर हाथ जोड़कर क्षमा मांगनी शुरू की; वैमनस्य का भूत वहाँ से कुछ ही मिनटों में पलायित हो गया। सहोदर भाई की तरह दोनों पक्ष के लोग प्रेम से मिलकर गुरुदेव के सामने बैठे। शीघ्र ही वहाँ शरबत की ग्लासें आ गईं। जैन लोग अपने हाथ से ग्लासों में शरबत भरकर वैष्णवों को पिलाने लगे। वैष्णव लोग भी जैनों को अपने घर मधुर-रस पूर्ण भोजन कराने ले गए। सबके चेहरे पर प्रसन्नता थी। भाई, बहन, बालक, बूढ़े सब मानो आज गांव में कोई उत्सव मना रहे हों, इस प्रकार हर्ष से उछल रहे थे। शैतान शर्मिंदा होकर गांव से भाग गया था। गुरुदेव श्री को भी अपनी सफलता पर सन्तोष था।

अन्त में सबने गुरुदेव श्री से माफी मांगते हुए कहा—"गुरुवर ! हमने दो दिनों आपकी नींद हराम कर दी। आपको बहुत तकलीफ दी। हमें इस अपराध के लिए क्षमा कर दें।"

गुरुदेव ने मुस्कराते हुए कहा—"वालक अपने माता-पिता के सामने वहुत तूफान मचाता है और कई दफा तो उन्हें हैरान भी कर देता है, फिर भी माता पिता उसे क्षमा कर देते हैं। वैसे ही हम-आप सबको क्षमा देते हैं। मुझे इस वात का कोई रंज नहीं है कि मुझे इतनी परेशानी उठानी पड़ी, क्योंकि आखिर सफलता के दर्शन हो गए, इसी ने मेरी सारी थकान और परेशानी को मिटा दिया है।"

सव लोग इस शांति-समाधान से संतुष्ट होकर विदा हुए। गुरुदेव ने भी वहाँ से सुखपूर्वक विजयनगर की ओर कदम वढ़ाया।

इस प्रकार गुरुदेव जहाँ भी अशान्ति और वैमनस्य का नाम सुन लेते, वहाँ भरसक प्रयास करके उसे मिटा कर ही छोड़ते। प्रभु कृपा से आपके वचनों में ऐसा जादू था, इतना प्रभाव था कि सामने वाला व्यक्ति वरवस आपकी वात मान लेता। अव तो आपको इस प्रकार के झगड़ों, गुटवाजी और वैमनस्यों को मिटाने की कला हस्तगत हो गई थी।

ऐसी ही एक घटना रीयां की है। संवत् १९९८ का चातुर्मास पूर्ण करके आप श्री अपने शिष्यों सहित पुष्कर आदि आस-पास के क्षेत्रों में विचरण करते हुए वड़ी पादू पधारे। वहाँ आप लगभग मासकल्प तक विराजित हुए। वहाँ प्रतिदिन दया एवं दान विषय पर आपके प्रभावशाली व प्रेरणादायक प्रवचन होते थे, जिसे सुनने के लिए स्वर्णकार, जिनगर, जाट आदि जैन जैनेतर जनता एकत्र होती थी। वहाँ से छोटी पादू जाटियावास होते हुए आप वड़ी रीयां पधार गए।

यहां माहेश्वरी भाइयों में लगभग ६० वर्षों से आपस में क्लेश चल रहा था, जिसके कारण उनमें आपस में दो दल हो गये थे। एक दल अपनी ओर खींचता था और दूसरा अपनी ओर। दोनों ही अपने-अपने पक्ष को सच्चा सिद्ध करने की चेष्टा करते थे। गुरुदेव के व्याख्यानों तथा कार्यों से वे परिचित थे। कई जगह गुरुदेव के द्वारा कराये हुए समाधान, विवादशमन, झगड़े का निपटारा, न्याययुक्त फैसले आदि वातें उनके कर्णकुहरों में पड़ चुकी थीं। फलतः गुरुदेव का आगमन वड़ी रीयां में सुनकर माहेश्वरी समाज के दोनों पक्षों के लोगों ने आपसे इस दीर्घ संघर्ष को मिटा देने के लिए प्रार्थना की।

हमारे चरितनायक जी का इस वात में अटूट विश्वास था कि सामान्य मनुष्य शाँति से रहना चाहते हैं, पर कुछ अगुआ लोग अपना दवदवा समाज में स्थापित करने के लिए दलवंदी या फूट डालने का प्रयास किया करते हैं। अतः उन्होंने दोनों दलों के अगुओं से अलग-अलग वात की इस सम्वन्ध में। एक दल के तो अगुओं ने आपसे यहाँ तक कह दिया—"महाराज! आप इसमें पड़े तो हैं, दोनों दलों में आपस में प्रेमभाव स्थापित हो जाय तो अच्छा है, परन्तु यह मामला वहुत ही पेचीदा है। इसमें अनेक उलझनें और विकटतायें भरी पड़ी हैं। हमें तो आशा कम है। हम तो आपसे यही कहेंगे कि आपको कहीं इस मामले में दूसरे पक्ष के लोग वदनाम न कर दें। ऐसा होने से तो लेने के देने पड़ेंगे। स्वार्थ में अंधा होकर मनुष्य क्या-क्या नहीं कर वैठता! अतः हमारी तो आपसे यही प्रार्थना है कि आप इस झमेले में न पड़ें।"

चरितनायक जी बोले—"भाइयो ! आपकी बात सही है कि मामला बड़ा पेचीदा है। परन्तु मैंने तो अपने जीवन में इससे भी बढ़कर पेचीदा मामले निपटाये हैं। मैं यह दावा नहीं करता कि मैं इस मामले को निपटा ही दूंगा। मगर मैं निराशावादी नहीं हूँ। मुझे आशा है कि प्रयत्न करने से कठिन से कठिन काम आसानी से बन जाते हैं। मेरा धर्म उदासीन बनकर बैठने का ही नहीं है। जब मैंने आप लोगों से इस मामले के बारे में सुना, तभी से मेरा धर्म हो गया कि मैं दोनों पक्षों से मिलकर आपस में सुलह और शांति स्थापित कराऊँ।"

दल के अगुआ—"आपने इस गाँव में माहेश्वरी जाति के दोनों दलों की बातें सुन ही ली होंगी। आपको उसमें क्या कोई तथ्य मिला है, जिससे आपस में हमारे टूटे दिल जोड़े जा सकते हैं ? हमारे पारस्परिक वैमनस्य दूर हो सकते हैं ? हमारे अन्दर एक-दूसरे की जड़ काटने की वृत्ति समाप्त हो सकती है ?"

चरितनायक जी—देखो, भाइयो ! मैं कोई सर्वज्ञ तो हूँ नहीं, कि इस विषय में किसी प्रकार की भविष्यवाणी करूँ और न ही किसी के दिल की तह में घुसा हूँ। जिससे यह बता सकूँ कि किसी के दिल में क्या है ? परन्तु इतना जरूर मैं अपने अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि इस झगड़े में खास कोई तत्त्व नहीं है, जिसको लेकर इसे लम्बा खींचा जाय। सिर्फ दोनों दलों के अगुआओं के समझने की बात है। अगर आप लोग समझ जायें तो यह मामला कुछ ही घण्टों में सुलझ सकता है।"

दल के अगुआ—महाराज साहब ! हम तो आपसे साफ-साफ बात कहेंगे कि अभी तक दूसरे दल के अगुओं के मन में बहुत ही गंदगी भरी हुई है, उसे आप श्री निकाल सकें तो, यह मामला बहुत ही शीघ्र निपट सकता है। अगर उस दल की ओर से हमारे दल के प्रति कोई अन्याय होगा तो हम उसे कतई बर्दाश्त नहीं करेंगे। हाँ, हमारे दल की ओर से जो कुछ भी बात इस एकता के लिए छोड़नी होगी, उसे हम छोड़ने में कभी पीछे नहीं रहेंगे।"

हमारे चरितनायकजी ने देखा कि दूसरे दल वाले लोग झगड़ा निपटाने की प्रार्थना तो कर गए; लेकिन अभी तक उनके अगुआ एकमत नहीं हैं। उनमें भी कई निहित स्वार्थी हैं, जो यह सोचते हैं कि अगर दोनों दलों में आपस में एकता हो गई तो फिर हमें कोई पूछेगा नहीं, हमारी कुछ भी चलेगी नहीं; और न ही माहेश्वरी समाज की सार्वजनिक जमीन-जायदाद या मकानों पर हमारा कोई आधिपत्य चलेगा। इसी कारण दूसरे दल के लोग अन्दर से खिचे-खिचे से रहते हैं। अतः चरितनायकजी ने दूसरे दल के अगुआओं को अलग-अलग बुला कर सौगन्ध दिला कर पूछा। उनमें से एक व्यक्ति, जो बहुत ही जिद्दी था, उसे उन्होंने सहज-भाव से कहा—"तुम्हें मैंने बचपन से देखा है। तुम्हारे पिता तो बहुत ही धार्मिक वृत्ति के उदार हृदय भक्त थे, तुम इस प्रकार से अनुदार और इस शुभकार्य में विघ्न डालने वाले क्यों बन रहे हो ?"

उसने कहा—"गुरुदेव ! मैंने अपने पिताजी की संरक्षकता में बहुत-से समाज के [illegible]व प्राप्त किए हैं। अपने अनुभव के आधार पर मुझे ऐसा लगता है कि एकता होते

ही दूसरे दल के अगुआ माहेश्वरी समाज की सारी प्रोपर्टी को अपने कब्जे में करके इस पर आधिपत्य जमा लेंगे। अभी तक हम लोग किसी तरह इनसे लड़-भिड़कर भी इस सार्वजनिक सामाजिक सम्पत्ति को बचाते आ रहे थे ऐसे लोगों के हाथों में जाने देने से। परन्तु अब आप हम पर दबाव डालकर एकता करा देंगे तो समाज की जो सम्पत्ति है, वह तहस-नहस हो जायगी, ऐसे लोगों के हाथों में पड़ कर। इनका बस चलता तो ये लोग कभी के उसे बेच कर खा जाते। इसीलिए हमें एकता न होने में ही लाभ नजर आता है।"

चरितनायकजी ने उसकी बात पर आश्चर्य प्रगट करते हुए कहा—"तुम्हारी दृष्टि उस दल के प्रति ऐसी बन गई है, जिसके कारण तुम्हें ऐसा लगता है कि उस दल के अगुआ समाज की प्रोपर्टी हजम कर जायेंगे; परन्तु ऐसा होना कठिन है। जब सार्वजनिक प्रोपर्टी है और उसकी रजिस्ट्री हो चुकी है, तब कोई एक व्यक्ति या एक दल उसका मालिक कैसे बन जाएगा? वह अकेला या उसके दल के लोग अगर उस प्रोपर्टी को अपने कब्जे में करना चाहेंगे तो भी नहीं कर सकेंगे? सरकार के कानून-कायदे, भी तो उन्हें रोकेंगे? और उनके दल के लोग भी उन्हें रोकेंगे। इसलिए ऐसी अतिकल्पना करके तुम एकता होने में जो रोड़ा अटका रहे हो और अपने दल के लोगों को उकसा कर शान्ति होने में बाधा डाल रहे हो, यह ठीक नहीं है। तुम अपनी ओर से तटस्थ रहो और समाज में एकता होने दो। नेता सभी तो हो नहीं सकते। समाज का नेतृत्व उन्हीं के हाथों में सर्व सम्मति या बहु[illegible] जाएगा, जो समाज हितैषी, योग्य एवं ईमानदार होंगे।"

आप सरीखे त्यागी, महात्माओं के निमित्त से यह विवाद शान्त हो, यह तो और भी उत्तम होगा। कोई भी कुछ गड़बड़ नहीं कर सकेगा, क्योंकि आपकी साक्षी रहेगी, दोनों दलों की एकता स्थापित करने में।"

चरितनायकजी ने उस युवक पर कर्त्तव्य भार डालते हुए कहा—"केवल इतना कह देने भर से काम नहीं चलेगा, तुम्हें इस दलवन्दी को मिटाने के लिए अपने दल के सब लोगों को अलग-अलग समझाना होगा; मैं इसका उत्तरदायित्व तुम पर डालता हूँ। बोलो, इस काम को कब तक पूरा करके आओगे?"

उसने जिम्मेवारी से छिटकने की दृष्टि से कहा—"गुरुवर! यह काम तो किसी और योग्य व्यक्ति को सौंपते तो अच्छा होता। मेरा प्रभाव समाज में इतना नहीं है। समाज में और भी योग्य व्यक्ति हैं। मुझे तो आप तटस्थ ही रहने दें! मैं वैसे आपक साथ हूँ और एकता के इस शुभ कार्य में रोड़ा नहीं अटकाऊँगा।"

चरितनायक जी ने उक्त युवक से कहा—"भाई! तुम अब इस जिम्मेवारी से छिटक नहीं सकते। यह काम मेरा ही है ऐसा समझकर जल्दी से जल्दी इस कार्य को करके आओ। मुझे तुम पर विश्वास है कि तुम इस कार्य को अच्छे से अच्छे ढंग से करके आओगे। समाज में प्रभाव तो कार्य करने से ही बढ़ता।"

युवक ने हाथ जोड़कर अपनी सफाई पेश की और आनाकानी करने के पश्चात् आखिरकार यह स्वीकार कर लिया कि—"मैं आपके चरण छू कर कहता हूँ कि अब मैं लोगों को भड़काना छोड़ कर एकता के लिए भरसक प्रयत्न करूँगा। आशा है, आपके आशीर्वाद से मेरे दल के लोगों को तो मैं एकता के लिए तैयार कर दूँगा। आप प्रतिपक्षी दल के लोगों को किसी तरह समझा कर एकता की राह पर ले आइए। फिर हमारा कार्य सम्पन्न होते देर नहीं लगेगी।"

चरितनायक जी ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा—"अच्छा है, प्रयत्न करने के बाद तुम सही राह पर आगए। अब कोई चिन्ता की बात नहीं, प्रतिपक्षी दल के अगुआओं से तो मैंने बात कर ली है। वे बहुत हद तक सहमत मालूम होते हैं। फिर भी मैं उन्हें फिर टटोलूँगा और एकमत करने का प्रयास करूँगा।"

युवक चरितनायक जी मंगलपाठ सुनकर विदा हुआ। उसने अपने दल केस भी अगुओं से बात की और उन्हें इस बात का विश्वास दिलाया कि एकता से हमें लाभ है। उसने पिछली अफवाहों और गलतफहमियों का खण्डन किया। दल के अगुओं को पहले तो तसल्ली नहीं हुई। उन्होंने पहले चरितनायकजी के सम्बन्ध में शंका व्यक्त की कि कहीं वे हमें फँसाकर समाज का सारा नेतृत्व प्रतिपक्षी दल के अगुओं के हाथों में तो नहीं सौंप देंगे? ऐसा हुआ तो हमारा सब किया कराया गुड़-गोबर हो जायगा।"

युवक ने उन्हें आश्वासन दिया कि मैंने महाराज साहब को भलीभांति टटोल लिया है, तर्क-वितर्क करके। वे इस विषय में मेरी परीक्षा में सोलह आना खरे उतरे

चरितनायकजी ने उन्हें विश्वास दिलाते हुए कहा—"भाइयो ! आप लोग मुझ पर विश्वास रखें। मैं अपने बस चलते तो किसी भी अयोग्य व्यक्ति को किसी योग्य पद पर नहीं आने दूंगा और न ही किसी प्रकार का अन्याय होने दूंगा। मुझे तो स्थायी एकता में विश्वास है। मेरा तो यह सिद्धान्त है—देर भले ही हो, अंधेर न हो। मैंने दूसरे दल के लोगों को इन सब बातों के लिए सहमत कर लिया है। वे मेरे अनुकूल बन कर चलेंगे। अब तो आप लोग मुझे वचन दें कि हम एकता के कार्य में रोड़ा नहीं अटकाएँगे, और जो भी फैसला होगा, उसे मंजूर करेंगे।"

वहुत कुछ मनाने के पश्चात् प्रतिपक्षी-दल के नेताओं ने यह वचन दिया कि हम इस सम्बन्ध में भसरक प्रयत्न करके एकता के अनुकूल सबको तैयार कर लेंगे। आप विश्वास रखें।"

चरितनायकजी को अव पूरी आशा थी, शीघ्र ही इस मामले के निपटने की। उन्होंने कुछ जैन भाइयों को भी माहेश्वरी समाज के दोनों दलों के लोगों को समझाने के लिए भेजा। उन्होंने दोनों दलों के लोगों से मिलकर एक मत करने और इस चिर-कालीन सामाजिक फूट को मिटाने के लिए सहमत किया। फलतः दोनों दलों की राय से गुरुवर्य श्री के सान्निध्य में एक मीटिंग रखने और उसमें उनसे फैसला देने की प्रार्थना करना तय हुआ।

अव चरितनायकजी की सेवा में दोनों दल के माहेश्वरी भाई उपस्थित हुए और उनसे दोनों दलों में शान्ति कराने हेतु निष्पक्ष फैसला देने की प्रार्थना की। इस पर चरितनायकजी ने आश्वासनप्रद शब्दों में कहा—"प्रिय बन्धुओ ! माहेश्वरी समाज अहिंसा-प्रेमी समाज है। उसमें भी बहुत-से मानवरत्न हैं। किन्तु वर्षों से दलबन्दी और फूट के कारण आपकी शक्ति छिन्न-भिन्न हो रही है। दलबन्दी में बात मामूली-सी होती है, मगर अहं की टकराहट में दोनों तरफ खींचातानी और रस्साकसी चलती है। बड़ी प्रसन्नता की वात है कि अब आप दोनों दलों के दिल एक होने जा रहे हैं। आपको यह सुबुद्धि सूझी और वर्षों से चलती आ रही, इस फूट का मुँह काला करने की ठान लो। मैं दोनों पक्षों में अव एकता देखना चाहता हूँ। और आप लोग भी निष्पक्ष न्याय चाहते हैं। परन्तु मैं जो अपनी बुद्धि से वहुत ही सोच-विचार कर निष्पक्ष फैसला दूं, उसका पालन आप सवको करना है। आप मेरे सामने प्रणवद्ध हो कि हम इस फैसले का पूर्णतया पालन करेंगे। सम्भव है, इस फैसले से किसी एक दल को या दल के अमुक व्यक्तियों को वुरा लगे या उनके स्वार्थ को धक्का लगे। वे इसे पक्षपात-पूर्ण करार देकर मान्य करने से इन्कार कर दें। ऐसा नहीं होना चाहिए। सवको तो पूर्णरूपेण संतुष्ट या खुश नहीं किया जा सकता। कुछ लोगों को इस निर्णय से दुःख भी हो सकता है।"

कुछ देर तक तो इस वात को सुनकर सन्नाटा छाया रहा। फिर कुछ युवकों ने मौन तोड़ा और कहा—"गुरुवर ! आप जो भी फैसला देंगे, वह हमें और हमारे दल के

लोगों को मान्य होगा। यह सुनते ही उस दल के लोगों ने खड़े होकर वचन दिया कि हमें आपका दिया हुआ फैसला मान्य होगा, उसका पालन करने में हमें कोई उज्र नहीं होगा।"

अब दूसरे दल के लोग भी उत्साह में आ गये थे। वे भी खड़े होकर भविष्य में दिये जाने वाले निर्णय को मानने और पालन करने के लिए वचनबद्ध हुए।

चरितनायकजी दोनों पक्षों की बातें पहले ही सुन चुके थे। फलतः उन्होंने एक कागज पर अपने निर्णय का मजमून बना कर १५ मिनट बाद ही भरी सभा में सबके सामने निर्णय पढ़कर सुना दिया। उक्त फैसले पर दोनों दलों के मुखियों के हस्ताक्षर ले लिये गए। जब यह कार्य प्रेम से सम्पन्न हो गया तो पूज्य महाराज साहब ने दोनों पक्ष के लोगों को एक-दूसरे से गले लगकर मिलने तथा परस्पर माफी मांगने के लिए कहा।

गुरुदेव श्री ने फिर कहा—हमने और आप दोनों दल वाले लोगों ने काफी दौड़-धूप और पुरुषार्थ इस मामले को निपटाने में किया है। मैं आप सबको धन्यवाद देता हूँ कि आपने मेरा प्रयत्न सफल किया और मेरी बात मानकर इस झगड़े का निपटारा करना स्वीकार किया। इस प्रयत्न के दौरान मैंने दोनों दलों के नेताओं को कई बार कठोर शब्दों में कहा है, कई बार फटकारा भी है। यद्यपि इसके पीछे मेरा आशय शुद्ध था। फिर भी किसी के दिल को मेरे निमित्त से कोई आघात पहुँचा हो तो मैं क्षमा-याचना करता हूँ।"

यह सुनते ही दोनों दलों के लोगों की आंखें भर आईं। उन्होंने गद्गद स्वर में कहा—"गुरुदेव ! क्षमा तो हमें आपसे मांगनी चाहिए थी, क्योंकि हमने आपको बहुत ही कष्ट दिया है। फिर भी आप अपनी ओर से क्षमा मांग रहे हैं; यह हमारे लिए शोभास्पद नहीं है। हमने आपका हृदय अपने स्वार्थ के लिए दुःखित किया, अतः हम आपसे अन्तःकरण से क्षमायाचना करते हैं।"

इसके बाद दोनों ही दलों के लोग परस्पर मिले और एक-दूसरे से हृदय से क्षमायाचना की और गुरुदेव के समक्ष सबने एक होकर रहने की प्रतिज्ञा की।

यह है चरितनायकजी में धर्माधिकारी के दायित्त्व का पूर्णतया निर्वाह का ज्वलन्त उदाहरण ! पाठक समझ सकते हैं कि चरितनायकजी का व्यक्तित्त्व कितना अनूठा एवं चुम्बक की तरह आकर्षक था।

यही कारण है इस सफल घटना के समाचार विद्युत-वेग से सारे कस्बे में फैल गया; और कुछ ही दिनों बाद स्वर्णकार लोग आपकी सेवा में अपना मसला हल कर देने की प्रार्थना को लेकर उपस्थित हुए।

यों तो चरितनायकजी के व्याख्यान श्रवण के लिए वे लोग प्रायः प्रतिदिन ही आया करते थे; परन्तु आज एक विशेष कारण को लेकर आए थे। चरितनायकजी ने उनसे धर्मस्नेहवश पूछा—"क्या बात है, स्वर्णकार भाइयो ! क्या आज कोई संकट आ-पड़ा है या किसी ने तुम्हें हैरान किया है ?"

उन्होंने कहा—"गुरुमहाराज ! और तो कोई संकट नहीं है, सिर्फ एक संकट है, उसके निवारण के लिए ही हम सब आपकी सेवा में आये हैं। वह संकट आपके द्वारा ही मिट सकता है। उसी संकट ने हमें हैरान कर दिया है।"

चरितनायकजी ने कहा—भाइयो ! कुछ खुलकर कहो तो पता लगे। हमने तो साधु जीवन ही संकट निवारण के लिए अंगीकार किया है। अगर मुझसे संकट मिट सकेगा, तो मैं कोई कसर नहीं छोड़ूँगा।"

स्वर्णकार बंधु—"गुरुदेव ! हम लोगों के बहुत-ही थोड़े-से घर इस इलाके में हैं। उनमें भी परस्पर फूट है। आपने ६० वर्ष पुराना माहेश्वरियों का झगड़ा मिटा दिया तो हमारा तो बहुत-ही छोटा समाज है और झगड़ा भी कुछ ही वर्षों पहले का है। इसका निपटारा करवाना आपके लिए तो बायें हाथ का खेल है। कृपा करके हमारा मसला निपटा दें।"

चरितनायकजी ने स्वर्णकार भाइयों से कहा—"भाइयो ! आप सब लोगों की भावना की मैं कद्र करता हूँ। आप लोग जिस कार्य के लिये आए हैं, उसमें मेरी रुचि भी है, लेकिन वह तब तक सफल नहीं हो सकता, जब तक मैं आपकी जाति के दूसरे पक्ष के लोगों से न मिल लूँ। अतः आप पहले तो अपने पक्ष के लोगों को एकमत कर लें, तत्पश्चात् दूसरे पक्ष के लोगों से बातचीत करके हमसे मिलावें। मेरा विश्वास है कि यह काम आपके लिए कुछ भी कठिन नहीं होगा।"

स्वर्णकार बंधु—हमारे पक्ष के लोगों को समझाना तो कोई कठिन नहीं है। परन्तु दूसरे पक्ष के लोगों को समझाना हमारे लिए टेढ़ी खीर है। हम उनके पास जाएँ और वे हमसे बात ही न करें या हमारा अपमान कर दें, तो हमसे कैसे सहन हो सकता है ? अतः आप किसी जैन भाई के द्वारा उन्हें बुला लें और समझा दें।"

चरितनायकजी उन्हें युक्ति से समझाने लगे—"भाइयो ! आप लोग तो स्वर्णकार हैं; सोने की घड़ाई करते हैं। सोना तभी खरा बनता है, जब उसे आप काटते हैं, पीटते हैं, आग में डालकर पिघलाते हैं और कसौटी पर कसते हैं, इसी प्रकार आपको अपने खरे होने की परीक्षा के लिए सोने की तरह नरम बनना होगा, स्वयं अग्निपरीक्षा में से गुजरना होगा, लोग आपकी कसौटी करें, उसमें भी खरे उतरना होगा, कदाचित अपमान और अनादर की मार पड़े तो उसे भी सहनी होगी। आप जरा-सी बात में घबरा गये। आप बिलकुल न घबराइए। मेरी ओर से दूसरे पक्ष वाले लोगों के पास जाइए। मेरा विश्वास है कि आपको चला कर अपने पास आए देख वे भी पानी-पानी हो जाएँगे। आपके दिल में सरलता और सच्चाई होगी तो उसका प्रभाव उन पर भी अवश्य होगा। इसीलिए मैं आप लोगों से पहल करने को कह रहा हूँ। आप उनके पास प्रेम और शान्ति का सन्देश लेकर जाइए।"

चरितनायकजी की इस प्रेरणा का आगन्तुक स्वर्णकारों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा और वे कहने लगे—अच्छा, गुरुदेव ! हम आपका सन्देश लेकर उनके पास जाएँगे

और हमें आपकी अद्‌भुत प्रेरणा से विश्वास हो गया है कि वे अवश्य ही हमारी बात मान जायेंगे। कदाचित् नहीं मानेंगे तो हम उनमें से जो बुजुर्ग होंगे, उनके चरणों में अपना सिर रख देंगे और उन्हें किसी भी तरह से मुलायम बना कर एकता के लिए मजबूर कर देंगे। नम्र बनने से हमारा क्या बिगड़ जाएगा? आप आशीर्वाद दीजिए।"

चरितनायकजी से मंगलपाठ सुनकर सभी स्वर्णकार भाई उत्साहपूर्वक दूसरे पक्ष के भाइयों के पास पहुँचे। इन भाइयों को अपने यहाँ अचानक आए देख वे तो हक्के-बक्के-से रह गए। उन्हें स्वप्न में भी यह कल्पना नहीं थी कि इस प्रकार से विरोधी-पक्ष के भाई हमारे पास आएँगे। इस अप्रत्याशित आगमन के कारण उनके हृदय नम्र हो गए। उन्होंने अपने यहाँ आये हुए भाइयों को आदर के साथ बिठाया और प्रेमपूर्वक पूछा—"कहिये भाई साहब, कैसे पधारना हुआ? हमारा अहोभाग्य है कि काफी अर्से बाद आप हमें संभालने और हमारी कुटिया पावन करने पधारें। यह बात हो रही थी कि गृहस्वामी का पुत्र सबके लिए चाय बनवाकर ले आया। सबको आग्रहपूर्वक चाय पिलाई, तत्पश्चात् आगन्तुक स्वर्णकारों ने उनसे कहा—"भाइयो! आज हम अपने कस्बे में विराजमान पूज्य स्वामी जी श्री पन्नालाल जी महाराज की सेवा में गये थे। उन्होंने हमारी आँखें खोल दीं। उन्हीं का सन्देश लेकर हम आपके पास आये हैं, एकता की अपील करने। महाराज श्री के वचनों पर विश्वास रखकर हम आपसे मिलने आये थे। प्रथम मंगलाचरण में ही हमें आपका प्रेम और आतिथ्य मिला, जिसे पाकर हम गद्‌गद हो गये हैं। आगे हमें आशा है, आप हमारी एकता की अपील को ठुकराएँगे नहीं। हमारी यह गलती ही समझिए कि हम मनों की पारस्परिक खींचातानी के कारण आपसे बिछड़े हुए रहे।"

"भाइयो! आपको हम अपने घर पर देखकर बड़े प्रसन्न हैं। फिर आपको स्वामी जी महाराज ने एकता का सन्देश देकर भेजा है तो अवश्य ही उस पर विचार होगा। आपको थोड़ी देर प्रतीक्षा करनी होगी; तब तक हम अपने कुछ भाइयों को यहीं बुला लाते हैं और आपस में प्रेमपूर्वक विचार-विमर्श करके यथायोग्य करेंगे। आशा है, आपकी शुभ भावना अवश्य ही सफल हो जायेगी,"—गृहस्वामी ने कहा।

गृहस्वामी ने अपने दोनों लड़कों और भतीजे को अपने पक्ष के खास-खास स्वर्णकारों को बुला लाने को भेजा। वे गये और कोई आध घन्टे में ही प्रायः सभी अग्रगण्य लोगों को बुला लाए। अग्रगण्य लोगों के आते ही सभी आगन्तुक स्वर्णकार उठकर प्रेमपूर्वक मिले। सबने एक-दूसरे से कुशल प्रश्न पूछा और प्रसन्नता से बैठ गये। गृहस्वामी ने अपने पक्ष के अग्रगण्य लोगों को एकान्त में ले जा कर सारी वस्तुस्थिति से अवगत किया। गृहस्वामी ने स्वामी जी महाराज के एकता के सन्देश को मान्य कर लेने के लिए सबको समझाया। उनकी बात से लगभग सभी लोग सहमत हुए। उन्होंने नम्रतापूर्वक आगन्तुक स्वर्णकारों से पूछा—"भाई साहब! कहिये क्या आज्ञा है, हमारे लिये? आप हमसे क्या चाहते हैं स्पष्ट कहिये।"

आगन्तुक स्वर्णकार—"भला हम आपको आज्ञा दें, यह तो आपकी तौहीन है। हम तो आप लोगों के नम्र सेवक हैं, जाति भाई हैं, इस नाते आपसे एक अपील करने आये थे, वह यह कि हमारी जाति के घर इस इलाके में वैसे ही कम हैं, फिर आपस में यह फूट शोभा नहीं देती। इसलिए हम स्वामी श्री पन्नालाल जी महाराज के पास इस सम्बन्ध में प्रार्थना करने गए थे। उन्होंने हमें आपके पास एकता का सन्देश देकर भेजा है। हम यही चाहते हैं कि हम सब एक हो जायँ, पिछली सब बातें रफादफा की जायँ और हम सब मिलकर अपनी जाति की उन्नति के लिए काम करें।"

उपस्थित लोगों ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा—"हम तो इसी फिराक में थे कि हमारे आपस की यह फूट अब मिट जाय और जाति की उन्नति के लिए कुछ काम हो। परन्तु हम यह सोच रहे थे कि दूसरा पक्ष जब तक पहल न करे, तब तक हम इस मसले को कैसे हल करें ? आपने चला कर हमें स्वामी जी के सन्देश से प्रेरित किया, हम आपकी अपील का स्वागत करते हैं; पिछली सब बातों को हम और हमारे पक्ष के लोग भी भूल जायँ और आप व आपके पक्ष के लोग भी भूल जायँ। अगर किसी के मन में कोई खटका हो तो प्रेम से आपस में बातचीत करके समाधान कर ले और परस्पर क्षमायाचना करके सूर्य नारायण की साक्षी से एवं पूज्य स्वामी जी के सान्निध्य में शपथ ले लें।"

"हमें आपकी बात मंजूर है। **'शुभस्य शीघ्रम्'** के अनुसार इसी समय चल कर हम स्वामी जी के सान्निध्य में इस शुभ कार्य को सम्पन्न कर लें।" आगन्तुक स्वर्णकारों ने हर्ष व्यक्त करते हुए कहा।

सबके चेहरे प्रसन्नता से झूम उठे। दोनों पक्ष के सभी मुख्य-मुख्य व्यक्ति स्वामी श्री पन्नालाल जी महाराज की सेवा में उपस्थित हुए। दोनों पक्ष के लोगों ने हमारे चरितनायक जी से प्रार्थना की—"गुरुदेव ! हम आपकी सेवा में आपके आदेश-संदेश का पालन करने आये हैं। आपकी जैसी उदात्त भावना, प्रेरणा और इच्छा थी, तदनुसार हम दोनों पक्षों के लोग एक होकर आये हैं। हम सूर्य नारायण की साक्षी से आपके सामने शपथ लेते हैं कि आप जो भी फैसला दे देंगे उसका हम पूर्णतया पालन करेंगे और भविष्य में हम किसी भी प्रकार से फूट डालने या आपस में मनोमालिन्य बढ़ाने का कोई काम अपनी ओर से नहीं करेंगे। पिछली बातों को रफादफा करके हम आपस में क्षमायाचना करते हैं।" दोनों ही पक्षों के लोगों ने स्वामी जी के सामने परस्पर क्षमायाचना की और एक दूसरे से गले लगकर मिले।

चरितनायकजी के हर्ष का पार न रहा। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक कहा—"भाइयो ! मुझे आशा थी कि आप लोगों में शीघ्र ही शान्ति स्थापित होगी। जब से ये भाई मेरे पास आए और मैंने इन्हें विश्वास दिला कर आप (दूसरे पक्ष के भाइयों) के पास भेजा, तभी से इस मनोमालिन्य का अन्त हो गया था। मुझे बहुत खुशी है कि आपने मेरे सुझाव को मान्य किया और परस्पर प्रेमभाव स्थापित कर लिया।"

इसके पश्चात् स्वामी जी ने निष्पक्ष फैसला दिया; जो दोनों पक्षों के लिए हितावह था। दोनों पक्षों के लोग एक होकर स्वर्णकार जाति की उन्नति के कार्यों में संलग्न हो गये।

इस प्रकार हमारे चरितनायक जी का प्रभाव एक धर्माधिकारी की तरह वृद्धिगत होता जा रहा था। आप जहाँ भी जाते, विरोधी लोग भी आपके बन जाते थे। जो लोग प्रथम बार ही आपके पास आते थे, वे भी आपके वचन को बिना कुछ भी ननु नच किये शिरोधार्य कर लेते थे। उन्हें यह अनुभव भी नहीं होता था कि स्वामी जी महाराज पराये हैं।

विक्रम संवत् २००५ की घटना है। हमारे चरितनायकजी जामालो से ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए नसीराबाद के पास नाँदला गाँव में पधारे। इस गाँव में जैनों के सिर्फ दो ही घर हैं। करीब १०-१५ घर माहेश्वरियों के हैं। माहेश्वरी लोगों में कई अच्छे सम्पन्न हैं। इनमें दो-तीन वकील भी हैं। स्वामी जी पर सब लोगों की अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति थी। वे आपके प्रवचन में प्रतिदिन आते थे और दिलचस्पी से सुनते थे। चरितनायक जी ने अपनी उदारवृत्ति के अनुसार "मानवता" पर प्रवचन दिया; जिसका सभी लोगों पर अद्भुत प्रभाव पड़ा।

दूसरे दिन प्रातःकाल जब आप वहाँ से विहार करने लगे तो एक माहेश्वरी भाई—सूरजमलजी लखोटिया दौड़े-दौड़े आपकी सेवा में पहुँचे और विनयपूर्वक निवेदन करने लगे—"गुरुदेव ! आप यहीं विराजें। हम सब माहेश्वरी भाइयों की ओर से प्रार्थना है।"

चरितनायक जी ने कहा—"भाइयो ! मैं, आज सुख-शान्तिपूर्वक नसीराबाद पहुँचने का वचन दे चुका हूँ। अतः आज यहाँ रुकने का अवसर नहीं है।"

वे बोले—"ऐसा तो नहीं होना चाहिए, गुरुदेव ! उपकार का कार्य हो तो आपको रुक जाना चाहिए। आप हम पर कृपा कीजिए।

चरितनायक जी—"सामान्य उपकार का कार्य तो सब जगह होता है। साधु का जीवन ही स्वपर-कल्याण साधने के लिए होता है, उसके कारण किसी को दिए हुए समय या वचन को टाला नहीं जा सकता। कोई अत्यन्त गाढ़ कारण हो, जो मेरे रुके बिना हो ही नहीं सकता हो, या मेरे रुकने से ही जो कार्य हो सकता हो, उसके सम्बन्ध में विचार किया जा सकता है। लेकिन जो कार्य प्रकारान्तर से मेरे बिना ही, या मेरी अनुपस्थिति में ही दूर से बैठे हुए मेरी प्रेरणा या मार्गदर्शन से हो सकता है, उसमें मुझे वहाँ रुकना ठीक नहीं है। अब आप बताइए कि ऐसा कौन-सा अत्यन्त गाढ़ कारण है, जिसके लिए आपका इतना आग्रह है।"

माहेश्वरी बंधु—"गुरुदेव ! आपको मैं सामान्य उपकार के लिए तो रोकना नहीं चाहता था। आपने जिसको समय या वचन दिया है, उसका पालन करना आवश्यक है;

किन्तु मेरी एक विशेष परिस्थिति है। मेरे यहाँ शादी का प्रसंग आ रहा है। इधर हमारे समाज में वर्षों से दो दल चले आ रहे हैं। इसके कारण सभी भाई मेरे यहाँ नहीं आ पायेंगे। मैं चाहता हूँ कि मैं अपने तमाम भाइयों को अपने यहाँ विवाह-महोत्सव में आमंत्रित और सम्मिलित करूँ। इस पारस्परिक फूट को मिटाये बिना मेरा यह मनोरथ पूर्ण नहीं हो सकेगा। इस झगड़े को निपटाने के लिए यहाँ के वकीलों ने भरसक प्रयत्न कर लिया, लेकिन अभी तक निपट नहीं सका। अब आप अनायास ही यहाँ पधारे हैं और आपका प्रभाव हमारे गाँव पर एवं हम लोगों पर है; आपके वचन को भी लोग मानते हैं। आपने इस इलाके में बहुत से झगड़े निपटाये हैं। अतः कृपा करके इस झगड़े को भी निपटा दीजिए ताकि मैं अपने घर पर सभी भाइयों को इस अवसर पर देख सकूँ। इसीलिए हमारी आग्रहभरी प्रार्थना है कि आप यहीं विराज कर हम पर यह अनुग्रह कर दीजिए।"

चरितनायक जी सदा से शान्ति और प्रेम के पक्षपाती रहे हैं। उन्होंने इस बात को सुना तो वो कुछ देर मनोमन्थन में पड़ गये, फिर आपने कहा—अगर दोनों पक्ष के मुखिया आ जायं तो मैं इस विषय में अपने कुछ सुझाव दूं।" फलतः कुछ लोगों ने तुरन्त घूम करके दोनों ओर के मुखिया लोगों को स्वामी जी महाराज के सामने एकत्रित किया। दोनों दलों के मुखियाओं के समक्ष आपने फरमाया—"भाइयो! मैं तहदिल से चाहता हूँ कि आपका आपसी झगड़ा मिट जाय और आप लोग प्रेमपूर्वक रहें।"

सब लोगों ने कहा—"आप कम से कम एक सप्ताह यहाँ विराजें, तब तो हमारा यह झगड़ा सदा के लिए मिट सकता है। आप केवल आज रुक कर अन्यत्र चल दें, तब तो यह कार्य होना कठिन है।"

श्री चरितनायक जी ने फरमाया—"भाइयो! आपकी बात तो ठीक है। जब तक रुक कर इस झगड़े के विषय में पूरा अध्ययन न किया जाय, तब तक इसका निपटारा कैसे किया जा सकता है। यदि आप पहले कह देते तो मैं कुछ दिन रुक कर इस उलझन को निपटाने का प्रयत्न करता।"

लोगों ने कहा—"पहले पता नहीं था कि आप इतनी जल्दी यहाँ से अन्यत्र विहार कर जायेंगे। अभी आपको विहार करते देख कर ही हम लोगों ने विनति करके आपको रोकने तथा इस झगड़े का आपसे निपटारा कराने की सोची है।"

चरितनायक जी—"भाइयो! अभी तो मैं यहाँ रुक नहीं सकूँगा। मेरी इस काम में रुचि बहुत है, लेकिन मैं आज नसीराबाद जाने के लिए वचनबद्ध हो चुका हूँ। आप लोगों से मेरी एक प्रेरणा है कि पारस्परिक मनमुटाव, खींचातानी और आपसी झगड़ा रखने में कोई सार नहीं है। इसे जितना शीघ्र निपटा सकें, उतना अच्छा रहेगा। अतः इसे शीघ्र मिटाकर परस्पर प्रेमभावना बढ़ायें। इसके लिए यदि आप दोनों ओर के लोग मुझे लिखकर दें कि हम दोनों पक्षों के लोग आपसी झगड़ा निपटाने के लिए कटिबद्ध हैं। इसलिए आप (मैं) जो भी निर्णय इसके लिए देंगे, वह हमें शिरोधार्य होगा, तो मैं [illegible]बाद जाकर समाधान वहाँ से भेज दूँगा।"

उसी समय वकीलों ने एक मसविदा तैयार किया; जिस पर दोनों पक्षों के खास-खास लोगों ने हस्ताक्षर किये। दोनों पक्षों के दिल पर आपके वचन का अद्भुत प्रभाव पड़ा। सच है, जहाँ सरलता होती है, वहाँ विरोधी से विरोधी लोगो के पारस्परिक मन-मुटाव स्वयं शांत हो जाते हैं।

हमारे चरितनायकजी माहेश्वरी समाज के दोनों पक्षों की तह में पहुँच चुके थे। उन्होंने नसीराबाद पहुँचकर माहेश्वरी लोगों में वर्षों से चली आई फूट की समाप्ति के लिए पूर्वापरसंगत विचार करके अपना फैसला लिखा और एक विश्वस्त व्यक्ति उसे लेकर नांदला पहुँचा। वहाँ दोनों पक्षों के लोग उत्साहपूर्वक प्रतीक्षारत थे। दोनों पक्षों के मुखिया लोगों ने जब आपके द्वारा दिया हुआ लिखित फैसला सुना तो वे अत्यन्त प्रसन्न हो उठे और परस्पर प्रेमपूर्वक हिले-मिले। आपके द्वारा दिये गये निर्णय से वकील लोग भी बहुत प्रभावित हुए। सभी लोग इस निष्पक्ष निर्णय से संतुष्ट होकर मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करने लगे। एक-दूसरे से माफी मांग ली।

सचमुच, धर्माधिकारी का दायित्व पूर्ण करने का चरितनायकजी का अद्भुत कौशल देखकर लोग दांतों तले उंगली दबाते थे।

कभी-कभी छोटी-सी बात भी छोटी-सी चिनगारी की तरह सारे गाँव को ही नहीं, दूर-दूर तक आग भड़का कर विशालरूप ले लेती है। विक्रम संवत् २०१२ का चातुर्मास मसूदा में पूर्ण होने के बाद आपका विहार विजयनगर की ओर हुआ। रास्ते में आप राताकोट पधारे। वहाँ ओसवालों और जाटों में एक चबूतरे को लेकर झगड़ा चल रहा था। झगड़े ने इतना उग्ररूप धारण कर लिया कि न्यायालय में मुकद्दमा चल पड़ा। मुकद्दमे की पेशी पर दोनों पक्षों के २५-२५ आदमियों को न्यायालय में उपस्थित होना पड़ता था। दोनों पक्षों के अब तक हजारों रुपये इस मुकद्दमे में स्वाहा हो गए थे। परन्तु नतीजा अभी तक कुछ भी नहीं निकला था। दरअसल, कई बार दोनों दलों के तथाकथित नेता अपने निहितस्वार्थ-भंग होने के डर से आपस में समाधान एवं सुलह-शान्ति करने के बदले उकसा-उकसा कर लड़ाते-भिड़ाते रहते हैं, एक दूसरे को। इस मामले में भी प्रायः ऐसा ही हुआ। एक पक्ष को समझाने जाएँ तो दूसरा पक्ष नाराज हो जाता और दूसरे को समझाते तो पहला पक्ष असंतुष्ट रहता।

श्री मुकुट विहारीलालजी की बात सुन कर चरितनायकजी ने फरमाया—"मुझे विश्वास है कि यह मामला शीघ्र ही निपट जायगा। दोनों पक्षों के अग्रगण्यों को पहले अलग-अलग बुलाकर समझाने पर ही यह विवाद सुलझ सकता है।"

दूसरे ही दिन जाट लोगों के ४-५ नेताओं को बुलाया गया। वे आए और चरितनायकजी के चरणों में हाथ जोड़ कर विनयपूर्वक बैठ गए। श्री चरितनायकजी ने उन्हें समझाया—"मानव-जाति सदा सहयोग के आधार पर जिन्दा और सुखी रही है। उसमें भी गाँव या नगर का संगठन इसलिए बनाया जाता है कि इसमें बसने वाले विभिन्न जाति, कुल या धर्म-सम्प्रदाय के लोग परस्पर सहयोग के साथ जीएँ, एक-दूसरे के सुख-दुख में सम्मिलित हों। आप लोगों को भी प्रतिदिन एक दूसरे से वास्ता पड़ता है, सहयोग के विना सुख-समृद्धि कदापि हो नहीं सकती। परन्तु आप लोग परस्पर साथ रहने वाले होते हुए भी अलग-अलग रहें और एक मामूली-सी बात को विवाद का विषय बनाकर लड़ते रहें। इसके कारण सहयोग के लेन-देन में बहुत विघ्न आएँ, यह बात आप जैसे धर्मश्रद्धालु एवं समझदार भाइयों के लिए शोभा नहीं देती। जो समय रहते ही समझ जाते हैं, वे ही समझदार कहलाते हैं। है तो एक चबूतरे का प्रश्न ही ? ऐसे अनेक चबूतरे आप लोग बना सकते हैं। किन्तु इसी एक चबूतरे को लेकर आपके हृदयों में परस्पर दरार पड़ जाय, आपके दिल टूट जायँ, एक-दूसरे के प्रति द्वेष-भाव बढ़े, यह अच्छा नहीं है। अतः मेरी सलाह है कि आप अपनी ओर से इस विवाद को निपटाने में पहल करें।"

जाटों के मुखिया आपके प्रेम और सद्भाव पूर्ण उपदेश को सुनकर अत्यन्त प्रभावित हुए। फिर भी कुछ पूर्वाग्रह उनके संस्कारों में अब भी प्रविष्ट था। अतः वे कहने लगे—"गुरुदेव ! हमारे अकेले के पहल करने से काम कैसे होगा ? जब तक विरोधीपक्ष के मुखिया लोग नहीं मानेंगे, तब तक यह विवाद निपटेगा कैसे ? अतः पहले ओसवालों को आप भली-भाँति समझा दें, ताकि वे इस सम्बन्ध में कोई पकड़ न रखें।"

ओसवाल लोग भी शीघ्र ही गुरुदेव श्री जी की सेवा में उपस्थित हुए और उन्होंने शपथ खाकर कहा—"हम अपने मन में किसी प्रकार की गाँठ नही रखेंगे। गुरुदेव हमें जैसा आदेश-निर्देश देंगे तदनुसार हम करने को तैयार हैं। वे जो भी निर्णय देंगे; वह हमें मान्य होगा।"

ओसवाल लोग इतनी जल्दी झगड़े की शांति के लिए तैयार हो जायेंगे, यह किसी को आशा न थी। किन्तु गुरुदेव की जो प्रज्ञा-प्रतिभा (पन्ना-प्रज्ञा) 'यथा नाम तथा गुण' के अनुसार थी; उसका लोहा दोनों पक्षों को मानना पड़ा।

ओसवालों के द्वारा विवाद शान्ति की तैयारी देखकर गुरुदेव बहुत ही संतुष्ट हुए। उन्होंने जाटों को कुछ तो मना ही लिया था, कुछ प्रेरणा और दे दी—"देख लो, भाइयो ! ओसवाल लोग तो तैयार हैं, शान्ति के लिए; अब आप ही की ओर से देर है।

बोलो, आप लोग क्या चाहते हैं ?" जाटों ने भी देखा कि अगर अब हम लोग तने रहेंगे तो एकता-भंग का सारा दोष हमारे सिर पर आएगा। अतः उन्होंने भी तुरन्त गुरुदेव की बात मानना ही उचित समझा। उन्होंने कहा—"गुरुदेव ! हमें भी आपके द्वारा दिया गया निर्णय मान्य होगा। आपका जो भी आदेश-निर्देश होगा, वह हमें शिरोधार्य होगा।"

वातावरण इतना सुन्दर बना कि सिर्फ १५ मिनट में ही आपने दोनों पक्षों में परस्पर प्रेमभाव स्थापित करवा दिया। आपने जो निष्पक्ष निर्णय दिया, उससे दोनों पक्षों को संतोष हुआ और दोनों पक्षों ने उसका पालन भी किया। न्यायालय में दोनों पक्षों की ओर से राजी-नामा प्रस्तुत करके मुकदमा वापिस ले लिया गया। गाँव में इस संप को देख कर सबके हृदय हर्ष से नाच उठे।

वास्तव में चरितनायक जी की प्रज्ञा सम्पन्नता, धीरता, कुशलता और कार्य-क्षमता ने उनके व्यक्तित्व में इतना अधिक निखार ला दिया कि विवाद, कलह, झगड़ा या मनमुटाव आपके हाथ में निपटारे के लिए सौंपते ही काफूर हो जाता था। आप में धर्माधिकारी के दायित्व की इतनी अद्भुत प्रतिभा और कार्यक्षमता थी कि न्यायालय के वर्तमान न्यायाधीश या न्यायाधीक्षक आपके सामने फीके प्रतीत होते थे।

ज्यों-ज्यों कषाय की वृद्धि होती है त्यों-त्यों अधर्म-पाप की वृद्धि होती है। दलबंदी कषायवृद्धि का मूल है। हमारे श्रद्धेय चरितनायक जी ने अनेक विवादों का अन्त करके न केवल सामाजिक उपकार किया अपितु पाप के बीज-कषाय का उन्मूलन करके लोगों को पाप से भी बचाया। प्रेम, सद्भाव और समन्वय का अद्भुत वातावरण निर्माण किया।

श्री मुकुट बिहारीलालजी की बात सुन कर चरितनायकजी ने फरमाया—"मुझे विश्वास है कि यह मामला शीघ्र ही निपट जायगा। दोनों पक्षों के अग्रगण्यों को पहले अलग-अलग बुलाकर समझाने पर ही यह विवाद सुलझ सकता है।"

दूसरे ही दिन जाट लोगों के ४-५ नेताओं को बुलाया गया। वे आए और चरितनायकजी के चरणों में हाथ जोड़ कर विनयपूर्वक बैठ गए। श्री चरितनायकजी ने उन्हें समझाया—"मानव-जाति सदा सहयोग के आधार पर जिन्दा और सुखी रही है। उसमें भी गाँव या नगर का संगठन इसलिए बनाया जाता है कि इसमें बसने वाले विभिन्न जाति, कुल या धर्म-सम्प्रदाय के लोग परस्पर सहयोग के साथ जीएँ, एक-दूसरे के सुख-दुख में सम्मिलित हों। आप लोगों को भी प्रतिदिन एक दूसरे से वास्ता पड़ता है, सहयोग के बिना सुख-समृद्धि कदापि हो नहीं सकती। परन्तु आप लोग परस्पर साथ रहने वाले होते हुए भी अलग-अलग रहें और एक मामूली-सी बात को विवाद का विषय बनाकर लड़ते रहें। इसके कारण सहयोग के लेन-देन में बहुत विघ्न आएँ, यह बात आप जैसे धर्मश्रद्धालु एवं समझदार भाइयों के लिए शोभा नहीं देती। जो समय रहते ही समझ जाते हैं, वे ही समझदार कहलाते हैं। है तो एक चबूतरे का प्रश्न ही? ऐसे अनेक चबूतरे आप लोग बना सकते हैं। किन्तु इसी एक चबूतरे को लेकर आपके हृदयों में परस्पर दरार पड़ जाय, आपके दिल टूट जायँ, एक-दूसरे के प्रति द्वेष-भाव बढ़े, यह अच्छा नहीं है। अत: मेरी सलाह है कि आप अपनी ओर से इस विवाद को निपटाने में पहल करें।"

जाटों के मुखिया आपके प्रेम और सद्भाव पूर्ण उपदेश को सुनकर अत्यन्त प्रभावित हुए। फिर भी कुछ पूर्वाग्रह उनके संस्कारों में अब भी प्रविष्ट था। अत: वे कहने लगे—"गुरुदेव! हमारे अकेले के पहल करने से काम कैसे होगा? जब तक विरोधीपक्ष के मुखिया लोग नहीं मानेंगे, तब तक यह विवाद निपटेगा कैसे? अत: पहले ओसवालों को आप भली-भाँति समझा दें, ताकि वे इस सम्बन्ध में कोई पकड़ न रखें।"

ओसवाल लोग भी शीघ्र ही गुरुदेव श्री जी की सेवा में उपस्थित हुए और उन्होंने शपथ खाकर कहा—"हम अपने मन में किसी प्रकार की गाँठ नही रखेंगे। गुरुदेव हमें जैसा आदेश-निर्देश देंगे तदनुसार हम करने को तैयार हैं। वे जो भी निर्णय देंगे; वह हमें मान्य होगा।"

ओसवाल लोग इतनी जल्दी झगड़े की शाँति के लिए तैयार हो जायेंगे, यह किसी को आशा न थी। किन्तु गुरुदेव की जो प्रज्ञा-प्रतिभा (पन्ना-प्रज्ञा) 'यथा नाम तथा गुण' के अनुसार थी; उसका लोहा दोनों पक्षों को मानना पड़ा।

ओसवालों के द्वारा विवाद शान्ति की तैयारी देखकर गुरुदेव बहुत ही संतुष्ट हुए। उन्होंने जाटों को कुछ तो मना ही लिया था, कुछ प्रेरणा और दे दी—"देख लो, भाइयो! ओसवाल लोग तो तैयार हैं, शान्ति के लिए; अब आप ही की ओर से देर है।

बोलो, आप लोग क्या चाहते हैं ?" जाटों ने भी देखा कि अगर अब हम लोग तने रहेंगे तो एकता-भंग का सारा दोष हमारे सिर पर आएगा। अत: उन्होंने भी तुरन्त गुरुदेव की बात मानना ही उचित समझा। उन्होंने कहा—"गुरुदेव ! हमें भी आपके द्वारा दिया गया निर्णय मान्य होगा। आपका जो भी आदेश-निर्देश होगा, वह हमें शिरोधार्य होगा।"

वातावरण इतना सुन्दर बना कि सिर्फ १५ मिनट में ही आपने दोनों पक्षों में परस्पर प्रेमभाव स्थापित करवा दिया। आपने जो निष्पक्ष निर्णय दिया, उससे दोनों पक्षों को संतोष हुआ और दोनों पक्षों ने उसका पालन भी किया। न्यायालय में दोनों पक्षों की ओर से राजी-नामा प्रस्तुत करके मुकदमा वापिस ले लिया गया। गाँव में इस संप को देख कर सबके हृदय हर्ष से नाच उठे।

वास्तव में चरितनायक जी की प्रज्ञा सम्पन्नता, धीरता, कुशलता और कार्य-क्षमता ने उनके व्यक्तित्व में इतना अधिक निखार ला दिया कि विवाद, कलह, झगड़ा या मनमुटाव आपके हाथ में निपटारे के लिए सौंपते ही काफूर हो जाता था। आप में धर्माधिकारी के दायित्व की इतनी अद्भुत प्रतिभा और कार्यक्षमता थी कि न्यायालय के वर्तमान न्यायाधीश या न्यायाधीक्षक आपके सामने फीके प्रतीत होते थे।

ज्यों-ज्यों कषाय की वृद्धि होती है त्यों-त्यों अधर्म-पाप की वृद्धि होती है। दलबंदी कषायवृद्धि का मूल है। हमारे श्रद्धेय चरितनायक जी ने अनेक विवादों का अन्त करके न केवल सामाजिक उपकार किया अपितु पाप के बीज-कषाय का उन्मूलन करके लोगों को पाप से भी बचाया। प्रेम, सद्भाव और समन्वय का अद्भुत वातावरण निर्माण किया।

१५

मानवता के मसीहा

□

बहुधा सभी धर्म-सम्प्रदायों के अनुयायियों में यह देखा जाता है कि वे चींटियों, चिड़ियों, कुत्तों, मछलियों या अन्य पशु-पक्षियों के प्रति तो अनुकम्पाशील होते हैं, परन्तु जहाँ मानवों के प्रति अनुकम्पा का प्रश्न आता है, वहाँ वे बहुत ही पीछे होते हैं। जहाँ मानवों पर कोई आफत बरस रही हो, मानव भूख-प्यास के मारे मर रहे हों, ठण्ड से ठिठुर रहे हों, या गर्मी से झुलस रहे हों। बेरोजगारी के कारण अपने परिवार सहित दीन-हीन बनकर अपने धर्म से च्युत होने को तैयार हो रहे हों, भूकम्प, दुष्काल, सूखा या बाढ़ के कारण परिवार के परिवार मृत्यु के मुख में जा रहे हों; यही नहीं, माताएँ अपना शील लुटा कर या अपने नन्हें मुन्नों को दो-चार रुपयों में बेचकर अपना पेट भरने को तैयार हो रही हों; वहाँ उनकी धर्म चेतना प्राय: बहुत ही मन्द पड़ ,जाती है। उनका सोचने का ढंग कुछ स्वार्थी हो जाता है। वे कहने लगते हैं कि अपने-अपने किये हुए कर्म सबको भोगने पड़ते हैं; कौन किसी के कर्म को बदल सकता है। जैसे जिसके कर्म ! परन्तु जब वही आफत स्वयं पर आ पड़ती है, तब उनकी भाषा दूसरी होती है। यानी लेने के समय का गज और होता है, देने के समय और।

परन्तु मानवता का सही मापदण्ड मानवों के प्रति मानव की दया है। इन्सानियत का बीज मानव-दया ही है। एक मानव दु:ख में पड़ा कराह रहा हो, उस समय दूसरा साधन सम्पन्न मानव टुकुर-टुकुर उपेक्षाभाव से देखता रहे, यह मानवता की पराजय है।

बाढ़ पीड़ितों की सहायता के लिए प्रेरणा

विक्रम सम्वत् २००० का आपका चातुर्मास ठा० ३ से भीलवाड़ा हुआ। उस समय भीलवाड़ा के आसपास से लेकर विजयनगर पर्यन्त के क्षेत्र में कोठारी, मानसी एवं खारी नामक नदियों में भारी वर्षा के कारण भयंकर बाढ़ आ गई। बाढ़ ने इतना प्रलयंकर रूप धारण कर लिया कि विजयनगर से लेकर भीलवाड़ा तक जिधर देखो, उधर जल ही जल दिखाई देता था। बाढ़ ने इतनी विनाशलीला की कि धन, जन एवं साधन के अतिरिक्त हजारों पशु मौत की चपेट में आ गए। बहुत से लोग बे-घरबार हो गए। जनता में त्राहि-त्राहि मच गई। हमारे चरितनायकजी ने जब बाढ़-पीड़ितों की दयनीय दशा देखी तो उनकी आत्मा तिलमिला उठी। उन्होंने अपने प्रवचनों में बाढ़पीड़ित जनता के दर्दनाक दृश्य का वर्णन किया और उन्हें सहायता देने के लिए स्थानीय जनता को प्रेरणा देते हुए कहा—"धर्मप्रेमी बन्धुओ! यह तुम्हारी मानवता की परीक्षा का अवसर है। इन्सानियत का तकाजा है कि आप लोग विपत्ति से घिरे हुए अपने मानव-बन्धुओं, भगिनियों, बच्चों और बूढ़ों को उदार दिल से सहयोग दें। यह मत सोचना कि हम उनके लिए क्या कर सकते हैं? उनका जैसा भाग्य होगा वैसा होगा। बन्धुओ! इस बात का पता सर्वज्ञों के सिवाय किसी को पूर्णतः नहीं होता कि किसका भाग्य कैसा है? कोई यह दावा नहीं कर सकता कि मुझ पर कभी विपत्ति नहीं आ सकती। इसलिए उनकी सहायता करना, एक तरह से अपने आपकी सहायता करना है। उनके आँसू पोंछना अपने आपको दुःखमुक्त करना है। **'मनुष्य-जातिरेकैव'** के अनु-सार हम सबका मानव परिवार एक है। अगर हमारे परिवार का कोई भी व्यक्ति दुःखित, पीड़ित और विपन्न है तो हमें उसके दुःख-दर्द को मिटाने के लिए तुरन्त जुट जाना चाहिए। मनुष्य ही नहीं अन्य प्राणियों के साथ भी **परस्परोपग्रहो जीवानाम्** जीवों का परस्पर उपकार करना हमारा परम्परागत स्वभाव है। भवगद्गीता में भी कहा है—

'परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ'

एक दूसरे के साथ परस्पर सहयोग की भावना—लेन-देन की भावना—परम श्रेयः प्राप्ति का कारण है।

आज आप उन्हें सहयोग दे रहे हैं, कल वे भी और अन्य ऐसे लोग भी, जिनसे हमारा कभी कोई वास्ता नहीं रहा है, हमें सहयोग दे सकते हैं, हमारी किसी भी प्रकार की विपन्न अवस्था में। अतः उदारहृदय बन कर बाढ़ की आफत से घिरे इन्सानों को हर प्रकार से आपको सहायता देनी चाहिए। अधिक क्या कहूँ! आप लोगों को एक ही इशारा काफी है। इस समय और किसी मद में अधिक खर्च न करके इन विपद्ग्रस्त मानवों की सेवा के लिए खर्च करना ठीक होगा। आपके धन की सार्थकता इसी में है, अपने पास प्राप्त साधनों का इसी में सदुपयोग है।"

आपके ओजस्वी प्रवचन उन दिनों प्रायः इसी विषय पर हुआ करते थे। जनता पर भी उन प्रवचनों का अद्भुत प्रभाव पड़ता था। आपके उपदेशों से प्रेरित होकर जनता ने बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में तन-मन-धन एवं साधनों से विपन्न लोगों को सहायता पहुँचाई, मुक्तहस्त से सहयोग प्रदान किया।

इससे बाढ़पीड़ित जनता को काफी राहत मिली। विपन्न जनता अपने उद्धारक, अपने संकट त्राता सन्त-प्रवर के दर्शनों के लिए बहुत ही उत्सुक थी। वह चाहती थी कि हम उन उपकारी पूज्य पुरुष के दर्शन कर अपने को कृतार्थ करें। आपके कानों में बाढ़ पीड़ित जनता की यह पुकार पहुँची। फलतः चातुर्मास की पूर्णाहुति के पश्चात् आपने भी बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में विचरण करके जनता को आश्वस्त किया; उन्हें सहानुभूति के दो बोल कहकर उनकी पीड़ा शान्त की, उनकी संतप्त वेदना सान्त्वना के मीठे शब्दों से बुझाई।

भुखमरी के समय जनता की मानवता जगाई

इस बाढ़ की विनाशलीला से त्रस्त-जन चरितनायकजी द्वारा प्रदत्त सहयोग-प्रेरणा से अभी-अभी स्वस्थ और स्थिर हुए ही थे कि संवत् २००१ के ब्यावर चातुर्मास-यापन के दौरान बंगाल में भयंकर दुष्काल और भुखमरी की घटना अखबारों के पन्नों पर चमक उठी। आपकी सेवा में भी संत्रस्त जनता की पुकार को लेकर लोग पहुँचे। लोगों ने सुनाया कि लोग भूख के मारे जगह-जगह सड़कों पर डेरा डाले पड़े रहते हैं। ज्यों ही कोई भात (चावल) उन्हें देने आता है, त्यों ही एक तरफ कुत्ते झपटते हैं, एक तरफ से वे लोग टूट पड़ते हैं। कभी-कभी तो कुत्ते के मुँह में दबाई हुई रोटी को भूखे लोग छीन लेते हैं। भूख के मारे कराहते हुए अधनंगे लोग टपाटप मौत की शरण में पहुँच रहे हैं। भूख के मारे अशक्त और अधमरे लोग कोई भी काम कर नहीं सकते। काम की खोज में बहुत-से स्त्री-पुरुष मारे-मारे फिरते हैं।"

सचमुच यह दर्दनाक करुण चित्र था, प्रवर्तक मुनिश्री पन्नालालजी महाराज के सामने सुनते सुनते ही उनका भावुक हृदय द्रवित हो उठा। आपने उसी समय ब्यावर की धर्मप्रेमी जनता के सामने प्रेरणाप्रद भाषण दिया—"बन्धुओ! आप भी मनुष्य हैं और वे भी मनुष्य हैं। पर आपकी और उनकी अवस्था में आज रात-दिन का अन्तर हो रहा है? क्यों? वे भुखमरी से पीड़ित हैं, विपन्न हैं, आप सम्पन्न हैं। इसलिए आपके सामने वे इन समागत प्रतिनिधियों के मुख से अपनी पुकार कर रहे हैं। भूख का दुःख शरीर के तमाम दुखों से बढ़कर है। कहा भी है—

पापों की जननी है। बंगाल में आज इसी भुखमरी के कारण लाखों लोग काल के कराल गाल में समा गये हैं। उनके दुःख को हम मिटा सकते हैं। उनका धर्म-कर्म हम बचा सकते हैं, उनको पापवृत्ति, क्रूरता, दया-हीनता से भी हम बचा सकते हैं। अन्यथा बुभुक्षित व्यक्ति लूटमार कर बैठें तो कोई आश्चर्य नहीं ! इसीलिए आप लोगों से मेरी यह धार्मिक प्रेरणा है कि ऐसे विपद्ग्रस्त लोगों की रक्षा की जाय और उनको इस दुःख से उबारा जाय। मानव बचेगा तो पशु भी बचेंगे, अन्य प्राणी भी बच सकेंगे।"

आपके उपदेश का ब्यावर की धर्मश्रद्धालु जनता पर सीधा असर हुआ। जैन-श्रावकों ने दिल खोल कर क्षुधापीड़ित बंगवासी भाई-बहिनों के लिए अनेक प्रकार का योगदान किया।

असहाय बुढ़िया को सहायता के लिए प्रेरणा

चरितनायकजी का हृदय अनुकम्पा से परिपूर्ण रहता था। वे जब भी किसी व्यक्ति को दुःखी और असहाय हालत में देखते तो अपनी साधुमर्यादा में रहकर उसे भरसक सहयोग की प्रेरणा देते रहते थे। साधु को शास्त्रों में षट्काया (प्राणिमात्र) के पीहर, माता-पिता और प्राणिमात्र के आत्मीयबन्धु कहा गया है। इसी दृष्टि से आप सदा-सर्वदा अपने साधुगुणों को चरितार्थ करते थे। आपका अनुकम्पापूर्ण हृदय सदैव दुःखित व्यक्तियों के प्रति अनुकम्पा के लिए तैयार रहता था। इसका एक ज्वलन्त उदाहरण लीजिये—

घटना संवत् १९८९ की है। जब आप मेवाड़ प्रदेश से मारवाड़ में थांवला पादू रूपारेल आदि छोटे-छोटे गांवों की भावुक एवं धर्म-प्रधान जनता को धर्म-सन्देश देते हुए विचरण करते रहे थे। आपके प्रवचनों में ऐसा जादू था कि दूर-दूर से जनता आपके प्रवचन सुनने के लिए आती थी। मारवाड़ के सामंत **'शेरसिंहजी रीयां'** नामक ग्राम के जागीरदार रावसाहब श्री विजयसिंहजी को जब पता चला कि गुरुदेव श्रीपन्ना-लालजी महाराज पधारे हैं तो वे बिना किसी हिचक के प्रतिदिन दो-तीन मील दूर के गांव में भी आपके प्रवचन सुनने के लिए पहुँच जाते थे। आपके सदुपदेशों से प्रभावित होकर रावसाहब ने हिंसा-परिहार आदि अनेक नियम ले लिये थे।

साधु पुरुषों का जीवन ही स्वपर-कल्याण के लिए होता है। उनके सम्पर्क में जो भी आता है, उसे कुछ-न-कुछ लाभ मिलता ही है। चरितनायक मुनिश्री स्वपर-कल्याण के ध्येय से ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए जाटियावास (छोटी रियां) पधारे। गाँव में आपका अचानक पदार्पण देखकर जनता के हर्ष का पार न रहा। गाँव में यह ख्याति फैल गई कि गुरुदेव मेवाड़ से पधारे हैं, फिर क्या था, देखते ही देखते, जनता आपके दर्शनों के लिए उमड़ पड़ी। धीरे-धीरे सैकड़ों की संख्या में प्रवचन सुनने के लिए श्रोता-गण आने लगे। उधर रीयां रावसाहब श्री विजयसिंहजी ने जब गुरुदेव के आगमन का समाचार सुना तो वे भी आपके प्रवचन सुनने हेतु पहुँचे। आज प्रवचन अनुकम्पा एवं वात्सल्य के सम्बन्ध में चल रहा था। प्रवचन में सरगरी जाति की एक ९० साल की बुढ़िया भी बैठी उत्सुकतापूर्वक सुन रही थी। वात्सल्यवृत्ति पर विवेचन सुनकर उसे

यह आशा बंध गई थी कि आज महाराज साहब के प्रवचन से प्रेरित होकर कोई न कोई तो अवश्य ही मुझे सहयोग देगा। फिर उसे यह भी विचार आया कि महाराज मेवाड़ (मेरी मातृभूमि) से पधारे हैं, इसलिए मैं इनके दर्शन करके इनसे अपनी मातृभूमि का हाल पूछूंगी। अतः आपका प्रवचन समाप्त होते ही मातृभूमि के स्नेहवश दर्शन करने की उत्सुकता जगी। बुढ़ापे के कारण आंखों का तेज मंद हो गया था, शरीर में भी अशक्ति थी। इस कारण जब वह दूर से ही आपके दर्शन न कर सकी तो लकड़ी के सहारे आगे बढ़ने का प्रयास करने लगी। अभी तक बहुत-से भाई-बहिन एवं राव साहब आदि जमे हुए थे। सभा में उपस्थित अन्य लोगों ने उसे आगे बढ़ने से रोका। उससे जब पूछा गया कि आगे कहाँ जाओगी ? यहीं से ही दर्शन कर लो, तब उसने कहा—"मेरी दृष्टि कमजोर है। यहाँ से महाराज साहब साफ नजर नहीं आते हैं। अत: मैं नजदीक जाकर अपने पीहर के महाराज साहब से बात करना और उनसे वहाँ के सुख-दुःख के हाल पूछना चाहती हूँ।"

इस बातचीत की भनक गुरुदेव श्री पन्नालालजी महाराज के कानों में पड़ी कि एक बुढ़िया मेरे दर्शन करना और मुझसे बातचीत करना चाहती है, तो आपने तुरंत उस बुढ़िया की ओर देखा। उसका भाव-विह्वल और दर्शनोत्सुक चेहरा देखकर उसे आगे आने से रोकने वाले भाइयों से कहा—"भाइयों ! इसे रोको मत। अपने अन्तर की इच्छा इसे प्रगट करने दो।" आपके इतना कहते ही उसे रोकने वाले लोगों ने रास्ता छोड़ दिया और उससे कहा—"लो माँजी ! खूब अच्छी तरह महाराज साहब के दर्शन कर लो। महाराज साहब ने स्वयं ही फरमा दिया है, तुम्हें निकट जाकर दर्शन करने के लिए।" इतना कहते ही बहुत उमंग से वह आगे बढ़ी और टकटकी लगाकर आपको देखने लगी। उसकी यह निर्दोष वात्सल्यविभोर दशा देख कर आपने उससे पूछा—'बाई ! तू कौन है ?' इतना सुनना था कि वह फूट-फूट कर रोने लगी। मुनिश्री ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—"बहन ! बात क्या है ? मेरे द्वारा पूछते ही तेरी आंखों में आंसू क्यों उमड़ पड़े ? तेरा हृदय क्यों भर आया ? तू चाहती क्या है ?" उसने गद्‌गद कण्ठ से कहा—"महाराज ! आप मेवाड़ से पधार रहे हैं, ऐसा सुनकर मैं आपके दर्शनों के लिए आई हूँ। महाराज मेवाड़ में मेरा पीहर है। मुझे जब आपने परिचय पूछा तो मेरा हृदय मातृभूमि के प्रति भर आया। मेरी आँखों से सावन-भादों बरसने लगा। मैं पूछना चाहती हूँ कि आप मेवाड़ में कोठ्या और हुरड़ा भी पधारे होंगे न ?"

ने मुझे इतनी दूर (मारवाड़ में) दे दी कि पीहर का नाम सुनना और समाचार मिलना भी दुर्लभ हो गया। आज मेरा अहोभाग्य है कि आप मेरे पीहर के गाँव होकर आये हैं और मुझे तो आप अपने पीहर के ही लगते हैं, इसीलिए तो आपने मुझे 'बाई' कहकर पुकारा। पीहर वाले ही ऐसा कह सकते हैं।

मुनि श्री को यद्यपि सांसारिक रिश्तेनाते से कोई मतलब नहीं था; और न ही कोई बात वे साँसारिक सम्बन्धों के बारे में पूछते थे। क्योंकि साँसारिक सम्बन्धों को बार-बार याद करने-कराने से मोह एवं आसक्ति उत्पन्न होने की सम्भावना है। फिर भी मानवता के नाते उस बुढ़िया की स्थिति-परिस्थिति की जानकारी के लिए उन्होंने पूछा तो पता चला कि न तो उसके पीहर में कोई रहा है और न ही ससुराल में। वह अकेली ही बची है। आंखों की रोशनी मंद हो गई है, कानों ने भी जबाब दे दिया और टांगों में चलने-फिरने की शक्ति भी नहीं रही।" अतः अनुकम्पाद्रवित हृदय से आपने उसे आश्वासन दिया—"बहन ! कोई चिन्ता मत करो। आनन्द से धर्मध्यान करो, अच्छे आचार-विचार रखो। इसी से आत्मा का कल्याण होगा। अपनी आत्मा अकेली ही आई है और अकेली ही जाएगी। पीहर और ससुराल में कोई अपना नहीं रहा, ऐसा मत समझो। सभी अपने हैं। जहाँ रहती हो, वहाँ सभी अपने हैं। अपने हृदय को ओछा मत बनाओ। विशाल हृदय से सोचो सबके ऊपर परमात्मा हैं, वे हमारे हैं। और संसार के सभी मानव हमारे हैं। इस प्रकार के विचारों से तुम्हें आत्म-शान्ति मिलेगी, बहुत बड़ा आश्वासन भी मिलेगा और सहयोग भी मिलना सम्भव है।"

यों कहकर आपने उपस्थित नागरिकजनों से कहा—"देखो, भाइयो ! यह बुढ़िया तुम्हारे ही गाँव की है। तुम्हीं इसके कौटुम्बिकजन हो। तुम्हें इसकी स्थिति का ख्याल करके अपने कर्तव्य का विचार करना चाहिए था। अपने गांव की एक बुढ़िया असहाय बनकर दुःस्थिति में रहे, यह तुम्हारे, लिए सोचने की बात है। यह बहन सहायता पाकर अपने धर्म में टिकी रहेगी। भगवान् महावीर के धर्म का पालन करेगी; इसमें तुम लोगों को तो लाभ ही है।"

चरितनायक श्री जी के इस उपदेश का उपस्थित जनता पर अचूक प्रभाव पड़ा। जैन समाज के अगुआ लोगों ने वहीं एकत्र होकर उस बाई से बातचीत की। उससे पूछा कि उसका गुजारा कितने में हो जायगा। अन्त में, वहाँ के स्थानीय जैन समाज ने उस बाई के लिए आजीवन भोजन, कपड़े, आदि की व्यवस्था कर दी। यह सब पूज्य मुनि श्री पन्नालाल जी महाराज का प्रताप था। आपकी अद्वैतवादी मानव दया का यह ज्वलन्त उदाहरण है।

जब उस बाई से जैन समाज के लोगों ने कहा—"माँ जी ! गुरुदेव की प्रेरणा से हम आपको अपने कुटुम्ब की समझकर जैन संघ की ओर से तुम्हारे जिंदगी भर की भोजन-कपड़े आदि की व्यवस्था कर देते हैं। अब आपको गुरुदेव की कृपा से जिन्दगी भर घर बैठे गुजारे के लिए खर्च मिलता रहेगा। कोई चिन्ता फिकर मत करना।"

यह आशा बंध गई थी कि आज महाराज साहब के प्रवचन से प्रेरित होकर कोई न कोई तो अवश्य ही मुझे सहयोग देगा। फिर उसे यह भी विचार आया कि महाराज मेवाड़ (मेरी मातृभूमि) से पधारे हैं, इसलिए मैं इनके दर्शन करके इनसे अपनी मातृभूमि का हाल पूछूंगी। अतः आपका प्रवचन समाप्त होते ही मातृभूमि के स्नेहवश दर्शन करने की उत्सुकता जगी। बुढ़ापे के कारण आँखों का तेज मंद हो गया था, शरीर में भी अशक्ति थी। इस कारण जब वह दूर से ही आपके दर्शन न कर सकी तो लकड़ी के सहारे आगे बढ़ने का प्रयास करने लगी। अभी तक बहुत-से भाई-बहिन एवं राव साहब आदि जमे हुए थे। सभा में उपस्थित अन्य लोगों ने उसे आगे बढ़ने से रोका। उससे जब पूछा गया कि आगे कहाँ जाओगी ? यहीं से ही दर्शन कर लो, तब उसने कहा—"मेरी दृष्टि कमजोर है। यहाँ से महाराज साहब साफ नजर नहीं आते हैं। अत: मैं नजदीक जाकर अपने पीहर के महाराज साहब से बात करना और उनसे वहाँ के सुख-दु:ख के हाल पूछना चाहती हूँ।"

इस बातचीत की भनक गुरुदेव श्री पन्नालालजी महाराज के कानों में पड़ी कि एक बुढ़िया मेरे दर्शन करना और मुझसे बातचीत करना चाहती है, तो आपने तुरंत उस बुढ़िया की ओर देखा। उसका भाव-विह्वल और दर्शनोत्सुक चेहरा देखकर उसे आगे आने से रोकने वाले भाइयों से कहा—"भाइयों ! इसे रोको मत। अपने अन्तर की इच्छा इसे प्रगट करने दो।" आपके इतना कहते ही उसे रोकने वाले लोगों ने रास्ता छोड़ दिया और उससे कहा—"लो माँजी ! खूब अच्छी तरह महाराज साहब के दर्शन कर लो। महाराज साहब ने स्वयं ही फरमा दिया है, तुम्हें निकट जाकर दर्शन करने के लिए।" इतना कहते ही बहुत उमंग से वह आगे बढ़ी और टकटकी लगाकर आपको देखने लगी। उसकी यह निर्दोष वात्सल्यविभोर दशा देख कर आपने उससे पूछा—'बाई ! तू कौन है ?' इतना सुनना था कि वह फूट-फूट कर रोने लगी। मुनि

इस सम्बन्ध में हम एक और ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

जिस विजयनगर में आपने कई चातुर्मास व्यतीत किये; जहाँ निवास करके काफी अध्यात्म-साधना की; उस उपकारी क्षेत्र पर एक बार आफत आ गई।

बात संवत् १९९६ की है। आपका वर्षावास उस समय ठा० ४ से मसूदा में था। आपको विश्वस्त सूत्र से पता लगा कि 'इस इलाके में इस वर्ष वर्षा न होने से सारे मगरा प्रदेश की जनता श्यामगढ़ (मसूदा से पश्चिम में ५ मील की दूरी पर पहाड़ों) में एकत्रित होकर विजयनगर को लूटने की योजना बना रही है।' आपको सहसा इस बात पर विश्वास नहीं हुआ कि ग्राम के लोग इस प्रकार से लूट मचा कर क्रूर एवं राक्षस वन सकते हैं! आपने विजयनगर के लोगों के पास आदमी भेज कर पता लगाया कि इस बात में कितना तथ्य है! इसी वीच एक विश्वस्त खवर आपको दोपहर के वाद श्यामगढ़ निवासी वागड़ेचा परिवार की एक वयोवृद्धा श्राविका के द्वारा प्राप्त हुई, जिसे उसने विजयनगर निवासी श्री कानमलजी कूमठ के माध्यम से मसूदा करवा दी थी। गुरुदेव इस चौंकाने वाली एवं मानव के प्रति मानव की ओर से कहर बरसाने वाली खबर सुन कर थोड़ी देर के लिए मौन रह कर अन्तर्मन में मानों कर्तव्य-निर्धारण में लग गए। तत्पश्चात् उक्त कर्तव्य के पालन में किन-किन लोगों द्वारा, किन-किन साधनों एवं तरीकों से कैसे कार्य होना चाहिए इस पर मन ही मन विचार किया। इसी बीच विजयनगर स्थित 'जीनिंग फैक्टरी' के कोषाध्यक्ष श्रीमान् समीरमलजी भड़कत्या जो कि उस समय मसूदा आए हुए थे, पूज्य गुरुदेव श्रीजी महाराज की सेवा में उपस्थित हुए तो आपने उन्हें विजयनगर की सुरक्षा के लिए राव साहव को प्रयत्न करने की प्रेरणा दिलवादी। राव साहब नारायणसिंहजी, उस समय विजयनगर से ४ मील पर स्थित **मॉडल फार्म** में थे। अत: श्री भड़कत्याजी ने उन्हें मसूदा से ही टेलीफोन द्वारा गुरुदेव द्वारा प्राप्त प्रेरणा की सूचना दे दी। फलस्वरूप राव साहब ने सूचना पाते ही विजयनगर की सुरक्षा के लिए वहाँ से दो जीपकारों में पुलिस दल रवाना किया। गुरुदेव पर उनकी गाढ़ आस्था थी। इधर मसूदा से भी राव साहव के दीवान रायबहादुर श्री किशनलालजी ने भी विजयनगर की सुरक्षा के लिए दो मोटरें भेज दीं।

उधर ये दो मोटरें पहुँचीं, उससे पहले ही मगर के पर्वतीय प्रदेश के रावत-मेरात करीब १२०० की संख्या में विजयनगर के समीप तक आ धमके थे। किन्तु उन दोनों मोटरों में बैठे हुए पुलिस के जवानों ने अपना कर्तव्य समझकर हवा में वन्दूक से फायर किये। लुटेरे इतनी संख्या में लूटने के लिए तो आगए थे, लेकिन साहस में वहुत कच्चे थे, इसलिए उन फायरों से आतंकित होकर, घवराते हुए उलटे पैरों भाग खड़े हुए। इस प्रकार राव साहव ने अपना कर्तव्य समझकर विजयनगर की सुरक्षा के लिए फौरन पुलिस दल भेजा, जिसने अपनी सूझ-बूझ से काम लेकर विजयनगर को लुटेरों के आतंक से वचाया। और खून-खच्चर का अवसर टल गया।

सचमुच, हमारे चरितनायकजी विपद् ग्रस्त मानवों को आफत से वचाने के लिए अपनी साधु मर्यादा में रह कर प्रेरणा करते रहते थे। इतना ही नहीं, आप प्रत्येक

यह सुनते ही विस्मित-सी, चकित-सी हर्षाविष्ट होकर उन भाइयों की ओर देखती ही रही। उसे कुछ देर तक तो विश्वास ही नहीं हुआ कि यह स्वप्न है या सत्य ? परन्तु भाइयों ने जब वह बात दोहराई तो उसकी आँखों से हर्षाश्रु टपक पड़े। वह अन्तर से आशीषें और धन्यवाद पूज्य गुरुदेव को एवं स्थानीय संघ वालों को देती रही और मंगलपाठ सुनकर यह कहती हुई विदा हुई—"मेरे पीहर के गुरु महाराज पधारे, और आपने मेरी असहाय अवस्था को देखकर जिन्दगी भर तक की व्यवस्था करवा दी। पीहर के महाराज के बिना कौन सुनता है ? गुरु महाराज चिरकाल तक स्वस्थ एवं दीर्घायु रहें। मुझे उन्होंने सुखी कर दिया।"

उस बुढ़िया के जीवित रहने तक यह व्यवस्था चलती रही। उसके मुंह से इसी प्रकार के आशीर्वाद सूचक उद्गार बार-बार निकलते रहते थे।

गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज की अनुकम्पाशील प्रकृति ने ऐसे कई दुःखित, विपन्न एवं असहाय भाई-बहनों के आशीर्वाद प्राप्त किये होंगे। सबका विवरण लिखना यहाँ सम्भव नहीं है। परन्तु इतना जरूर कहना होगा कि वे ऐसे पुण्य-अवसरों को चूकते नहीं थे। मानव मात्र के प्रति अनुकम्पा के वे जीवंत प्रतीक थे।

लुटेरों से रक्षा के लिए प्रेरणा

कई बार मनुष्य के हृदय में अनुकम्पा होते हुए भी वह समय पर अभिव्यक्त नहीं हो पाती; वह मानवों के प्रति अनुकम्पा, रक्षा या दया के प्रसंग उपस्थित होने पर भी या तो किंकर्तव्यविमूढ़ बन जाता है, या फिर उसके हृदय में स्वार्थ का पलड़ा भारी हो जाने से वह ऐसे पुण्यवृद्धि या यशोवृद्धि के निमित्तों को पाकर भी उदासीन रह जाता है।

परन्तु हमारे चरितनायक जी में यह खूबी थी कि वे मानव के प्रति अनुकम्पा, दया, रक्षा के ऐसे पुण्य अवसरों को कदापि नहीं चूकते थे। वे सदा सतर्क होकर प्रतिदिन अन्तर्निरीक्षण करते रहते थे—

किं मे कडं ? किं च मे किच्चसेसं ?
किं सक्कणिज्जं न समायरामि ?

मैंने कल तक क्या किया है ? कौन-सा कर्तव्य करना बाकी रह गया है ! और कौन-सा ऐसा कार्य है, जिसे मैं कर सकता हूँ, किन्तु स्वार्थ, प्रमाद आदि कारणों से नहीं करता।

यही कारण है कि जब-जब आपने किसी भी व्यक्ति, वर्ग या समूह पर किसी भी प्रकार की विपत्ति आती देखी, वे अपनी सीमा—मर्यादा में प्रेरणा या मार्गदर्शन अथवा उपदेश देकर उसका निवारण कराते थे और विपद्ग्रस्त लोगों को सहायता देते या उनकी सुरक्षा का प्रबन्ध करा देते।